दानापानी

गोपीनाथ महांति

अनुवाद

शंकरलाल पुरोहित



नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नयी दिल्ली

1957 (शक 1879)

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित और रूपक प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032 द्वारा मुद्रित।

भूमिका

उपन्यास साहित्य के बीज प्राचीन साहित्य की लोककथा, रूपक-कथा आदि विधाओं में प्रच्छन्न रूप में मिलते हैं, लेकिन अठारहवीं सदी के विश्वसाहित्य में इसके स्वतंत्र इकाई के रूप में विकसित होने के प्रमाण पहली बार मिले हैं। वस्तुत: उन्नीसवीं सदी विश्वसाहित्य में उपन्यास कला के विकास एवं प्रतिष्ठा का स्वर्ण युग है। जीवन के यात्रापथ में दृष्टिकोण का क्षितिज बीसवीं सदी में संप्रसारित हुआ और उसकी भंगिमा तथा चलन में व्यापक परिवर्तन दिखायी दिया, उसी का जीवंत आलेखा लेकर आज की उपन्यास कला भावों एवं रस-वैचित्र्य की दृष्टि से समृद्ध हुई है। इतना ही नहीं अतीत के महाकाव्यिक तथा काव्यिक गुणों से मंडित होकर आज का उपन्यास सारस्वत जगत में एक संभ्रांत पद का अधिकारी हो सका है। युग तथा जीवन के सारे घात-प्रतिघातों, समस्याओं तथा अंतर्द्वंद्वों को लेकर जीवन के एक पूर्णांग और उज्ज्वल ग्रंथ के रूप में वह सम्मानित हो चुका है।

प्राचीन भारतीय साहित्य में यथा वैदिक कथाओं, बौद्ध जातकों, संस्कृत गद्य-काव्यों तथा कथा साहित्य और लौकिक रूपक कथानकों में भी उपन्यास कला के मूल रूप के संकेत विद्यमान हैं। लेकिन आधुनिक अर्थ एवं चेतना में उपन्यास कहने वाली विधा का आविर्भाव हुआ है उन्नीसवीं सदी में। उन दिनों में पाश्चात्य साहित्य एवं संस्कृति के चिंतन और चेतना के साथ भारतीय भावधारा और रस-मानस का संपर्क होता है, फलत: भारतीय चित्तलोक में एक रेनेसां या नव अभ्युदय का सूत्रपात होता है। पश्चिमी सभ्यता तथा साहित्य के प्रति अनुराग और आसक्ति होने के फलस्वरूप भारतीय साहित्य के अंग और आत्मा में जो नयापन आता है, उसके फलस्वरूप गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में रुचि संस्कार और परि-वर्तन दिखायी देता है। परिवर्तित पृष्ठभूमि में ही उपन्यास का आविर्भाव होता है। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध को भारतीय आंचलिक भाषाओं के उपन्यास का

किशोर काल कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। हिंदी में इंशा अल्ला खां की (1798-1803 के बीच) 'रानी केतकी की कहानी' और 1823 में प्रमथनाथ शर्मा उर्फ भवानी शंकर मुखोपाध्याय के 'नवबाबू विलास' को भारतीय आंचलिक साहित्य के दो प्राथमिक उपन्यासों में गिने जाने पर भी उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में ही बंगला, मराठी, हिंदी, मलयालम, ओड़िआ, तमिल, तेलुगु, सिंधी आदि प्रांतीय भाषाओं के उपन्यास का सर्वांग रूप प्रकट हुआ।

ओड़िआ नाटक के जन्मदाता रामशंकर राय का 'सौदामिनी' नामक उपन्यास 1877-78 में 'उत्कल मधुप' पत्रिका में धारावाहिक छपा था। लेकिन वह अधूरा रहा। अतः उमेशचंद्र सरकार के 'पद्ममाली' (1888) को प्रथम पूर्णांग ओड़िआ उपन्यास माना जाता है। ओड़िसा की भूतपूर्व रियासत नीलगिरि में 1835 में घटी सत्य घटना के आधार पर उक्त रोमांसमूलक ऐतिहासिक उपन्यास लिखा गया है। लेकिन प्रणयधर्मी, काव्यात्मक-कल्पना, विषयवस्तु का प्रत्यक्ष चित्रण, नीति निष्ठा के गौरव प्रतिपादन पर अधिक महत्व देने के कारण समकालीन सामाजिक जीवन और चरित्र-चित्रण को गौण स्थान दिया गया है। मुख्यतः यह एक घटना प्रधान उपन्यास है। भाषा प्रयोग के स्तर पर मध्ययुगीन आलंकारिक काव्य शैली का प्रभाव स्पष्ट है। इस उपन्यास की रचना के बाद 1891 में आता है रामशंकर राय का 'विवासिनी'। इसमे 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध की सामाजिक समस्याओं और संघर्ष के परिवेश से लेखक ने कथानक तथा पात्रों का चयन किया है। ओड़िसा में मराठों के कुशासन तथा अत्याचारों की पृष्ठभूमि पर उपन्यास की प्राणप्रतिष्ठा हुई है। यथार्थ की भूमि पर आदर्श की प्रतिष्ठा करना लेखक का मुख्य उद्देश्य है। इस उपन्यास में आंगिक दृष्टि से कई त्रुटियां होने पर भी ओड़िआ उपन्यास साहित्य के आदिपर्व में 'पद्ममाली' के प्रकाशन के बाद रामशंकर का यह कदम भावी आशा और संभावनाओं का पथ उन्मुक्त कर देता है। व्यासकवि फकीर मोहन सेनापति और गोपालवल्लभ के उपन्यास इसके ज्वलंत प्रमाण हैं। कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, वर्णन, रचना-शैली के दृष्टिकोण से 'विवासिनी' अपने अग्रज 'पद्ममाली' से उच्चांग होने पर भी रचनात्मकता की दृष्टि से उन्नत कलागत चेतना का अधिकारी नहीं है।

ओड़िआ कथासाहित्य तथा गद्यशैली नूतन कलेवर और नवजीवन प्राप्त करने के लिए जिस महान स्रष्टा की प्रतीक्षा में थे, उस दीर्घ प्रतीक्षा और तपस्या

की सिद्धि हैं ओड़िआ कथासाहित्य के वरपुत्र, ओड़िआ भाषा के त्राणकर्ता, ओड़िआ कथा साहित्य के यथार्थ जनक एवं प्राण-प्रतिष्ठाता व्यासकवि फकीर मोहन सेनापति (1843-1918)। गद्य और पद्य दोनों में आप सर्वतोमुखी प्रतिभा पुत्र थे। कथासाहित्य में भी कहानी एवं उपन्यास दोनों में उनकी प्रतिभा के हस्ताक्षर उत्कीर्ण हैं। फकीर मोहन के चारों उपन्यासों (छमाण आठगुंठ, लछमा, मामुं, प्रायश्चित्त) का रचनाकाल 1898 से 1915 है अर्थात् वे सेनापति की 55 से 73 वर्ष की उम्र में लिखे गये हैं। ऐतिहासिक उपन्यास 'लछमा' ('अपूर्व मिलन' नाम से 1901 में लिखा गया तथा 1914 में पुस्तक रूप में प्रकाशित) के अलावा तीनों उपन्यास ओड़िसा के जनजीवन और सामाजिकता के आधार पर लिखे गये हैं। समग्रतः चारों उपन्यासों का अंतःस्वरूप देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि फकीर मोहन की संधानी शिल्पदृष्टि में मुगल, मराठा और अंग्रेजी शासन के भले-बुरे प्रभावों को वहन कर रहे ओड़िसा के दो शताब्दियों के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का रसभाष्य उनके उपन्यासों में नाना चरित्रों के माध्यम से अभिव्यक्ति पा सका है। अनुभूति तथा अभिज्ञता के जीवन-विद्यालय में पनपी फकीर मोहन की सारस्वत प्रतिभा से शुद्ध उत्कलीय परिवेश में और जीवंत लौकिक भाषा की रसाल शैली की सहायता से मानव के द्वैत रूप—देवता का शुभ मूर्त्तरूप तथा शैतान का कुत्सित रूप, का चित्र जिस प्रकार सजीव ढंग से अंकित हुआ है, एवं मानवीय मौलिक आवेगों के साथ विभिन्न चरित्रों के प्रति करुणा तथा सहानुभूति संचार हुई है, उन सबने उन्हें एक उदार मानवतावादी कलाकार के रूप में चिरंतन जयमाल्य प्रदान की है। जीवन के गहन यथार्थ के साथ महान आदर्श-चेतना तथा जीवन-निष्ठा के साथ उदार मानव प्रीति उनकी सृष्टि में जिस प्रकार दिखायी पड़ती है, उनका समाज-सचेतन एवं संग्रामशील व्यक्तित्व का पांचजन्य उनकी शिल्पसृष्टि के अंतःस्वरूप में तदनुरूप श्रुतिगोचर है। आधुनिक कथाशिल्पियों के आदिगुरु फकीर मोहन वास्तव में आधुनिक शिल्प चेतना के भी अग्रदूत थे। उनके अंतिम उपन्यास 'प्रायश्चित्त' का मूल प्रश्न था 'टंका छाड़िले कअण न मिळि पारे ?' (रुपये फेंकने पर क्या नहीं मिल सकता ?) और फकीर मोहन ने चेतावनी दी थी—'जेउं पापर आश्रय येनि सभ्यता उत्तरोत्तर वृद्धि पाइअछि, सेहि पाप पाइं भिन्न क्षेत्ररे प्रायश्चित्त लोडुछि।" (जिस पाप के आश्रय में सभ्यता की उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है, उसी

पाप के लिए किसी और क्षेत्र में प्रायश्चित्त की आवश्यकता है ?) और यह बात सिर्फ उसी युग में नहीं, आधुनिक युग और जीवन के लिए भी समान रूप से लागू होती है। यहां जीवन के लक्ष्य और साधन के बारे में प्रश्न उठाया गया है। उनकी अमर कृति 'छमाण आठगुंठ' (1898) को चरित्र चित्रण और रचना शैली के आधार पर, ओड़िआ उपन्यास-साहित्य में अननुकरणीय कालजयी 'क्लासिक' का स्थान दिया गया है।

फकीर मोहन की अनन्य प्रतिभा और शिल्प रचना के इस समृद्ध युग में एक बलिष्ठ व्यतिक्रम के रूप में स्मरणीय हैं गोपालवल्लभ दास, अपने 'भीमाभूयां'। (1908) के लिए। ओड़िसा के आदिवासी जीवन को लेकर चलता है 'भीमाभूयां'। यद्यपि 'पद्ममाली' की तरह इस उपन्यास का प्राण केंद्र है रोमांस। किंतु लेखक इसमें प्रकृति की आरण्यक संतान एक आदिवासी भूयां जाति के युवक और आभिजात्य के अंतःपुर में प्रतिपालित एक राजकन्या के बीच गहरे प्रणय का जो मार्मिक चित्र प्रदान करते हैं, गतानुगतिक प्रणय चेतना की पृष्ठभूमि पर वह निश्चित एक साहसिक कदम है। सचमुच लेखक की मौलिक तथा रोमांटिक दृष्टिभंगिमा का परिचायक है। पर इस उपन्यास में चरित्रों की तुलना में उसकी आख्यायिका, परिवेश का सावलील वर्णन, यथार्थ चित्रण उतना शक्तिशाली और आकर्षक नहीं हो पाया। लेखक का मध्यकालीन काव्य शैली में वर्णन और आलंकारिक भाषा प्रयोग उपन्यास के कथा प्रवाह को शिथिल तथा निरुत्ताप कर देता है। फिर भी सारस्वत रुचि के क्षेत्र में लेखक इस साहसिक कदम से साहित्य के इतिहास में स्मरणीय तथा सम्मानित हो गये हैं। लेखक के प्रथम संकेत की संभावनाओं पर परवर्ती युग में ओड़िसा के आदिवासी जीवन, समाज तथा चरित्र के अंतरंग रूपकार बने हैं आज के प्रतिष्ठित तथा सिद्ध उपन्यासकार गोपीनाथ महांति !

फकीर मोहन के बाद ओड़िआ उपन्यास विविधमुखी जीवन-वैचित्र्य को वहन कर अंग तथा आत्मा के दृष्टिकोण से असंख्य भाव-विभावों से समृद्ध होने के साथ-साथ अपने यात्रापथ को प्रशस्त एवं जयश्रीमंडित कर सका। बीसवीं शताब्दी का भावादर्श तथा अंतर्राष्ट्रीय शिल्प चेतना के साथ उड़िआ कथाकारों का निविड़ परिचय तथा संपर्क के फलस्वरूप ओड़िआ समस्याओं का आगमन, मानव के द्वैत-व्यक्तित्व के साथ जटिल मन की गहराइयों में अनेकों विरोधी

प्रवृत्तियों का वैज्ञानिक विश्लेषण हुआ । ग्राम्यजीवन के साथ यांत्रिक-सभ्यता के संघर्ष के फलस्वरूप मानवीय मूल्य बोधों में ह्रास, क्षय और परिवर्तन हुआ, जिससे इस सारी पृष्ठभूमि पर एक स्थिर, अचंचल मानवीय प्रत्यय के अनुसंधान का आलेख्य दृष्टिगोचर होता है । फकीर मोहन युग से लेकर सांप्रतिक काल तक ओड़िआ में अनेकों कवियों (यथा चिंतामणि महांति, नंद किशोर बल, कुंतला कुमारी साबत, कांतकवि लक्ष्मीकांत, गोदावरीश मिश्र, गोदावरीश महापात्र, प्राणकृष्ण सामल, डा. मायाधर मानसिंह, ज्ञानींद्र वर्मा, सच्चिदानंद राउतराय आदि) ने उपन्यास रचना में हाथ दिया; किंतु नंदकिशोर बल का प्रणयधर्मी—संस्कार चेतना संबंधी 'कनकलता' (1925); सच्चिदानंद राउतराय का यथार्थवादी नायक के भावादर्श और सामाजिक अभ्युदय के स्वप्न लिए व्यंगधर्मा 'चित्रग्रीव' (1936) तथा कांतकवि लक्ष्मीकांत का वैप्लविक मानव का वार्तावह 'कणामागुं' (1937-1951) में छोड़ दें तो और कोई उपन्यास सामयिक लोकप्रिय होने के बावजूद कालजयी होकर कला की कसौटी पर खरा उतरता नहीं लगा । दूसरी ओर जो काव्य-कविता के क्षेत्र में अपनी सृजनशील प्रतिभा के हस्ताक्षर अंकित करने पर भी उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं उनमें डा. कालिंदीचरण पाणिग्राही ('माटिर मणिष', 'लुहार मणिष', 'मुक्तागड़र क्षुधा', 'अमर चिता') और नित्यानद महापात्र ('जीअंता मणिष', 'हिड़माटि', 'भंगा-हाड़', 'जीवनर लक्ष्य') के नाम उल्लेखनीय हैं । उच्चांग मानवीय मूल्यबोध तथा आत्मिक आदर्श पर आधारित कालिंदीचरण का 'माटिर मणिष' तथा त्याग चेतनाश्रयी प्रणय के वेदनाबोध एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पर प्रतिष्ठित नित्यानंद का 'जीअंता मणिष' ओड़िया उपन्यास साहित्य में दो स्मरणीय रचनाएं हैं । कालिंदीचरण के 'माटिर मणिष' के साथ सबुजकालीन अनेकों कलाकारों के सामूहिक उद्यम से रचित नगर जीवन पर आधारित मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'वासंती' भी यहां स्मरणीय है । इसके अलावा जिन कुशल कथाकरों ने ओड़िआ उपन्यास साहित्य को समृद्धिशाली बनाया उनमें कुछेक उल्लेखनीय नाम यहां गिनाये जा सकते हैं—वैलावचरण दास (मनेमने), उपेंद्रकिशोर दास (मलाजह्न), दिव्य-सिंह पाणिग्राही (तू मो मा), राजकिशोर पट्टनायक (चलाबट), कमलाकांत दास (बोउ), हरेकृष्ण महताब (प्रतिभा), लक्ष्मीधर नायक (हे मोर दुर्भागा देश), अनंत प्रसाद पंडा (कुलि), रामचंद्र मिश्र (नाककटा चित्रकार), बसंत

कुमारी पट्टनायक (अमड़ाबाट), बामाचरण मित्र (चंद्र ओ चंपा), सुरेंद्र महांति (अंध दिगंत और नीलशैल), चंद्रशेखर रथ (यभ्राारूढ, असूर्य उपनिवेश), शांतनुकुमार आचार्य (नरकिन्नर, शताब्दीर नचिकेता), महापात्र नीलमणि साहू (तामसी राधा), बैरिस्टर गोबिंद दास (अमावस्यार चंद्र), हरिहर वाहिनीपति (कारार मयिष), विभूति पट्टनायक (चपलछंदा) । इनमें अधिकांश लेखक एकाधिक उपन्यास रचयिता होने पर भी जो उपन्यास कलात्मक विशेषता तथा वैशिष्ट्य की दृष्टि से प्रतिनिधित्व करते हैं, उनका नाम कोष्ठक में दिया गया है ।

ओड़िआ उपन्यास साहित्य जिस यशस्वी युगल स्रष्टा को लेकर गौरवान्वित है, पिछले चार दशकों से जिन्होंने अविश्रांत लेखनी चलाकर उपन्यास के गुणात्मक तथा परिमाणात्मक अभिवृद्धि की है. सौभाग्यवश वे दोनों भाई हैं अग्रज कान्हुचरण महांति तथा अनुज गोपीनाथ महांति । समाज-चेतना की प्रांजल अभिव्यक्ति, मनोवैज्ञानिक द्वंद्व का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण, मानवीय मूल्यों के विपर्यय से उत्पन्न कारुण्य तथा आत्मग्लानि, परिवेश का सफल रूपायन, उच्चांग चरित्रों का निर्माण तथा गहरी जीवनानुभूति के साथ निर्दिष्ट जीवन-प्रत्यय का सांकेतिक अन्वेषण इन दोनों कलाकारों के साहित्य में दृष्टिगोचर है । कान्हुचरण की रचनाओं में 'हा अन्न', 'सास्ति', 'अदेखा हात', 'झंझा', 'तुण्डबाइद', 'का', 'परि', 'शर्बरी', 'तमसातीर' आदि जीवन की विभिन्नताओं को उद्घाटित करने तथा अपने कलात्मक वैभव के कारण उल्लेखनीय हैं । गोपीनाथ की 'परजा', 'अमृतर संतान', 'दादिबुढ़ा', 'शिवभाई', 'अपहंच', 'हरिजन', 'दानापाणि', 'लयविलय', 'राहुर छाया', 'माटिमटाल' आदि उनकी विपुल कृतियों में तदनुरूप प्रतिनिधि स्थानीय उल्लेखनीय कृतियां हैं । वस्तुत: जीवन की व्यापकता, उसके वैचित्र्य तथा गहनता की कलात्मक अभिव्यक्ति, जीवंत एवं उन्नत चरित्र-चित्रण की दृष्टि से गोपीनाथ इस क्षेत्र में सर्वोत्तम स्रष्टा के रूप में आधुनिक ओड़िआ साहित्य में सम्मानित हैं ।

आदिवासी जीवन को अपनी सारी आशा-आकांक्षाओं तथा सांस्कृतिक प्रत्यय के विश्वस्त चित्र के द्वारा गोपीनाथ के 'परजा', 'अमृतर संतान', 'दादिबुढ़ा', 'शिवभाई' एवं 'अपहंच' में जैसी सरस तथा स्वच्छंद अभिव्यक्ति मिली है, वह अतुलनीय है ।

बलिदत्त सूअरों के बाड़े की ओर चल पड़ा है, कंधे पर एक बहंगिया है। उसे सूअर का गू चाहिए, अपने लिये नहीं, साहब के बंगले के लिये।

"इन गुलाब की जड़ों में मुट्ठी-दो-मुट्ठी सूअर का गू देने से फूल बड़े-बड़े होते हैं, माली," मेम साहब ने कहा, "गुलाब को सूअर का गू, क्याना को घोड़े की लीद, और इसके अलावा खूब पानी।"

बलिदत्त माली नहीं है। किसी बिजनेस कंपनी का एक युवक कर्मचारी है।

सुबह दफ्तर जाकर बारह बजे शाम के 'नंदन कानन' होकर लौटते समय माली को मेम साहब से फरमाइश करते उसने सुन लिया था। और उसने बिना किसी के कहे पूछे, खुद ही भीष्म-प्रतिज्ञा कर डाली, "सूअर का गू चाहिए ? वह तो मैं ला दूंगा, जितना चाहे, लीजिये, मैं चला।"

मेम साहब जरा मुस्करा पड़ी थीं।

उसी मुस्कान के भरोसे बहंगिया लेकर बलिदत्त चला जा रहा है धूप में ही। सूट पहने है, टाई खिंची है, धूप में जल रहा है, सुबह का खाया कबका बासी पर-वाल, (पानी वाला चावल) पेट में पड़ा-पड़ा पानी हो चुका है। गंदा रुमाल निकालकर पोंछने पर भी पसीने की धार बहती ही जा रही है। पर फिर भी वह गंदी बस्ती के कूड़े करकट में से छानकर सूअर का गू समेटता चला जा रहा है। इस कठोर श्रम के बीच भी यदा-कदा कौंध जानेवाली विजय की आशा उसे अधीर करती रहती है। बलिदत्त जागे में ही सपना देखने लगता है।

"लो हो गया बाबू। टोकरी तो भर गयी, और क्या ?" भारवाहे ने कहा।
"चलो, चलो, अभी कहां भरा ? उसे तो ऊपर तक भरना होगा। देखा नहीं, कितने गुलाब के पौधे हैं ?"

भारवाहे ने लंबी सांस खींची। धूप में थकान-सी आ गयी थी। पसीने से लथ-पथ उसकी पीठ पर हाथ थपथपाते हुए उसे फुसलाने के से स्वर में कोमल होकर बलिदत्त ने कहा, "मजूरी तो पायेगा, फिर आनाकानी किस लिए ? चल भाई, चल न ?"

बोझ लेकर लौटते समय साइकिल पर आते हुए महापात्र बाबू मिले। महापात्र बाबू सूट पहने हुए हैं, कंपनी के बड़े बाबू जो ठहरे।

"क्यों, बलिदत्त बाबू, धूप में किधर ?" महापात्र जी उतर गये। बलिदत्त ने प्रमाद समझा। कई बार खबर निचोड़ने के लिये महापात्र जी ने उसका पीछा किया है।

"क्यों बात क्या है ? सब ठीक तो है ?"

"जी, वैसे ही चलता है।"

"हूं, मैंने जो लिखकर भेजा था, साहब ने उस पर क्या लिखा ?"

"अभी फाइल साहब से लौटी नहीं है, मैं कहां से जानूंगा ?"

"आज सुबह मैं गया था, समझे बलिदत्त बाबू। जानते हैं, साहब ने क्या किया ? कहा—बैठिये। बैठने को कहकर अपने सिगरेट केस से निकाल कर मुझे एक सिगरेट दी। मजबूरन मुझे खींचनी पड़ी। मैं तो ताज्जुब में पड़ गया।"

"जी, आप तो अब हमारी तरह नहीं हैं। ये साहब किस बात में आपसे बढ़कर हैं ? क्या विद्या में, क्या किसी और चीज में ? खाली गोरी कंपनी में गोरे आदमी ठहरे, इसीलिए तो! यही आंखें देखेंगी कि, आप ही आयेंगे हमारे साहब बनकर। कंपनी की जड़ें जाकर कहां सात समुंदर पार, आप ही चलायेंगे फिर यह डिपो।"

"लो, पान तो खालो, पर जरा संभल कर, जर्देवाला है, हां।"

"जी, आपका पान, मेढक के पेट में भी कहीं घी हजम होता है ?"

"अरे, खाओ न, जवान छोकड़े। अब तो चालीस के हो गये। तुम्हारी तरह पच्चीसी में हम जो-जो खाते थे, सुनेंगे तो अचंभा लगेगा।"

ये सुनाये बिना अब नहीं छोड़ेंगे। उधर मेम साहब कहीं चली गयीं तो देख भी नहीं सकेंगी कि बलिदत्त बोझ लेकर आया है। उधर रास्ते में अटक कर भारवाहा खड़ा हो गया, कुछ कह भी नहीं पाता है।

"जा, जा, रास्ता क्यों बंद कर दिया ?—"

"अरे, यह सब क्या है बलिदत्त बाबू ?—"

"जी, दो क्यारी सब्जी की जो लगायी है, एक बोझ खाद ले रहा हूं।"

"कितने में खरीदा ?—मैंने भी एक क्यारी बैंगन के बीज डाले थे, पर उनके पत्ते खाद बिना पीले पड़ते जा रहे हैं। खाद कहां से मिल जाती है तुम्हें ? अरे भारवाहा, एक बोझ हमारे घर पर भी डाल आना, समझे ?"

बड़ों की बात का कोई जवाब नहीं, स्वर्ग की कोई सीढ़ी नहीं।

बलिदत्त के चेहरे पर पसीना आ गया, थूक निगलते-निगलते उसने कहा—"जी, यह भी कैसी बात, मैं खुद जाकर दे आऊंगा। · साहब आप पर सबसे अधिक खुश हैं, हुजूर—"

"तुम्हें कैसे पता चला ? कौन कह रहा था ? क्या लिखा है उन्होंने, तब आप जानते हैं।—अरे बोलो भी। भई, धूप हो रही है, आओ चलो हमारे घर। हूं, तुम भी एक वो हो, आओ, आओ ना बलिदत्त बाबू !"

"आप खुद ही जान जायेंगे, हुजूर, बस इन गरीबों के लिये मिठाई तैयार रखें। साहब ने पता नहीं फिर किसलिये बुलाया है, मैं जरा जल्दी में हूं, हुजूर।"

"अच्छा, तो जाओ। तुम बहुत कार्य-कुशल आदमी हो बलिदत्त बाबू, इस कच्ची उमर में इतना दायित्व बोध मैंने बहुत कम लोगों में ही देखा है। जो हो, तो फिर, मोटे तौर पर सब ठीक-ठाक है, क्यों ? तभी सिगरेट दी, मैं तो आश्चर्य में भर गया था। कहा, किसी को तो वे इस तरह नहीं कहते। जंगली जीव को पालतू करना बहुत कठिन काम है।"

बलिदत्त हल्के से मुस्करा देता है।

यह हंसी दूसरे को अंजन लगाने की तरह अपने आप आती है। महापात्र जी साईकल पर चढ़कर फुर्र से उड़ गये हैं सिगरेट पाने की विजय का प्रचार करने। बलिदत्त मन-ही-मन उन्हें गाली देता जा रहा है।

बायीं ओर एक स्कूल है। तोरण बंदनवारों से दरवाजे सजे हैं। आज तीसरे पहर यहां उत्सव होगा, साहब पधारेंगे। साहब के आगमन पर युवक शिक्षक अरुण बाबू छात्रों से गीत का अभ्यास करवा रहे हैं—

"जन गण मन अधिनायक जय हे,—"

बलिदत्त खीझकर देखता हुआ चला गया, यह सारा बंदरपना। मन की गहराई में ईर्ष्याजनित क्रोध हो, ऐसी सुविधा उसे नहीं है। चेतन मन में अभी वह खांटी स्वदेशी है—यह कैसा अपमान, अरुण बाबू को क्या थोड़ी-सी समझ भी नहीं रही।

"अरे बलिदत्त बाबू, आप···।"

"अच्छा, अरुण बाबू, साहब क्या सोचेंगे, बोलिये तो ? आप क्या सच···"

"आप समझते नहीं, यह है एक तीर से दो शिकार। साहब ठीक समझेंगे। वे

कितने बड़े हैं,—'भारत भाग्य विधाता'। बाहर के लोग खुश होंगे अपना वह प्रिय गीत सुनकर। गीत तो गीत है, उसमें क्या रोक-टोक। आप समझते क्यों नहीं, यह तो चापलूसी का दिन है। हमारा और है भी कौन ?"

बलिदत्त हें···हें-हें हंस पड़ा।

उसका क्या आता-जाता है ?

अरुण बाबू कुछ अधिक अक्लमंद आदमी ठहरे, वे क्यों किसी की बात मानेंगे। अक्ल होगी तो आदमी अपना मतलब पहले किसी के आगे नहीं बखानेगा।

भारवाह के साथ चलता बना।

एक बज रहा है, कड़कती धूप। मेम साहब नहीं। माली भी सो गया है। खाद को वहीं डालकर जाने पर बहादुरी माली ले लेता, खुद लाया है। अतः बलिदत्त ने प्रतीक्षा करना ही उचित समझा।

चारों ओर फूलों की बगिया, दोपहर की कड़ी धूप में भी छाया बिछी पड़ी है, देह से छूकर मीठी-मीठी हवा फिसली जा रही है हल्के-हल्के। प्रकृति की अलसायी शोभा। उस ओर छोटी कोठरी के सामने बाहर कुछ चूजों को लिये मुर्गी दाना चुग रही है। घुड़साल से घोड़े ने विरही यक्ष का आर्त्तनाद छेड़ दिया है। हाथ-भर लंबी जीभ निकाल कर बड़ा कुत्ता बरामदे में हांफ रहा है। उस ओर युवती आया कपड़े-लत्ते सुखा रही है, उसके खुले केश, कसा हुआ छोटा ब्लाउज और उसकी तरल दृष्टि उसे एक जंतु-सी बना रही है। देखने को बहुत कुछ है, सोचने को भी बहुत कुछ है।

पर दूर तक कर बलिदत्त बाहर प्रकृति की ओर नहीं देख रहा था, छायातले वह पसीना पोंछते-पोंछते अपनी ही बात सोच रहा था।

ठिगनी देह, यथासाध्य सजाने पर भी वह बड़ी नहीं दिखायी देती। विद्या थोड़ी, और सुयोग भी नहीं नाम के पीछे विद्या का विज्ञापन टांकने का। दूर परदेश की किस अनजान गली, मुहल्ला वहां करज के बोझ से दबा, फूस का टपरा, बरामदे में खों-खों खासता बात-रोगी बाप बूढ़ा हो गया है। किस अज्ञात गली की धूल-माटी का अज्ञात आदमी है यह बलिया।

किंतु उसे चाहिए संस्थिति।

जबसे होश संभाला है तब से उसने पूर्वजों की लगायी नींव को कभी स्वीकारा नहीं है।

उसने लड़ना सीखा है, अमर बेल की तरह जन्म लेकर उसी की तरह लिपट कर बढ़ना सीखा है, लिपटना सीखा है, जो सामने आया उसे अपनाकर समेटना सीखा है और उस सब पर पैर रख कर सिर उठाया है। बलिदत्त अपने कायदे से आप बढ़ा है।

वह और भी बढ़ना चाहता है।

भारवाहे ने हांक लगायी, "बाबू, जाऊं।"

"ठीक है, तो चल, यहीं कुरी दे।"

बलिदत्त ने गहरी सांस ली। अप्रसन्न हो लौटते समय उसे याद आया धूप कड़ी है, भूख भी तेज है।

सरोजिनी उसकी नवविवाहिता पत्नी है।

कंधे पर 'पति परम गुरु' ब्रूच, माथे पर विवाह की मुहर—सिंदूर की रेखा, अंगुली में एक मुंदरी, उस पर बलिदत्त का नाम लिखा है। सोने के कमरे की दीवार पर एक फोटो है—काले पर्दे के आगे दो कुर्सियों पर वह और बलिदत्त बैठे हैं।

एक ही मार्का, एक ही तरह के छोटे-छोटे घरों की कतार, उनमें से एक में उनका संसार है। सामने से रास्ता चला गया है। रास्ते के उस ओर कुछ और बड़े घरों की एक कतार है।

छोटे कमरे में सरोजिनी और बलिदत्त की गृहस्थी बिछी पड़ी है। छोटे अहाते में जरा-सा बगीचा, साग-भाजी, बैंगन, भिंडी, बाहर पैखाने के पास आम के पेड़ और उनकी छाया में दो-चार केले के झाड़, नीचे थोड़ी-सी प्रसारिणी लता, आंगन में एक नींबू का गाछ जो कि फूलों से लदा है। सोने के कमरे में दो ट्रंकों में सारी संपदा, छत से दोनों ओर रस्सी बांधे जो बांस झूल रहा है, उस प[illegible] [illegible]रोजिनी की साड़ी और बलिदत्त के कपड़े-लत्ते मिले-जुले पड़े हैं, भंडार घर में कुछेक हंडी और मटके, खरीदा हुआ रसोई का सामान संभला है, उसके बाद रसोई घर, बाहर काठ पड़ा है।

सब ओर घूम-घूमकर देखने के लिए सरोजिनी को काफी फुर्सत है—वह घूम-फिरकर अपनी संपत्ति देखती है, सब उसका अपना है, यह सोच-सोच कर उसे बहुत खुशी होती, बुहारी लेकर चाबियों का गुच्छा नचाते-नचाते घर झाड़ते समय भी कर्तृत्व से मन भा जाता है, बुहारी को और कसकर पकड़ती।

पर सरोजिनी बलिदत्त-सी बिलकुल नहीं है, न देह से, न मन से। ऊंचाई में वह

स्वामी से चार अंगुल बड़ी, डील-डौल में उससे सवाई, स्वामी का छोटा तीखा मुंह तो उसका बड़ा और गोल, बड़े-बड़े दांत। अपने बारे में उसकी धारणा है— उसका सब कुछ बड़ा-बड़ा है। मन उसका केवल अपने घर-गृहस्थी में बंध कर नहीं रह सकता, घर में काम-धाम भी बेसी नहीं, झमेला-झंझट भी नहीं। इसी से किसी अनजान की प्रतीक्षा करती-सी झरोखे के पास बैठकर दूर की ओर देखती रहती— सोचती रहती। दिन में दो बार काम से लौटते समय उसी अवस्था में बलिदत्त उसे देखता, तो एक पुलक उसकी नपी-तुली पोषाक का चोगा धकिया कर बाहर निकल देह को कंपा देती। गहरी सांस लेकर बलिदत्त सोचने लगता कि सरोजिनी उसकी ही प्रतीक्षा में बैठी है, आंखों में आंखें डूब जातीं, हल्की-सी हंसी बिखेर कर सरोजिनी दौड़ती हुई आकर किवाड़ खोल देती।

दिन के दो बजे हैं, बलिदत्त घर लौट रहा है, अब तक वह अपने दानापानी की फिक्र में डूबा है। यह जीवन, कठोर कर्कश पथ, फिर भी पहाड़ चढ़ना होगा। उसके बाद ? उसके बाद ?

रास्ते के उस ओर सामने वाले घर में कालेज, उस घर के नीरोद बाबू का भतीजा, छुट्टियों में आया था। कालेज में पढ़ता है। ढेर सारी किताबों के सामने बैठकर पन्ने उलटते-उलटाते अचानक इस ओर के झरोखे पर उसने निगाह की, इसके बाद दिन के दो बजे उसे याद आया अपना व्यायाम। बांहें टेक कर, छाती फुलाकर, दो चमकते डिबल लेकर उसने व्यायाम शुरू कर दिया भीम-पराक्रम से। कितना भीषण दिख रहा है, भालू की-सी छाती। देह टांचने पर ऊबड़-खाबड़, पत्थर ही पत्थर। सरोजिनी पहले तो अभ्यासवश मुंह में कपड़ा ठूंस कर हंसी, इसके बाद होंठों की हंसी, होंठों पर ही बुझ गयी, मुग्ध होकर देखती रही। क्रमशः देह थरथरा कर बार-बार गहरी सांस, देह की नस-नस में कनकनाने झन-झनाने लगी है, वह स्वयं भी पिघलती जा रही है, पिघल रही है। शरीर ढीला छोड़ दीवार के सहारे सरोजिनी बैठी है, मुंह थोड़ा-सा खुला है, माथे पर पसीने की बूंदे, दृष्टि कहीं दूर टिकी हुई, चमकती आंखों में उदासी की काली परत।

व्यायाम चल रहा है।

कालेज छात्र ने तिरछा देखा झरोखे के पास चित्र-प्रतिमा है, पर कहां, वह तो देख हीं नहीं रही ? रोज ये लोग यों ही होते हैं, बस खाली मृदंगम की मिट्टी है, जिसमें कविता नहीं। उसने प्रतिज्ञा की, विवाह नहीं करूंगा। इसके बदले व्यायाम

—वह यथेष्ट अच्छा है। दोपहर के निरर्थक परिश्रम का पसीना पोंछने के लिए जल्दबाजी में वह कमरे में चला गया।

किंतु सरोजिनी वैसे ही बैठी है। मुंह थोड़ा खोले, हंसने की तरह। दूर तक निरर्थक दृष्टि, जैसे अंदर बाइस्कोप है, रास्ते पर से वही दृश्य बलिदत्त ने देखा, क्षण-भर के लिए विचलित हुआ, न उच्चाशा याद रही, न संस्थिति मन में रही। न नौकरी की याद, न साहब की। खाली वह जिस तरह कि भूखे कुत्ते-सा, नाक-कान मूंदे पीता जा रहा है, पीते चला जा रहा है। इसके बाद कूकरिया कृतज्ञता और आत्मग्लानि—

सरोजिनी बैठी उसे देख रही है—

"क्यों, जाप कर रही हो ?" बलिदत्त कह कर हें-हें हंस पड़ा। सरोजिनी चौंकती-सी उठी। दुनिया का सारा कर्त्तव्य-बोध, आत्म-त्याग का प्रायश्चित-बोध सिर पर से मटके से पानी की तरह ढल गया। 'पति परम गुरु' हंसी और दृष्टि का यह असर था। जल्दबाजी में किवाड़ खोलते-खोलते काठ की अर्गला अंगूठे से टकरा गयी, मन के अंदर की प्रायश्चित्त-आकांक्षा परिणति पा गयी, पालतू बिल्ली सी कूद-कूद कर रसोई घर की ओर दौड़ते-दौड़ते सरोजिनी ने मान भरे स्वर में कहा—"इतनी देर ? सुबह जरा-सा खाया था, और भूख नहीं लगती ? देह कैसे लुकाठे-सी सांवली पड़ गयी, माई रे, मुई चाकरी क्या स्वर्ग को ले जायेगी ?"

"अच्छा, अच्छा, लाओ, जो देती हो दे भी दो, जरा जल्दी करो, फिर अभी निकल जाना होगा—"

सरोजिनी ने झटपट आसन बिछा दिया—जल, भात-दाल। बलिदत्त खाने बैठ गया। मक्खी उड़ाते-उड़ाते सरोजिनी ने कहा—

"राम बाबू के घर फिर टोकरी आयी है।"

"सच ?" राम बाबू पड़ोसी हैं।

"दो-तीन देहाती आये थे, साथ में एक बहंगिया, चावल, घी, केले का पूरा गुच्छा, जाल में लपेटी हुई एक बड़ी-सी मछली। राम बाबू की औरत ने पलक मारते ही चीजें घर में रखकर सांकल बंद कर ली। और खाली चें-चां यही तो आवाजें आ रही हैं।"

मुंह में भात रखे गें-गें करते हुए बलिदत्त ने कहा—"छोड़ो भी, हमारा क्या जाता है, सब तो राम बाबू नहीं हो सकते।"

"नही जी, मैंने तो यों ही कहा न; मैं क्या कह रही थी कि, दिन-दोपहर यह पाप की कमायी लोग कैसे हजम करते हैं। उन्हें क्या कुछ होता नहीं।"

"होता है, होता है, होता कैसे नहीं, समय पर सब होगा।" खूब जोर से कह कर बलिदत्त ने एक गिलास पानी पी डाला। सरोजिनी ने देखा, स्वामी के गले में एक बड़ा-सा कांटा ऊपर-नीचे हो नाच रहा है। हंस पड़ी। बलिदत्त चौंक पड़ा—"हंसी क्यों ?"

"अभी तुमने जो कहा, समय पर सब होगा। तुम्हारे साहब के कान में यह बात आ गयी तो राम बाबू की पत्नी का सारा दबदबा जाता रहेगा। मोटी को देखो तो जरा गहने पर गहने बनाये जा रहे हैं, जोड़ी-पर-जोड़ी। ऊंह जमाना जैसे सिर्फ राम बाबू का ही है। तुम तो कहते थे, उतने पढ़े-लिखे भी नहीं हैं, तुमने तो एंट्रेंस किया है और वे खाली मिडिल पास हैं। और तुम्हारे साहब से कहने लगा…।"

सरोजिनी स्निग्ध दृष्टि से स्वामी का चेहरा और चेहरे के पीछे किसी दूर के भविष्य को देखती रह गयी—जहां टोकरी आती है, अलंकार गढे जा रहे हैं, नित्य मछली तलने की चें-चां सुनायी पड़ती है, ऐसा भविष्य—सरोजिनी के पैरों में दंभ आ जाता है।

बलिदत्त हंस पड़ा, कहा—"सब्र करो, मेवा फलेंगे।"

सरोजिनी पान लगाने बैठ गयी। बलिदत्त बाहर वाले कमरे में चला गया। सोचा आज की बात कहूं या नहीं। बहुत दिन से अंदर घुसने के लिए वह जरा-सा रास्ता खोजता है, खाली सिर टकराता है, रास्ता नहीं दिख रहा था। आज वह जरा-सी सुविधा कर आ सका है। सोचा, सरोजिनी सुनेगी, हो सकता है मुहल्ले में उड़ा देगी बात, तब ? विश्वासी कार्य कर करके वह बात पेट में रखना जानता है, अभ्यास हो गया है, अतः सारी बातें स्त्री से नहीं कहता। फिर वह सात-पांच की चिंता में डूब जाता है, वही दानापानी की अटूट योजना। सरोजिनी पान पकड़ा कर बर्तन उठाने गयी है। दूर से घोड़े की टाप सुनायी दी, मन की चेतना में एक शब्द गूंज गया, "साहब !" आदत के मुताबिक आधा चबाया पान मुंह से निकाल कर बाहर फेंक दिया, चेहरे का पानी, देह की ठानी, सब बदल गया, दांत भींच इंजिन भाप छोड़ने की तरह फिसफिसा कर चीख-सा पड़ा—"ऐ सरोज,—साहब, साहब—"

"माई री ! क्या देखूंगी ? वही गंजा लंगूर तो—"

"थत्, ऐ सरोज।—आओ ना,—साहब,—साहब।"

सरोजिनी हंसते-हंसते पास आ गयी। खटा-खट्, खटा-खट्, घोड़े की टाप नजदीक आती जा रही। झरोखे की लोहे की बाड़ पर देह झुका कर सरोजिनी देख रही है। बंदी यौवन की तरह, दूसरी ओर से कालेज छात्र किताब लेकर कुछ कंठस्थ करता-सा होंठ थरथरा कर इधर ही देख रहा है, सरोजिनी की पीठ के पास झुक गया है बलिदत्त, फीका होकर प्रतीक्षा में बाहर देख रहा है।

साहब आ रहा है।

रोज वह इसी रास्ते घुड़दौड़ कराता है दो बार, सब को दर्शन देने, आज की पारी यही है।

पर यह क्या ? खाली घोड़ा जा रहा है तीर की तरह, जीन कसी है, सवार का पता ही नहीं ! बलिदत्त ने आवाज लगायी—"सरोज, सरोज, कपड़े देना जल्दी से—ओ, सरोज, सरोज !" कितनी स्फूर्ति से उसने आंख-कान मूंदकर उस चोगे को देह पर डाल दिया। उसे याद भी नहीं। किवाड़ खोल जिधर से घोड़ा आया था उधर पागल-सा दौड़ गया। लोग कौतूहल से देख रहे हैं, कोई पूछने को हैं, पर पूछने से पहले ही बलिदत्त छू···। उत्साह पा कर रास्ते के कुछ आवारा कुत्ते उसके पीछे भागने लगे। बलिदत्त मन ही मन कह रहा है, 'मां तारा, तारा !' पैंट को नीचे से बायें हाथ की मुट्ठी से पकड़े हुए बटन लगाने का समय नहीं, जूते दोनों ढीले ही हैं, तस्मे कसे नहीं जा सके; किंतु यह सब मानो भाग्य के साथ दौड़ है, तारा, तारा,—बलिदत्त छूटा है।

ज्यादा दूर नहीं जाना पड़ा। रास्ते में एक जगह,—धूल से उठ कर आ रहा है साहब। सारी देह धूल में, चोट के निशान, यह कैसा रूप ! उत्तेजित हो कई बातें कह कर बलिदत्त साहब के चारों ओर चक्कर लगाने लगा, उत्तर में साहब के मुंह से सिर्फ गालियां। होश आया, साहब सहानुभूति से घृणा करते हैं। लंगड़ाते-लंगड़ाते चल रहे हैं साहब, जिधर घोड़ा गया है उधर ही। बलिदत्त ने घोड़ा खोजने के लिए आदमी भेजा, सईस को खबर देने के लिए आदमी भगाये, साहब के पीछे-पीछे चलने के अलावा और कुछ करने को कुछ था ही नहीं, अतः गंभीर होकर कदम गिन-गिन कर साहब के पीछे-पीछे चला।

अब, एक छोटा सा जुलूस। आगे साहब, पीछे थोड़ा हट कर क्षुद्र बलिदत्त, वीर-दर्प से चला जा रहा है, जनता को देख कर हंस देता है सगर्व, मन ही मन समझ

रहा है भाग्य उसके लिए परम सुयोग लाया है, साहब का पतन उसका उत्थान। सरक-सरक कर दल के दल सहकर्मी देख रहे हैं, उनकी दृष्टि में भय है—वे बहुत देर से आये हैं। बलिदत्त मन चाहा हुक्म दे रहा है, आंख के कोने से देख लेता है, साहब के मन की बात समझने के लिए, किंतु साहब जैसे मुखौटा बांधे हैं।

सईस घोड़ा पकड़े आ रहा है। घोड़ा हिनहिना रहा है। घोड़े की पीठ थपथपा, पैर सहला कर साहब ने झुक कर घोड़े के पैर को देखा।

कैसा आश्चर्य ! घोड़े के प्रति इतना स्नेह ! जनता में अस्फुट-सा गुंजन। बलिदत्त भी झुककर घोड़े का पैर देख रहा है। घोड़े के पैर के प्रति यह उसका प्रथम कौतूहल है। यह घोड़े का ही पैर है इसमें तो कोई संदेह नहीं; किंतु साहब क्या देख रहा है, अतः देखना ही होगा। साहब चीख पड़ा—

"पशु डाक्टर" और बंगले की ओर हाथ दिखाया। बलिदत्त पास खड़े एक आदमी से साइकिल छुड़ा कर पीं···सें छूटा, आदमी आश्चर्य से देखता रह गया।

साइकिल पर चढ़ कर पवन वेग से भागते समय मन में हंसी खिल रही है— यही मौका है, यही मौका है। जल्दबाजी में भागते समय जब पैर कटकटाने लगते हैं, मुंह हांफने लगता है, दिमाग के अंदर कलिंग (पक्षी) चिल्लाता है—यही उषा, यही उषा है। इसी तरह लीन हुआ जानवरों के डाक्टर को लेकर जब साहब के पास आता है तो देखता है कि घोड़ा खड़ा है, साहब घास पर घुटने के बल खड़े उसकी टांग को सहला रहे हैं।

उसने क्यों ऐसा किया पता नहीं, किंतु आनंद के उल्लास में बलिदत्त का मन घोड़े की पिछली टांग देखने को किया, सचमुच मानो वह कुछ खोज निकालेगा। पलक झपकते ही पास जाते जाते घोड़े ने लात झटकी, तकदीर से देह में न लगने पर भी पीछे हटते ही बलिदत्त ने पछाड़ खायी और साहब गरज उठा, उस की आंखें लाल हो गयीं।

सिर झुकाये खड़ा है, उस के सौभाग्य की बैलगाड़ी मानो उलट गयी एक ही धक्के में।

सहकर्मी संवेदना में मुस्करा रहे हैं,—बलिदत्त, इधर आओ ! इस तरह पांच मिनट; किंतु उसका मन पराजय से नहीं बंधता। बहाना बना कर बगीचे की ओर चला गया। खूब, मेम साहब टहल रही हैं।

"गुड मार्निंग !"

"गुड इवनिंग बाबू।" उसी क्षण जीभ जरा निकाल दांतों तले दबा ली। सच, संध्या तो हो आयी। मेम साहब ने उसकी बेचैनी देख ली है। किंतु नहीं, रुकना नहीं है, रुका सो मरा। हाथ हिलाते-हिलाते सुबह की कारगुजारी दिखायी उसने। कितनी घोड़े की लीद है, कितना सूअर का गू। कुएं में पड़े या गड्ढे में, वह उच्छ-वसित भाषा में वर्णन करता चला गया। मेम साहब सिर हिला रही हैं। ओह, कितनी खुशी, कितनी खुशी है। और भी उच्छवसित भाषा में वह उंडेलता चला गया, उगलता गया। "ओह ! आइ सो, माली यह सब लगा दो।" मेम-साहब दूर हट फूलों के गाछ बांहों में भर कर खेलती हैं, दूर से सहकर्मी देख रहे हैं। साहब फिर भी घुटने टेके हैं घोड़े के पास।

ढेर सारी फाइल लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं तीन कर्मचारी।

"जरूरी है हुजूर," बूढ़े कुलमणि बाबू कहते हैं।

"जरूरी ! जरूरी !" साहब चीखता है, "बाबू, बाबू ओ—मैड—" दौड़ कर बलिदत्त ने सलाम बजाया।

"बाबू, लिख दो, इस बार मैं किसी को योग्य नहीं देखता। आ !, घोड़े को जरा अच्छी तरह देखो, डाक्टर !"

दूर प्रतीक्षा में खड़े कर्मचारियों के चेहरे पर कालिख पुत रही है। बलिदत्त कागज ले कर चला जा रहा है।

विभिन्न दिशाओं से उसे ही इंगित द्वारा बुला रहे हैं। चुपचाप चला जा रहा है वह।

"तुम्हारे पति जैसे घोड़े की तरह दौड़ गये री," राम बाबू की स्त्री ने कहा, "मैं तो हक्की बक्की रह गयी ? सच बहुत कसरती आदमी हैं, कैसे फुर्र से उड़ गये।" सरोजिनी ने सोचा क्या जवाब दूं, हंसकर बोली—"सब का पेट थोड़े ही लट-कता है, जो दौड़ नहीं सकेंगे ?"

"हां री, दौड़ो, दौड़ो, मियां की दौड़ मसजिद तक। जितनी लोक-हंसाई करो,

महीने के वे ही साठ रुपल्ली तो, ना और कहीं से बढ़ेंगे ? हैं ? तो फिर इस तरह दौड़ने से क्या होगा ? जो होना है, होगा ही, तब इस तरह क्यों ?"

"और होगा भी कहां से दीदी, सभी का ऐसा भाग्य कहां कि सामने से भी आये और पिछले दरवाजे से भी ? कोशिश करने पर ही तो होगा।"

"किसकी बात कर रही हो ? जिसका सामने से भी आता है और पिछले दरवाजे से भी।"

"कोई भी हो सकता है।"

"हां, कलजुग की बात है, दूसरे को चलता देख लोग जल भुन जाते हैं। अरी, कैसी बात कहती हो, अपनी हैसियत दिखाने से कोई मना करता है, इस तरह जलने से तो अपना ही मांस गलेगा, घर में कुछ आयेगा तो नहीं।"

"हम क्यों झुलसेंगे, री दीदी ?"

"यही देखो न, अपने ऊपर ले ली, अपने पर ले ली तो; तू क्या मुझे कह रही थी ?"

छोटा मझला बच्चा रो रहा है—"मां, ओ मां !"

"आती हूं रे, आती हूं।" राम बाबू की स्त्री चली गयी।

बातें नहीं, उनकी बातें तो मीठी छुरी हैं।

उसके चले जाने के बाद सरोजिनी हार कर बैठ गयी। इच्छा हुई रो पड़े।

पर रोने से कौन सुनेगा ? दिलासा कौन देगा ?

बेकार है।

एक बात उसे भी याद आती है, उसका स्वामी लोक हंसायी करा रहा है। जो बात अपने मन में थी, घुन की तरह खाये जा रही थी, उसे उखाड़ बाहर कर दिया है, राम बाबू की बड़बोली स्त्री ने, अब वह और भी मैली है, देखा नहीं जाता, सोचा नहीं जाता। पर बिना सोचे उपाय नहीं, इस दूर परदेश में यह भावना ही उसकी बड़ी संगिनी है।

मां-बाप रट रहे थे अच्छा घर, अच्छा वर।

हलवाहों के गांव में खानदानी घर, चार बहनों में वह सबसे छोटी।

भला घर, भला वर—दोपहर खेलते हुए वह कान लगाये सुनती थी। सभी सहेलियों की हंसी-मजाक से उसे आभास मिल जाता।

बापू की जिद है कि जंवाई हो तो दस जनों मे से एक, पढ़ा-लिखा हो, नौकरी-

चाकरी करता हो। अतः जंवाई को सोने की घड़ी और साईकल देना निश्चित किया है, उतना और कोई बहन नहीं ले पायी।

सोने की घड़ी और साइकिल देने के लिए व्यवस्था की गयी, गांव में वर आया। गांव में हल-चल—वर आया है, पटाखे ही नहीं, बाजे भी कैसे बड़े-बड़े हैं। इसके बाद वर के रूप और आकृति के विषय में टीका-टिप्पणी चली—"आहा, हमारी बाई को ये वर, मानो सोने के कटोरे में जामुन !" विवाह से पहले एक लघु-युद्ध, शहरी और गंवार लोगों के बीच झगड़ा और मारपीट तक की नौबत आ गयी, कई लोग रूठ गये। सारी खबरें उस तक पहुंचती रहीं। डोली जब उठी, बापू का हाथ पकड़ कर रोई थी—"हां, बापू,—मुझे सबसे सवाया रखकर पानी में बहा दिया, हो, हां, बापू—"

इसके बाद जीवन लुढ़कता चल रहा है, कल्पना का राजकुमार और आशा-उच्छवास का मूर्त्त रूप यह चार फुट नौ इंच का—बलिदत्त।

अभिमान उतर आता है, चाहे जो हो, ये तो उसी का ही है, क्या ऐसा नहीं होता ? संसार में सभी क्या एक प्रकार के हैं ? यही उसकी संपत्ति है,—यही बढ़ेगी, घर बसायेगी, नाम करेगी, भगवान की दया होगी। सुबह-शाम सरोजिनी हाथ जोड़ती, रास्ते में गर्व से चलती। स्वामी को सुख में रखने के चक्कर में पड़कर बहन की तरह स्नेह से उसका दुख-सुख बूझती है। उसी छोटे से आदमी की ओर अपना मुंह झुकाकर जीवन का नैवेद्य अर्पित करते समय भावना में मातृत्व का आनंद पाती है।

किंतु जितने सुख के, जितनी खुशी के उपादान हों, कभी-कभी वह सुलग उठती है। देह में, सिर में आग भभक उठती है। दिर भर के धंधे की क्लांति और सांझ को भविष्य की योजनाओं के बाद जब बलिदत्त सुख से सोया हुआ खर्राटे लेता है, सरोजिनी नागिन की तरह सांय-सांय गहरी सांस खींचती है, छटपटाती रहती है, बार-बार उठ-पड़ कर हलचल मचाती है, स्वामी की ओर देखते समय उसके मन में नहीं होता जिक्-जिक् चमकती पीतल के 'पति परम गुरु' ब्रूच की छाया, गोल-मालिया उबलते मन से कटकटाती आंखों से झर जाती है विषाक्त हिंसक दृष्टि। मन के मेघ चलायमान होते हैं। देर से नींद आती है, सुबह फिर हंस-हंस कर फिर गृहस्थी को आशान्वित होकर परखती है।

राम बाबू की स्त्री के निर्दय मजाक ने फिर उसकी भावना को उभार दिया है।

सरोजिनी चूल्हे के पास बैठी है। आंखों से धीरे-धीरे धार बह रही है। सोचती है, लोग इतने निष्ठुर क्यों होते हैं ? दूसरे को चोट पहुंचा कर उन्हें क्या सुख मिलता है ? भगवान के संसार में इतने दुख क्यों हैं ?

जीवन की जितनी जटिल घड़ी में भगवान को पुकारने पर मन पसर जाता है गांव-गली की ओर, अपने पीहर की ओर, उस फूल की टपरी की अंधेरी कोठरी है। काठ के खटोले पर पीतल की राधाकृष्ण की मूर्ति, नीचे शालिग्राम की शिला लाल कपड़े पर रखी है। घंटी बजती है, धूप-आरती होती है, केले या लाज के भोग के लिए घंटी का शब्द सुन बच्चे इकट्ठे हो जाते हैं, मीठे की खुशबू पाकर मकोड़े जुट जाते हैं। वहां भक्ति से मां करती है दंडवत, बापू ऊंचे स्वर में 'जणाण' गाते हैं दुख भरा। सरोजिनी सीधी खड़ी रहती है।

आंसुओं से छलछलायी आंखें, आंसू होकर चूल्हे की आग दिख रही है, फिर दृष्टि लौट जाती है मन के अंदर, यही परिचित दृश्य, परिचित शब्द-उबलते चावलों का टगबग, पहचानी सुगंध, देवता के खटोले के साथ-साथ दिख जाता है अतीत का जीवन,—जो वह नहीं हो सकी, किंतु होने की गहरी साध संजोये बैठी है। दिख जाता है मन के गहरे में रुंधा हुआ अभिमान—दिखावे की ओट में—उसके पीछे अनेक टूटी-फूटी आशाओं के सपने,—तालाब के किनारे इमली के पेड़ के नीचे ढेर सारी हंडी-ठिकरियां पड़ी रहती हैं।

कोई नहीं है, कितना एकांत है।

चूल्हे में जल-जल कर एक के बाद एक लकड़ी राख होती जा रही है, रसोई घर का धंधा एक के बाद होता चला जा रहा है, मानो अपने आप ही। यही पुरानी चिंता, एक ही परिस्थिति में, एक जैसी तड़प, वही भावना की झड़ी, वह भी अपने आप चली आती है कतार बांधे, फिर चली जाती है, मन थम जाता है, फिर व्यवस्थित होने, आरोग्य होने के सहज जंतु-गुण के अनुसार भविष्य गढ़ रही है, मकड़ी की तरह अपने पेट से सूत निकालकर जाल बुन रही है। उसमें वह सोती है, फिर देखती है सुख का स्वप्न। सरोजिनी प्रकृतिस्थ होती है। मानो जीवन का यह परिवेश उसके जन्म से है, यह भी जीवन का करार है, इसी पर पहले उसे गढ़नी होगी मूल से अपनी प्रतिज्ञा, दो पत्तों से।

रसोई में बैठे-बैठे उसका सिर घूमने लगता है, आंखें झुक जाती हैं। ओ, रो—ज, कितनी देर, कब वे आयेंगे। एकांत ! कितना सूना लगता है !

रसोई बंद कर सरोजिनी बाहर वाले कमरे में आती है। दूसरी ओर नीरोद बाबू के मकान में वही कॉलेज छात्र किताबों के पास बैठा पढ़ रहा है। सरोजिनी ने बाहर वाले कमरे में लैंप लगा लिया। रोशनी की कोई जरूरत नहीं है, रोशनी करने पर खुद ही बाहर दिखेगी, वह जानती है। फिर भी उसे खयाल आया दबे पांव जाकर दीवार पर टंगे उस लैंप की बत्ती और तेज कर दे। मन के अंदर के किस अनजाने छोटे पाप ने उसके व्यक्तित्व को गरमा दिया, एक अपरूप भंगिमा में झरोखे के पास दूर देखती हुई खड़ी रही, और उस कमरे में हठात् मानो किताबों में डोर बंध गयी। कॉलेज छात्र ने लालटेन धीमी कर दी। झरोखे के पास चुपचाप खड़ा उसका छाया रूप दिख गया, रोशनी उसे नहीं चाहिए, उसी अंधकार छाया में उसका प्रकाश है।

एंकट राव बलिदत्त का सहकर्मी और मित्र है।

सांवला लंबे छरहरे बदन का खिलाड़ी से चेहरे वाला आदमी। एंकटराव पतलून पहनता है। हंसमुख चेहरा, बाहर निकलते समय पोशाक पहन कर वह हरदम तैयार रहता है, जूते साफ चम-चम करते, सिर के बाल चिकने और कंघी किये होते हैं। चेहरा अभी-अभी धोया हुआ-सा और चिकना लगता है। व्यवहार में सज्जनता और विनय उसके सहज गुण हैं। स्वल्प और मीठी वाणी दूसरे के दृष्टिकोण से अपने को देखकर बातें करना उसका स्वभाव है, फालतू गप्पें हांकते उसे किसी ने कभी नहीं देखा, और किसी को चोट पहुंचाना उसकी नीति के विरुद्ध है। इस तरह पतलून पहन कर कहीं भी खट-खट किये बिना धीरे-धीरे आगे रास्ता काटते हुए चले जाने के लिए मानो उसे शुरू से ही गढ़ा गया है।

अपने गृहस्थ-जीवन की बातें वह बाहर कभी नहीं कहता, अपने बारे में वह एकदम चुपचाप, अपने अभाव-असुविधाओं का ढोल पीटता नहीं घूमता। उसने खाया नहीं ? वह क्लांत है ? घर पर कोई असुविधा है व्यर्थ की दूसरों के बारे में कल्पना-जल्पना, एंकट राव सिर्फ हंस भर देता। उसके अध्यवसाय का कोई अंत नहीं, ऊपर के कर्मचारी के आगे सदा उसका छलकता हुआ दास्यभाव, उसके

व्यक्तित्व को रोके है, जितना कोंचने पर भी वह मैदान में नहीं उतरेगा, एवरेडी बैटरी के विज्ञापन की तरह वह सदा तैयार है, मुंह पर वही एक तान में "यस सर !"

और मूर्त्तिमंत 'यस सर' की निरपराध नीरवता में प्रगतिशील एंकटराव के लिये बलिदत्त के मन में गंभीर सम्मान है, क्योंकि बलिदत्त को उसमें परंपरा का संस्कृत आदर्श दिखता है जिसके लिए वह साधना कर रहा है पर सफल नहीं हो पा रहा है। एंकटराव मितव्ययिता का चरम आदर्श है।

काम से लौटकर वह अपने छोटे से घर में घुसता है, उसके मां-बाप, स्त्री, बहन-बहनोई उसी एक घर में हैं, वहां पहुंचकर किवाड़ बंद कर लेता है। एकांत में अपनी दरिद्र गृहस्थी के यथार्थ रूप को निविड़ भाव से आलिंगन कर अपना रूप बदल लेता है। घर में गमछा और बाहर आने के लिये लुंगी है। रसोई अपने हाथों उसमें भी कोई विचित्र बात नहीं। एक वक्त मंडुआ की खीर; दूसरे वक्त भात, छाछ और एक उबली सब्जी। छाछ से विटामिन मिलती, वह भी खूब पतली होती ताकि हजम होने में कोई कष्ट न हो। लकड़ी थोड़ी जलती है, घंटे भर में अल-मूनियम के बर्तनों में रसोई तैयार। दूसरा कोई फालतू खर्च बिलकुल नहीं है। रात में अधिक किरासिन जलाने की भी जरूरत नहीं पड़ती। खाना-पीना संध्या को ही हो जाता है, कभी दरकार हुई तो छोटी डिबरी। शाम को दो घंटा सब क्लब-घर में, वहां पेट्रोमेक्स जलता है, अखबार पढ़ा जाता है। इतना बड़ा परिवार एक जगह रहने में कोई दिक्कत नहीं होती। अलग एक छोटी कोठरी, वहां आधी रात गये लाल कागज से ढंके लैंप को जलता देख और कोई उस कोठरी की ओर नहीं जाता।

घर में लिफाफे पर की इकानामी स्लिप, बाहर यस सर, हंसते-हंसते एंकटराव अपनी प्रतिकूल अवस्था और दारिद्रय को जयकर जीवन बिताता चल रहा है। बलिदत्त का मन अनुकरण करने को होता। घर में कहता, "देखती हो सरोज, नहीं देखती ?"

सरोजिनी हंस देती।

"एंकटराव की स्त्री को देखा है ? कितनी मेहनती है, पर सदा साफ-सुथरी रहती है, सिर संवारती है, बालों में फूल खोंसती है।"

"खूब है यह एंकटराव की स्त्री भी। एक-एक साड़ी को छह-छह वर्ष सहेज कर

पहनती है। सिर बांधती है—बजार से बाल खरीदकर उन्हें जोड़कर बांधती है। और फूल खोंसने की जो बात कही ? मान गयी, रात में दब जायेगा इस डर से निकालकर पानी में डाल देती है, सुबह फिर लगा लेती है।"

"फिर जानती हो, वह कितना सुंदर गीत गाती है,—"

"हमें वैसा दिखाना नहीं आता। एंकट को कहा नहीं, तुम्हारे लिए भी वैसी ही एक लड़की ठीक कर देता,—"

"धत् ! तुम तो मजाक करती हो। सोचती हो—मुंह में पान की गिलौरी दबाकर रसोई घर में कमर कस, सुबह से आधी रात तक लौटते रहने से कर्त्तव्य हो गया पूरा, वही हुई घर-गृहस्थी। क्या ऐसे रसोईघर में ही तुम्हारी कमानी झुक गयी, क्या सोने चांदी की तरकारी खाती हो ? ओड्डुवाल्हू। और विदेश को निकले तो, जब तुम मुट्ठी भर गिलौरियां ठूंस कर झलमलाते अलंकार गांठ-गठरी के प्रोसेसन में निकलती हो, आहा-हा, चिड़ियाखाने के जंतु तो ! कैसे घर-बार बसाना होता है,—इस एंकटराव के घर से सीखो, सरोज, समझी ?"

परायी नारी की प्रशंसा अपनी स्त्री कभी पसंद नहीं करती।

सरोजिनी कठिनाई से आंसू रोक पाती है।

बलिदत्त गहरी सांस लेता है।

वही एंकटराव उसका मित्र है। कॉफी पिलाता है, इडली खिलाता है, यदि भालू या घड़ी मार्का सिगरेट खरीदता है, आने की एक पाकेट,—हिस्सा देता है। इस नीरव दोस्ती में दोनों मित्रों का आलाप चलता है, शास्त्र-चर्चा होती है। दोनों साथ-साथ सड़क पर चलते—एक ऊंचा एक ठिगना। उनका शास्त्र है दफ्तर की कार्य-प्रणाली। किसने क्या लिखा, क्या कैसे लिखा जाता है, क्या कितनी दूर पहुंचा और चुपचाप एंकटराव का हाथ देखने की चर्चा होती।

एंकटराव देखता है, नौकरी की चारदीवारी के अंदर उसका भाग्य बंध गया है, उसी में उसका सारा वर्तमान और भविष्य का जीवन सीमित हो गया है। उस बारे में उसका कोई विरोध नहीं, कोई छटपटाहट नहीं, वरन् अपनी साफ वस्तु-वादी दृष्टि के लिये वह गौरव अनुभव करता है, उसी एकदम साफ दृष्टि से हिसाब लगाता है नौकरी की तनखवाह और संसार के कलेवर का संबंधशील रूप का। आज पांच वर्ष बाद पांच रुपये बढ़ेंगे तो अपने संसार में अमुक जगह जरा सी मिट्टी लीप देगा, तब उसका इस तरह का चेहरा होगा, इसके बाद फिर दस वर्ष,—

तनख्वाह के अनुपात में उसमें परिवर्तन भी दिखायी देता है। एंकटराव हिसाब कर डालता है। अपने रास्ते चलते समय किसी को अपने से अधिक भाग्यवान देखता है तो उसे दुख नहीं होता, उसकी दृष्टि रास्ता छोड़, रास्ते के किनारे की ओर मुड़ जाती है। वहां देखता है मैले कुचैले, मजदूर, कोपीनधारी भिखारी, लूले-लंगड़े, उनके साथ अपनी तुलना करता है, भाग्य को धन्यवाद देता है, चलते-चलते सीटी मार देता है।

किंतु अपने अंदर उसका जो अमिट आदर्शवाद,—वस्तुवादी की बरफ के बोझ तले दबी धान की भूसी की ज़रा-सी उष्माहठ है, जो किताब की दुनिया की योजनाओं की ओट से बाहर आने को कसमसाती है,—बिस्तर के अंदर के अकेले छोटे से खटमल की तरह।

उसी की ताड़ना से एंकटराव हस्तरेखा की पोथी पकड़ता है, भारतीय, अंग्रेजी, फ्रांसीसी और जर्मन ग्रंथों के अनुवाद, चेरियों को आधार बनाता, छोटे लैंस से देखकर पेंसिल की रेखाएं कागज पर खींचकर मस्त रहता अपने भविष्य को प्रकांड कुलुफ के अंदर चाबी मरोड़ने में।

वह सोचता हुआ, देख रहा है।

हस्तरेखा शास्त्र कहता है हाथ की रेखाएं बदलती रहती हैं और उसके साथ-साथ भाग्य भी। इच्छाशक्ति और कार्य के बल से आदमी अपने हाथ की रेखा की गति बदल सकता है।

कई बार एंकटराव छोटा लैंस लेकर अपनी हथेली को देखते-देखते संभावित परिवर्तन को लक्ष्य करता। मुख्य रेखा और मुख्य ग्रह नक्षत्रों को देख प्रबल इच्छा-शक्ति का प्रयोग कर गहरी सांस लेता,—भाग्य रेखा की यह अगली नोक, जरा-सी और मुड़ जाती, वह मझली अंगुली की जड़ में शनि क्षेत्र छोड़कर दूसरी अंगुली की जड़ के बीच में बृहस्पति क्षेत्र की ओर। हथेली के बीच में मंगल क्षेत्र पोखर की तरह है, आहा,—जरा-सा उभर आता वह ! तो एंकटराव फिर कहां जा बैठता उस घर की ऊंची कुर्सी उतनी दूर नहीं होती फिर उसके लिए। इच्छाशक्ति इच्छाशक्ति। होने दो, होने दो, होने दो।

नया आदमी देखने पर उसकी निगाह पहले उसकी हथेली पर पड़ती, और अपने से भिन्न वालों की हथेली को परोक्ष में देखकर उनके स्वभाव, चरित्र और उसके भविष्य आदि को एक खाते में टीप कर रखता है और उनके साथ अपने

संबंध उसी हिसाब से रखता है।

साथी लोग हाथ दिखाने आते हैं, एंकटराव अभ्यास करता है, दक्षता बढ़ाता है।

किंतु विद्या का मोल-तोल वह अपने भविष्य दिखाने वाले दर्पण की तरह करता है,—दिन आयेगा दक्षता बढ़ी हुई होगी, उज्ज्वल हो जाने के कारण भाग्य के छोटे-छोटे मोड़ों तक को देख सकेगा। अंधी पट्टी हट जायेगी, तब एंकटराव समझेगा कि वह कहां है।

बलिदत्त का यहीं उससे मतभेद है। क्षुद्र बलिदत्त दीर्घ एंकटराव के उद्देश्य का उपहास करता है, सबके उद्देश्य का मन-ही-मन उपहास करता है; जहां वह उनसे अपने मत में नहीं मिलता। बलिदत्त एंकटराव के हाथ देखने की विद्या को ऐसे देखता है जैसे महाजन कारीगर की हाथ की चतुराई देखता है, सोचता है—अमुक काम कितना लाभदायी होता, अमुक काम किये बिना उपजाना खाली गधे की तरह खटना है। बड़े-बड़े अधिकारियों के, उनके घरवालों के हाथ देखनेवाला एंकटराव, किस तरह अपनी उन्नति के मार्ग अग्रसर करता है। इस विद्या की सार्थकता सोच उसका मन बेचैन हो जाता है, पर उसे इस विद्या का ज्ञान नहीं है। किताब में आंख लगा, लकीरें खीच पढ़कर, गणित का हिसाब लगाकर परखना उसे बहुत कठिन लगता है। अपनी प्रवृत्ति को दूसरों के द्वारा भी व्यवहार में लाने के लिए एंकटराव बार-बार उकसाता—जितना कहूं तुम समझते नहीं। चुप होकर घर के कोने में पड़े रहने पर कौन पूछेगा ? बाहर जाओ, अपना प्रचार करो बाबू, यह प्रचार का युग जो ठहरा। ऊपरवालों का हाथ देखकर भविष्यफल कहो। जाओगे तो ?

एंकटराव हंस देता है। बलिदत्त की बुद्धि की क्षुद्रता पर उसे दया आ जाती है। सोचता है जो भाग्य की वास्तविकता को नहीं पहचानता, वह आदमी नहीं है।

संध्या उसने फिर एंकटराव को जा पकड़ा—

"कल जरा कष्ट करोगे एंकटराव, तुम जो कह रहे थे,—समय नजदीक आ रहा है,—खाता भी देखोगे।"

"अच्छा।"

"इस बार तुम्हारी गणना की सच्चाई का पता चलेगा।"

यह बात उसने कई बार सुनी है। एंकटराव हंस देता है।

एक छोटे, पक्के और साफ-सुथरे मकान के अंदर सांझ की रोशनी जल रही है। दरवाजा एकदम खुला है। खुले झरोखे और दरवाजे से होकर उस कोठरी का प्रकाश, बाहर के अंधेरे पर आक्रमण करता भागा जा रहा है। उसके साथ-साथ कई कंठों की उच्च स्वर में हो-हा, हंसी-मजाक, चिल्लपों, और सामने रास्ते के बहाव पर की शहरी गंध पर वही आस-पड़ोस से जरा-सी मधुमालती फूल की उड़ती खुशबू चमेली की झरी पंखुड़ियां, हिना की उत्तेजक सुगंध छिड़क रही है। उसी छोटी कोठरी की दीवार के पास। चौड़े रास्ते पर गाड़ी और पैदल चलने वालों का जुलूस लगा रहता है। दूसरी ओर एक विराट दुमंजिली इमारत, राजनैतिक वकील बाबू का प्रसाद है। ऊपर टंगे चिक के पीछे से कोई लड़की गला साध रही है, नीचे मेले की तरह लोग एकत्र हैं, कोई टहलता है, कोई बैठा है, कोई उद्विग्न हो बार-बार दरवाजे की ओर देख रहा है। अंदर बिजली की रोशनी में गंभीर होकर घर का मालिक, दो-तीन लोगों के साथ बैठा है। केवल सिर हिलाने से पता चलता है कि कोई चर्चा चल रही है। रोशनी से झलमलाती छोटी कोठरी इस परिस्थिति के प्रति बिलकुल सचेत नहीं, वह अपने अस्तित्व का प्रचार अपने स्वर में करती है।

इस रास्ते होकर जाते समय बलिदत्त जरा सकपकाया। परिचित घर, इस घर में रहता है उसका सहकर्मी बनबिहारी पट्टनायक। किंतु सहकर्मी तो कई होते हैं, अनेक गलियों में, रास्ते पर, हर दरवाजे पर रुके तो, रात का चला दिन में पहुंचेगा। बलिदत्त हिसाबी-किताबी आदमी ठहरा। बिना मतलब समय नष्ट करना वह पसंद नहीं करता।

किंतु वहां की बात और है, बनू के घर होकर जाते समय बटोही का शहरिया विमूढ़ भाव भी धक्का खाकर उस क्षण देहाती हो जाता है। जीवन के खोये सरल स्वाभाविक उपादानों को वह नयी आंखों से नया मोल देकर देखता है और दो कदम बढ़ने पर भूल जाता है। हंसी की बातों की लहरें उठती हैं, गिरती हैं, उसी के भाटे में बहुत-सा बलिदत्त अंदर चला गया। समय का ज्ञान और मतलब

बेमतलब के भेद के बारे में उस की जोरदार मोटी-तगड़ी धारणा को भुलाकर अपने चेहरे को अस्वाभाविक बना कर अंदर चला आया—भीतर और भीतर। प्रकृति और परिस्थिति ने मानो उस पर अनुकंपा की है,—आहा, बेचारा यंत्रजीव, सहज हो जा इस घड़ी। दरवाजे पर बैठी काली कुतिया ने मानो उस अनुकंपा का संकेत पाया है, भों-भों नहीं की, उलटे पूंछ हिला रही है। अंदर से बनु की मधुर झंकार—

"हल्लो मिस्टर दास, बहुत दिनों बाद,—ऐ टुनू, और एक कप चाय लाना तो, लो बीड़ी खींचो।"

गंभीर होकर टेबुल के किनारे पर से संटू बाबू—"कि रे, कि मने करे ?" बनु ने अपना चेहरा सहलाया, नाटकीय अदा से कहा, "आहा चेहरा सूख कर काला पड़ गया है, दफ्तर में साहब ने पीटा क्या ? अरे गधे, यहां आये हो तो हंसना पड़ता है, जानते नही ? हंसो हंसो अगर दशा अच्छी है तो। नहीं तो यह देख।" गले के पास से कमीज को पकड़ लेता है। बलिदत्त चीखता है, "छोड़ दे भाई, छोड़ दे, फट जायगी—आह ! कितना दर्द हो रहा है।"

"और नहीं तो क्या सोचते हो कमल-सा प्यारा-प्यारा स्पर्श देते रहेंगे, क्या विचार है। हंसे बिना मैं छोड़ने वाला नहीं, ये देख।" बलिदत्त यंत्रणा से अधीर हो हंस पड़ता है। कभी न हंसने वाला आदमी सूखा मुंह पसार कर दांतों के ऊपर से होंठ हटा कर हंसी का एक प्रेतरूप दिखा रहा है। उसे देख घर में सब हंस रहे हैं, बनु फिर भी नहीं छोड़ता, "आ हा हा—ये हंसी ? हां रे, बेचारी बहू डर नहीं जाती।"

"छोड़—आवारा कहीं का—"

"अच्छा बैठो, गिल अब की बार गरम चा, ये मुरमुरे दो दाने चबाते रहे, बीच-बीच में—हंसो।" गुद्दी पर हल्की सी चपत दे कर बनु ने उसे बिठा दिया। मुंह में मुरमुरा और गले में गरम चाय, बलिदत्त घर समझ लेता है, बात कहने का उस का आग्रह और उत्साह जैसे बढ़ जाता है। कहता है—"समझें बनु। तुम यहां आते हो तो तुम्हारा कुत्ता जैसे दो हाथ उठ कर पड़ता और नखरे करता है, जीभ से चाट कर प्यार करता है, तुम्हारा प्यार भी ठीक वैसे ही है भाई क्या कहते—वनु-—वनु—वानर।"

"ये मारा, छोकड़े ने खूब मारा।—किंतु 'वानर और कुकुर दोनों एक ही बात

नहीं हैं—"

"उसके बाद बलिदत्त," संटू बाबू ने कहा, "कैमन चोलछे ?" कैसा चल रहा है ?

"क्या चलेगा संटू दा, दुनियादारी का जंजाल लगा ही रहता है।"

"दुनियादारी ? कैसी दुनियादारी है तुम्हारी ! हे बनु ? जय जगन्नाथ।" अबकी संटू दा सुनने को प्रस्तुत हैं, आगंतुक की बात को उलटा कर एक सरस प्रश्न पूछ कर वे चुप हो बैठेंगे, हंसती आंखें हंसती रहेंगी, होंठों पर मामूली सी हंसी ? और कोई बात नहीं।

वर्ष को धकेल कर वर्ष चला जाता है, पृथ्वी बदल जाती है, आदमी के चिकने काले बाल जूट हो जाते हैं। कानों के ऊपर, घुलने लगता है किंतु संटू दा शाम ढले रोज बनु की कोठरी में टेबुल के पास बैठते हैं। सयत, भद्र और प्रायः शांत, आधी चमकती हुई चांद कपाल की चौड़ाई बढ़ाती हुई, मामूली तपा हुआ, सुंदर चेहरा।

संटू दा बनु की कोठरी सरीखे हैं।

उन्हें देखते रहने पर भी चलती दुनिया के हिसाब का तराजू हाथ से फिसल पड़ेगा।

सब का परिचय है, पर उनका मानो नहीं, वे सिर्फ बनु की कोठरी वाली टेबुल के पास के संटू दा ही हैं।

उनके बारे में मोटे तौर पर कुछ बातें सब अवश्य जानते हैं, बनु के मुंह से और उनके हावभाव, बातचीत से उसका परिचय मिलता है। बनु कहता है वे ठेकेदारी करते हैं, घर में उतनी सफाई न होने पर भी तंगी हालत नहीं है। दार्जिलिंग में भी उनका घर और व्यवसाय है। फिर बनु कहता है वे अजीब आदमी हैं, छुपे-छुपे जाकर उत्तर एशिया और यूरोप के कई भाग घूम आये हैं। हिमालय के उस ओर के खतरनाक इलाके में उन्होंने गुप्तचरी भी की है, जीवन को संकटमय बनाया है। बंदूक चलाने में हाथ सधा हुआ है, स्वयं कई भेदियों को मारा है। इसके अतिरिक्त तांत्रिक, अलौकिक शक्ति संपन्न आदि आदि, पता नहीं क्या-क्या हैं।

हां, बनु रात-दिन खूब डिटेक्टिव उपन्यास पढ़ता रहता है, कई बातों में उसकी अद्भुत अनुभूति शुरू से ही है। जैसे वह कहता है,—आस्ट्रेलिया में एक प्रकार

का फूल है जो जमीन के नीचे पेड़ में होता है, वर्षा की पहली गरज के साथ मिट्टी फट जाती है और मिट्टी पर खिल उठता है वह अकेला फूल, जिस के लिए बनु को कई दोस्त 'धरती-फोड़े' कहते हैं और उसकी बात का 75.8 प्रतिशत हाशिया छोड़ने की सलाह देते हैं। किंतु संटू दा के हाव-भाव और बात-चीत से उनका उदार और गंभीर ज्ञान, मधुर दार्शनिकता, प्रचुर मानवीय-अभिज्ञता का अनुमान किया जा सकता है। मुंह से कुछ जाना नहीं जा सकता, दृष्टि सूई की तरह दूसरे की आंख या मुंह में बेध जाती, तर्क में मानो उनकी बात ही आखिरी बात है, जिसका और कोई उत्तर नहीं। सांसारिक फल प्राप्ति को छोटा मान कर एक प्रकार का अति उच्च भाग्यवाद ही उनके व्यक्तित्व की विशिष्टता है एवं जब गहरी सांस खींच कर वे कहते हैं, 'सब इ गोविंदेर इच्छा' तब उन की बातों की भंगिमा में व्यक्तित्व की व्यंजना से पृथ्वी जल उठती है, और एक बार घूम कर हठात् अदृश्य हो जाती है। फिर वे दिखते हैं बहुत पास, चिरश्यामल, चिर-सुंदर।

वे ओड़िआ बोलते हैं, बंगला बोलते हैं, बंगला बोलने पर भी उनकी मानवीयता उन्हें नहीं रोकती। वे दुर्लभ हैं जिनका परिचय खाली इंमानियत है, जाति नहीं, भाषा नहीं।

हठात् बलिदत्त को याद आया नौकरी-चाकरी के बारे में बनु के साथ एक चर्चा छेड़ देनी चाहिए। मन को भी तो काम-धाम खत्म कर लौटते समय यही चाहिए। हांय-फांय करता मन अपने आप बंधी लीक पर खिसक पड़ा है, वही आलोचना चाहिए, मन की खुराक। जो दफ्तरी काम एक जीवन की शिल्प कला है, जिस में जाग्रत समय का ज्यादातर भाग बीतता है, जो जीवन धारण का अवलंबन है, भविष्य की सीढ़ी और पीढ़ी उभय है,—उसी के बारे में उन्मत्त चर्चा।

"ओरे बनु, आज साहब—" किंतु संटु दा की दृष्टि खोद-खोद कर अंदर धंसी जा रही है, बीड़ी के दोनों ओर से बनु के होंठ तिरछे हो गये हैं, दो श्रोता जगू और राधू मन लगा कर देखने लगे और नंद,—जो अब तक एक सचित्र मासिक से नारी चित्रों में तारतम्य बैठाने में लगा था, अचानक मुंह टेक रहा है, बलिदत्त का कौतूहल बुझ गया। गहरी सांस छोड़ कर उसने चाय सुड़कने में मन लगाया। मन में सुलगता है, क्या ये लोग सचमुच ही···? जीवन की समस्या को इतनी हल्की कर बीड़ी के धुयें में फूंक से उड़ा देना चाहते हैं। प्रगति के लिए कोई

योजना ही नहीं।

यही बनु—

सोचने पर दया आती है। छोकरे की कितनी सुंदर लिखावट, कितना अच्छा अंग्रेजी का ज्ञान, कितनी जल्दी हर काम समझ लेता है, कितना शीघ्र हर काम कर सकता है, सब का सम्मान पाकर भी ऊपर वालों से उलझ सकता है। एक बात भी सह नहीं सकता, एक सुनेगा तो दस कहेगा। कहेगा उसके आत्मसम्मान को चोट लगती है। मानो ऊपर वाले सम्मान करना जानते ही नहीं। अरे बाबा नौकरी की है तो—। छोड़ो, वह नहीं सुनेगा, यहां कहना बेकार है। हर समय सजा-संवरा चेहरा, कंधे टेक छाती फुलाकर चलने का अंदाज, मानो नौकरी करने नहीं, लड़ाई पर जाता है।

आह, यदि उसकी अपनी इतनी क्षमता होती !—बलिदत्त सोचता है। इसके बाद घर आने पर,—कहां बीच-बीच में अफसरों के घर जाकर, सान्निध्य खोज सेवा-कार्यक्रम का सहारा लेकर संपर्क बढ़ाना, नहीं, उल्टे घर चाय की औरों को खिला-पिला कर बैठ कर अड्डा जमाना, नहीं तो किताबें पढ़ना, ढेर की ढेर किताबें, पसीना बहाकर कमाया पैसा देकर किताब खरीदना, पत्रिकायें खरीदना, अखबार खरीदना। अजीब बात है ! अरे बाबा, एक बार नौकरी में घुसने पर किताब पढ़ने की और क्या जरूरत है, फिर तो बस कार्यशास्त्र, ना, ये नहीं समझेंगे।

उस पर ऊपरवालों की राय के खिलाफ खड़े होकर उनकी भूलें निकालना··· कैसा पागलपना है। जिधर वर्षा उधर छाता···होना यह चाहिए। ताज्जुब, वह समझता ही नहीं !

समझता तो खुद एक अफसर होकर बैठता, कितने लोग अफसर बन गये, और कितने बनेंगे, यह चांडाल तो जहां का तहां है।

बनु कहता है उसके पूर्वज नाम से जमींदार थे, अब भी गांव में संपत्ति है। पर यह तो सामंतवादी मनोवृत्ति है। शायद यही उसके पतन का एक बहुत बड़ा कारण है। राज्य के जितने बड़े-बड़े घराने, मंत्री, व्यवसायी ऊंचे अफसर,—बनु कहता है कोई उसका छोटा भाई या भतीजा, कोई तर्क करता है तो वंशावली हांकता है।

यह भी निपट सामंती मनोवृत्ति है—पंख लगी उड़ती चिड़िया को अपनी कह

उसके साथ दोस्ती बढ़ाने की इच्छा हो तो अपनी देह में छाज बांध कर पीढ़े पर से कूदने से आदमी को क्या लाभ वह उड़ तो नहीं सकेगा !

वरन् यदि बुद्धि होती, उन बड़े-बड़े आदमियों का अनुगमन कर बनु खुद क्या अपनी थोड़ी-बहुत सहायता नहीं कर पाता ? जरा मुंह बना कर,—जरा झुकने पर,—जरा दबने पर,—छोड़ो, नहीं होगा,—

झूठा अहंकार, मूर्ख ठहरा।

परंतु फिर भी बनु पर गुस्सा नहीं हो पाता है। क्यों ? वहां कैसी अनजान शक्ति है, कैसी मोहिनी। उस गोरी-पतली लपलपाती ऊंची देह में उसे प्राचीन पूर्वजों की किस अनजान आकर्षण शक्ति का परिचय मिलता है जो सहज ही सहानुभूति पैदा करती है। इस छोटी कोठरी में भी नेतृत्व पाता है।

इसके अलावा याद आता है,—वह दुनिया भर का धरम-करम। किसी के घर में कोई बीमार है तो रात में जागने की जरूरत है, डाक्टर बुलाने की जरूरत है ? बाजार से किसका क्या आयेगा ?और किसका क्या काम है?साथी-सुख चाहिए ? मन खोल दुख सुनने वाला श्रोता चाहिए ?—

बनु सब के लिए हाजिर है।

रास्ते में भेंट होने पर उसका दाहिना हाथ अपने आप दाहिनी जेब में घुस जाता है, निकलती है एक बीड़ी। छोटी-छोटी पतली-पतली बीड़ियां, उनका सिरा जला है। आगे वहां से सिगरेट निकलती थी, अब समय बदल गया है। फिर बायीं जेब से बायां हाथ तुरंत निकालता है। इस व्यक्ति के आभिजात्य का प्रतीक, एक छोटा मेंटल लाइटर, अंदर जरा-सा पैट्रोल। खच से अंगूठे से दबाकर बनु अपनी चकमक रगड़ देता है, दोस्त के मुंह में बीड़ी ठूंस कर आग बढ़ा देता है, गर्दन से हो या हाथ से कमीज खींच कर कहता है, "किधर चल पड़े ?"

बलिदत्त ने चुपचाप चाय पीना समाप्त किया। घर में सब के चाय के बर्तन खाली हो गये हैं, सब के मुंह में सुलगती बीड़ियां मनमानी गप्पें चल रही हैं।

अखबार की खबरें, राजनीति, साहित्य, संटु दा का दर्शन···।

बलिदत्त यह सब नहीं समझता। बार-बार जम्हाई ले रहा है। ढेर की ढेर इतनी क्या किताबें रखी हैं बनु ने ? आदमी फालतू ही इतनी किताबें पढ़ता है ? नापसंद कर आंखें हटाते-हटाते उसकी निगाह नीचे गत्ते वाली एक छोटी किताब पर पड़ गयी, 'व्यवसायी चिट्ठी कैसे लिखी जाती हैं।' बहुत बड़ी चीज खोज

निकालने की तरह उसकी आंखें चमक उठीं, आग्रह के साथ किताब समेट ली। बनु की नजर पड़ी, और अचानक कुछ याद आ जाने की तरह उसके चेहरे के भाव बदल गये। अधजली बीड़ी को जोर से फेंक उत्तेजित होकर उसने कहा—

"जानते हो संटु दा, आज क्या हुआ ? काम कर एक किताब ले कर बैठा था कि मरदूद हनु आकर कहने लगा, फिर जरूरी काम आ गया है, इतना करना ही होगा। जो था गाड़ी भर होगा। रात बीत जाती। कहा, यहां क्यों हुजूर ? यह तो आप के नये जंवाई का काम है, अपना काम तो मैं कर चुका हूं, जाइये उनके पास, उन्होंने न किया तो मेरे सिर पर लायेंगे क्या ? इसके बाद उसने कहा— साहब ने जिगर कर रखी है करना ही होगा।

क्या कहा जानते हो ? कहा—हुजूर अपने नये जंवाई का इतना ही कर्त्तव्य मुझ पर लादेंगे या और कुछ ? तब फिर सचमुच मुझे ही जंवाई बना लीजिये और क्या ? हा···हा···हा···हा।"

एक ने उत्तर बताया, सब जो सोचते हैं, एक कहता है,···रुद्ध हिंस्र चिता, जंतु —चीत्कार से प्रकटित हो रही है, घर भर में हो हो हो हो।

यहां अनजाने ही बलिदत्त को आंखें चमक उठती हैं, उस हंसी में वह भी बहक उठता है, क्षण भर के लिए भूल जाता है कि वह उन्नति का उपासक है। आग्रह से बनु के मुंह से बात को खींच लेने को सब चिल्ला पड़ते हैं—"तब ? तब ?" बलिदत्त। जगु, वह टाइप ठकठकाता है। राधू, वह रात दिन हिसाब करता रहता है।

"इसके बाद ?"

"इसके बाद ? फिर लंका दहन करने वाला, एकदम मिर्च की तरह लाल पड़ गया। कहा काम के समय किताबें पढ़ी जाती हैं, काम बताने पर जवाब क्यों ? कंपनी मुफ्त की तनखाह देती है, हूं ?"

देखो भाई मेरा हाथ दुखने लगा है ··मैं धैर्य खो चुका हूं।···उसके बाद बोला —गेट आउट्···।

गेट आउट कह एक छलांग मारी बनु ने, छोटी टेबुल हिल गयी। खाली कप-प्लेट नीचे गिरे—खट खटांग। धीरे से उन्हें चुगते-चुगते मन ही मन ? कहता है, नहीं तो ? हरदम बकर-बकर, कचर-मिचर। इतना सांड क्यों होगा वह ? उसे क्यों जरूरत आ पड़ी ?

संटु दा गंभीर हैं। कहने को होता तो वे जरूर कहते—"उत्तेजना आदमी के लिए हानिकारक है। उम्र नष्ट करती है, शास्त्र में लिखा है।" परंतु अन्य लोग फिर भी आग्रहान्वित हैं। इस हड़बड़ी में बलिदत्त धीरे से अपने खोल में घुस गया है। पर उसका आग्रह मरता नहीं है, नंद छाती फुला, सीधा होकर बैठ गया है, लटें माथे पर झूल रही है, चेहरा भी भयानक दिख रहा है, अपनी कोई अनुभूति याद आयी है, नंद कहता है—' इसके बाद बनु ?"

"हूं, कहता हूं सुनो। कुंज अर्दली ने आकर कहा,—छोटे साहब ने कहा है इस घर में क्या हो रहा है गोलमाल क्यों होती है ? कहा—जा कह देना होम हो रहा है इस घर में। छोटे साहब के बाप यजमानी पुरोहित हैं न—" .

चारों ओर से वाह-वाह-वाह।

"अब, वाह-वाह कहोगे क्यों नहीं ?"—संटु दा ने कहा, "अपने पर तो आती नहीं। किंतु यह वाह-वाही सुनने के लिए यह पागल अपना सर्वस्व जला बैठता है, पाता है क्या-खाक; सब वाह-वाह कर सिर्फ खुशामद करते हैं अरे पागल यह सब पागलपन के अलावा और कुछ नहीं, चाकरी नहीं करेगा,—छोड़ दे, चाकरी करेगा—कर,—"

"यह बात आप नहीं कहते संटु दा, यह तो आप की परंपरा बोल रही है।" तिक्त भाव से मुंह विकृत करते हुए नंद ने कहा, ' सब जानते हैं बंगालियों को अच्छी तरह नौकरी करनी आती है, अंग्रेज पहले वहां पहुंचे थे, उन्होंने पहले अंग्रेजी पढ़ी थी। हमें वह सब करना नहीं आता, हम तो वह कर नहीं सकेंगे—"

नहीं कर सकेगा तो मर, इतनी बकवाद क्यों ?

"इस—इस तरह मारने वाले ना ?"

"सुनो नंद—" संटु दा का स्वर गंभीर हो जाता है, उन्होंने कुछ नहीं किया है, केवल कोट के नीचे दो बार हाथ लगाया है, उतने में ही उनमें जादूगर की सी दृष्टि, कुछ भयानक, नाटक में वैनाशिक की सी घटा, मानो कांख में बम हो, सब चुप,—

"सुनो नंद केवल बातों से वीर नहीं बनते, ना, बुझले ? …अरे, सब चुप हो गये।" इसके बाद उनकी अधखिली धीर हंसी, याद करता हुआ बनु कहता है "वे तांत्रिक हैं।" फिर वातावरण को सहज करते हुए वे अपने साधारण स्वर में कहने लगे हैं।

"समझे नंद, अप्रिय बात कहने में कठिनाई नहीं होती, अपमान करना और

भी सहज है । तुम जैसे ओड़िआ कह कर गर्व महसूस करते हो, मैं भी बंगाली होने पर गर्व कर सकता हूं, असल में तो हम एक माटी, एक राख हैं, गर्व करने के लिए कोई एक गुण मन में रख लेना ही काफी है । तुम गर्व कर सकते हो कि आंख होते हुए भी तुम अंधे हो, मैं गर्व कर सकता हूं कि मेरी आंखें हैं। पर हमारे गर्व से जमीन खोदी नहीं जाती । बंगालियों ने नौकरी करना सीखा—बहुत अच्छा, तुम उस परिस्थिति में होते और वह डेढ़ सौ वर्ष की स्टार्ट पाते तो तुम भी सीख जाते और अच्छी तरह, अंगूर खट्टे कहने की तुम्हें जरूरत नहीं पड़ती । यह तो आर्थिक समस्या है, इस विषय में संकीर्णता पैदा कर प्रांतीय झगड़ा खड़ा करने पर न तो तुम ही होगे गोपबंधु दाश और न मैं होऊंगा चित्तरंजन दास। यह सब क्यों ? हमारी जो बात पड़ी थी, समझे बनु—तुम कुछ नहीं कर सकोगे । गुड नाइट ।"

"नीट," बनु ने कहा, वह डिटेक्टिव उपन्यास पढ़ता । हंसते-हंसते कपाल पर तीन अंगुलियां रख कर कहा—"नीट," स्मृति में अवश्य लंदन की एक टेढ़ी-मेढ़ी गली, कक्नी ड्राइवर सेक्सटन ब्लेक डिटेक्टिव से गाड़ी का किराया लेकर विदा हो रहा है ।

घर में हाव-हाव ।

बलिदत्त चुपचाप बैठा है, वितंडावाद से वह बहुत कतराता है। अभी उसका आहत विरक्त चेहरा है।

"संटु दा को मैंने इस तरह उत्तेजित होते कभी नहीं देखा," राघु ने कहा । "धत् नंद जो मन में आया तूने कह डाला ।" बनु ने कहा ।

"ओह ! कहा तो ठीक किया । संटु दा के साथ मेरा कोई झगड़ा तो नहीं है ? उन की बात कौन नहीं जानता ? मैंने कही उनके जाति भाइयों की बात । हमारी हंसी उड़ायेंगे, सब की मजाक करेंगे, अंग्रेजों के साथ-साथ हमारे देश को जला-भून कर खा गये, सारी जमींदारी, सारी नौकरी, अब फिर हमारे दफ्तर में जो मझला साहब आया है, जानते हो न उसकी बात—"

"आहा, खाली दानापानी के कलह में, खाली दानापानी का कलह—पतेली में मुट्ठी भर भात, उसके लिए,—" बनु ने अस्वाभाविक करुण स्वर में कहा मानो वह हेंगु बनु नहीं, जिसने क्षण भर पहले छलांग मार कर कहा था गेट आउट, उसके अंदर से बोल रहा है जगन्नाथ—देश का सर्वत्यागी, उदार कोई खोया पितृ-पुरुष, नवीन, सदानंद,—दूर दृष्टि फैला कर गहरी-गहरी उसांस खींच कर मन

ही मन कहने लगा—"कितना सुंदर देश खाक में मिल गया है—आह ! —"

अचानक उसका सहज स्वर लौट आता है, कहता है—"ले बीड़ी ले, सिर ठंडा कर। आज का अखबार पढ़ा है ? देख ले, उस खाट पर है।"

"तुम सालो अपना-अपना गोबर का ढेर जकड़ कर अपना-प्रदेश-अपना-प्रदेश कह कर चीखते हो, तो बताओ भारत किसका है ? जवाब दो,—भारत किसका

सभा टूट गयी। हठात् सब को समय का बोध हुआ। राष्ट्र चिंता, राजनीति की छाया, इस समाज के चेतना-ज्ञान में वह एक आशंका का रूप है, खुली बात कान से सुनने पर चेतन मन में प्रतिघात होता है, दफ्तर की घड़ी दिखती है, घड़ी के हाथ साढ़े दस से ऊपर का संकेत दे रहे हैं। वह उसी मूल दानापानी संस्थान पर के आक्रमण के अनदेखे हाथ हैं। अतः उसका आश्रय भीड़ वही दफ्तर की कोठरी है। मन की गहराई में वह भावप्रवण उच्छ्वासमय संगीत है।

बंद मंदिर के सामने कई हरिजन हैं।

भागे चले जाते हैं।

उजाला होते ही सब अपने अपने काम में भाग छूटते।

फिर भी अंधेरे की वह गुन-गुनाहट मिलकर बन जाती बाजार की हट्ट गोल। अतः जाग्रत प्रहरी हैं।

बनु ने किवाड़ बंद किये। एक चेतन दिन समाप्त हो गया। अंदर देखा, कुर्सियां इधर-उधर बिखरी हैं। खाट पर चाय के जूठे बर्तन और उलट-पलट अखबार, टेबुल पर खींची हुई किताबें यहां वहां पड़ी हैं। फर्श पर बीड़ी के टुकड़े और ढेर सारा बीड़ी का गुल, फिर यह सब साफ करना पड़ेगा।

अभ्यासवश ड्रायर के पास चला गया कंघी करने। अकेले में वह चेहरा देखता है, सिर में कंघी करता है। पुरुष भर ऊंची चेस्ट ऑव ड्रावर्स वह भी लिक्विडेटेड। आभिजात्य के संदूक से मिला तिनका-सा, उस पर पतली सागवान काठ की सेल्फ, ऊपर नीचे होकर दो आलाएं, ऊपर ढेर सारे इंसाइक्लोपीडिया, नीचे ढेरों बुक

ऑव नॉलेज।

आईने के पास एक फोटो,—वह और उसकी एनी। उसकी परी-सी स्त्री,—शेफाली, बनु मजाक में कहता—तोरई फूल।

बनु ने गहरी सांस खींची। कंघी करते-करते सब याद आ गया। अखबार का चार महीने का पैसा बाकी है। दुकान से चाय आती है उधार। कर्ज पर कर्ज—घेरे हैं उसे, कर्ज से हरदम नाक तक डूबा हुआ है। शेफाली फिर अंतःसत्वा होकर भी हाथों रसोई करती है, आंगन बुहारती है, बर्तन मांजती है, फिर बच्चों का धंधा।

दस वर्ष चले गये उसने शेफाली को क्या दिया ? एक भी गहना ? कभी कीमती साड़ी ? मेक-अप के बल पर मर्कटी उर्वशी होकर गाड़ी चलाती है, मेक-अप के अभाव में मेनका भी दासी हो झुककर सौ जगह सिली साड़ी पहन बुहारती है, पोर घिस कर रगड़-रगड़ झूठे बर्तनों से चीकट छुड़ाती है। आह। गहरी सांस। उसका चहैता तोरई का फूल मुरझाता जा रहा है।

बनु की दोनों आंखों में चुभती उष्मा सामने देखता है। चौड़े कपाल की भौहों पर जगह-जगह काले मेघों की छाया। छोटी-छोटी समानांतर रेखाएं। ऊपर की ओर देखता है। सुनहले अक्षरों में बुक ऑव नॉलेज, बुक् ऑव नॉलेज ! डेम् ! बनु ने कहा। चीखकर आंगन की ओर कूदा,—"भात लगाओ।"

अंधेरे में अकेला चला जा रहा है बलिदत्त। अपने पर गुस्सा आ रहा है,—क्यों उसने इतना समय बरबाद किया। गुस्सा आता है बनु पर, जरा-जरा सा जितना विश्लेषण करता है, उतनी ही उसकी हिंसा बढ़ती जा रही है। याद आती है अपनी समस्या, अपना आदर्श, पास में एंकटराव, पास ही यह बनु। भविष्य का तारतम्य आंखों के आगे झिलमिलाता है, जो जैसा करेगा वह वैसा फल अवश्य पायेगा। बीच में तर्क-वितर्क हिसाब-किताब को उलट-पलट कर देता है। कभी-कभी नियति की कृपा, किंतु कितनी बार ? प्रगतिशील आदमी भाग्य की करतूतों को छोटा मानता है, काम में हिसाब कर गिन देता है और फिर हिसाब कर ब्याज

और असल मिला गिन कर लेता है अपनी मेहनतों की कीमत। बनु खुद अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहा है, यहां भाग्य क्या करेगा ?

छोटे-छोटे कदमों से जल्दी-जल्दी डग भरते वह अपने भविष्य में चलने लगता है। अचानक वह फूल उठा है, सिर ऊंचा होता-होता आकाश तक न उठने पर भी, आकाश स्वयं झुक कर उसका सिर छू रहा है। चारों ओर फूल खिले तारे। पैरों तले अंधेरे में पृथ्वी लौट रही है। इसी तरह वह पांव पटकता, जगत जीतता, दलन करता, चला जायेगा अपने लक्ष्य स्थल तक। बगल में छोटी बांबी की ओट में छोटी कंटीली झाड़ी के नीचे मुड़ा-तुड़ा कौन है बनु, दांत निपोरता बैठा है, ऊपर की ओर देख रहा है। मैं उसके ऊपरवाले से ऊपरवाला अफसर हूं। ऊंचा अफसर, नहीं, दया नहीं, अपना कर्तव्य करो। दया नहीं, माया नहीं। अंदर से आ रहा है साहबी स्वर, निर्मम-कार्यकुशल।

हा हा हा हा—बलिदत्त ठहाके लगाने लगा।

मन का एक खयाल, क्षण भर का सिकंदर, नेपोलियन, हिटलर है। या अमरीका का राष्ट्रपति, फ्रॉम लॉग केबिन टु ह्वाइट हाउस सच्चरित्रता के लिये एक बार उसे मोटी-सी किताब पुरस्कार में मिली थी। ठीक बिलकुल वही फ्रॉम लॉग केबिन टु ह्वाइट हाउस ।

किंतु उसका 'ह्वाइट हाउस' उससे भिन्न है।

वह एक बड़े दफ्तर की कोठी है, जिसका मालिक वह खुद है। एक ओर कतार की कतार टाइपराइटर की ठक-ठक कानों को सुना रही है, मालिकपने की नौबत का यंत्र संगीत,—कार्य में लगे इतने मुंहों की गुनगुनाहट संगीत का आलाप। इस सिरे तक उसे देख अनाज से भरे धान के पौधों की तरह झुक जाते हैं सब। वह इन्हें उपजा कर कर्त्तव्य बोध की अबोध तृप्ति, अक्षय यश पायेगा। इसके बाद—उड़ता जा रहा है, पदवी बढ़ती जा रही है। बड़ी-बड़ी कोठियां कतार की कतार, जमीन,—जितनी दूर तक आंखें चली जाती हैं। दस बीस बैलगाड़ियां, खेती-बाड़ी के लिए और भाड़े के लिए। शहर में भाड़े के लिए चार एक रिक्शे।

और अपने लिए एक कार। अरे, मोटर तो जरूर होनी चाहिए। एक जीप गाड़ी भी, तीर की तरह दौड़ेगी।

फिर भी सुस्थिर कल्पना शृंखलामय या संश्लिष्ट नहीं बन पा रही है।

आदत जो नहीं है, हो जायेगी धीरे-धीरे।

बांस बढ़ेगा तो उसकी पोल भी बढ़ती जायेगी।

अचानक देखा सामने पुलिस है। स्थिर गंभीर उद्देश्य से बढ़ती आ रही है। पांच हत्था पूरा आदमी अंधेरे ही अंधेरे में, दूर से ही ऊपर पिलता सा आ रहा है, ओह ! क्यों ? हे भगवान ? क्यों ? बेचारा निरीह बलिदत्त ! एक कंपनी का नौकर, राजनीति से बहुत दूर, चोरी-चपाटी से कोई वास्ता नहीं। उसके सिर पर लपलपाते आ रहे हैं दो मोटे-मोटे हाथ। आत्माराम चूहे की तरह थर-थर कांप रहा है। चेहरे पर पसीना और भाप बोलती बंद संडसी की तरह दोनों हाथ गर्दन के पास से कसकर पकड़े है चेहरे के पास चेहरा आ रहा है। क्या काट खायेगा ? पीठ पर गुम् से छह सेरा, बारूद फटने की तरह ठो की आवाज—

"सा···आ···ला—अबे ऐसे क्यों थर्राता है बच्चू, क्या कहीं सेंध मार कर आ रहा है बे ? अपने बाजार में रास्ता नहीं देता तुझे, मेरी बीट है।"

"कौन राजा ? ओपफो, इतना शैतान हो गया तू रे ? हैं ?"

"और किस दिन भला था, हैं रे, हैं ? श:···। और कांपता क्यों है, डर लगता है तो झुक जा, बंदा तो जो था वही है, एवरेडी, तू साला तो बैठ गया है आकाश में, अब और पहले की सी प्रीति है तेरे मन में ? क्यों ?"

बहुत चिढ़ गया है मन ही मन, किंतु मन को सतर्क रखना होगा ताकि अभद्रता न हो जाय। यह राज, बचपन का साथी, बचपन की स्मृति बड़े होने पर कांटों भरे गालों पर सिर्फ लाज पोत रही है। राज के सामने कुछ कह देने का साहस होता नहीं, उसकी बे काबू जबान का बहुत डर है, शैतान जो ठहरा, जो मन में आया बक देगा।

यही राज, एक बड़े जमींदार का बेटा, अभी पुलिस कांस्टेबल हुआ है। जोड़-जांठ कर बलिदत्त ने कहा—"जमींदार का बेटा होकर कांस्टेबल की नौकरी कैसे जंचती तुझे राज ? सब ठीक तो है ?"

"अरे उस जमींदार के घर को मारो गोली। चाकरी में हम सब जमींदार हैं।"

"क्या जमादार हुआ है ? अच्छा तू तो देहात में था ? तबादला होकर आया है ?"

"हां तबादला हुआ है। जमादार हुए तो क्या, न हुए तो क्या, जैसे-तैसे पेट तो चल रहा है ? ना क्या ? बाप-दादा के साथ जमींदारी तो गयी, फुर्ती करते-करते पढ़ाई का समय भी बीत गया। पर पुरखों ने एक चीज दी है—यह चेहरा। देखने

पर साहब भी कहता है—तुम बहुत खूब, बस, उसी को बेच-बाचकर चलता है, और अटकता है ? अच्छा, तू अब तक कितनी दूर गया बता तो ? अच्छा-खासा गोल-मटोल तो दिख रहा है,—अबे ठहर, जाता किधर है, हां और कुछ दिन बाद तो पूरा फुटबाल बन जायेगा, क्या काले बाजार का कीचड़ लेप रहा है रे ? अच्छी तरह पटती है न ?"

"धत्—तेरी ये शैतानी भरी बातें गयी नहीं।"

"और जाने पर भी होगा क्या ? तू तो साला बड़ा आदमी हो गया है, भई हमारे तो जितने चोर-जुवारी और बदमाश हैं, सब साथी ठहरे, हमारी तो बात ही न्यारी है। और,—खैर जो हो, बहुत दिनों बाद मिले, तू जैसे अंधेरे में दौड़ रहा है, मैंने सोचा—कहीं कुछ कर आया है, संदेही नजर जो ठहरी। और भाई, दुनिया कितनी बदल रही है। छोड़ यार।"

"देखता हूं तू बहुत खुश है, नहीं तो सबका एक ही रोना है—नौकरी से पूरे नहीं पड़ते, और फिर मामूली कांस्टेबल के काम में—"

"अरे, कांस्टेबल का काम मामूली नहीं रे, मामूली नहीं है यह; और कामों की तरह यह भी एक काम ही है, तू किसी के जूते साफ करता होगा, तो मैं किसी को सैल्यूट ठोंकता हूंगा। काम तो काम ही, सब एक हैं।"

"वास्तव में राज, तेरी स्पिरिट् को मान गया। इतनी बड़ी विपत्ति आयी और गयी, तू वैसा का वैसा ही रहा। तेरे लिए भाई मेरे मन में बहुत श्रद्धा है।"

"भक्ति भी होगी। अबे प्रणाम कर, प्रणाम कर, गांव में तेरी चौदह पीढ़ी तो मेरी चौदह पीढ़ी के आगे घुटनों के बल चल-चल गयीं, तू आज एक प्रणाम कर देगा तो क्या नयी बात होगी ? रहने दे खैर, तू मेरे लिये इतना दुख न कर, तेरे ही अपने बहुत सारे दुख बाकी होंगे।"

"मेरे अपने दुख।"

"अरे, कोई कितना भी बड़ा हो, दुख कहां जायेगा ? दुख तो आयेगा ही आयेगा। इस ओर से आयेगा,—उस ओर जायेगा। तनख्वाह बढ़ेगी,—महंगाई भत्ता छुटेगा। इधर उठने पर उधर गिरोगे, आयेगा-जायेगा; जायेगा-आयेगा, आयेगा-जायेगा।—"

"तू मेरे हाथ यों न हिला भाई, कोई देखेगा तो कहेगा कृत्रिम सांस-क्रिया की चेष्टा कर रहे हो, और जो दर्द होता है—"

"राइट,—कृत्रिम सांस की तुम्हें जरूरत है, यह दुनिया जो हो गयी, तुम तो पढ़े-लिखे बाबू लोग हो गये, सांस की बहुत कमी है। आनंद का तो बीज भी नहीं है, उसे गढ़ने की शक्ति भी नहीं। दुख से दम फटा जा रहा है, वही हाथ-पैर छटपटाते हुए बिजनेस--बिजनेस—"

"भावुक कांस्टेबल, कवि कांस्टेबल—"

"भावुक हां, नहीं तो कविता फूटेगी किधर से, तू तो पास है नहीं—"

"सच रे, तेरी बातें तो कविता-सी सुनाई पड़ती हैं—"

"जानते नहीं, हमारे दादा भारत लीला के पदों को गाते थे,—छोड़, सुख से रह भाई, जब दर्शन हों, होंठों पर यह स्नेह-अमृत लगा रहे। जाता हूं—ड्यूटी है।"

"नमस्कार—"

"धत् तेरे की—" चला जाता है, लेफ्ट-राइट, लेफ्-राइट, मजबूत आदमी।

कितना पुराना जमींदार घर का बेटा, खानदानी घराने के बेटे कांस्टेबली में घुसे हैं, बचपन जाता है हंसी ठट्टे में, तौजीह मिलाम की देनदारी में सब चला जाता है, बाकी रह जाती है सिर्फ पितृपुरुषों के चेहरे की छटा, मारा-पीटी गठन तो चरित्र की बुनियाद है। परंपरा से मिली शासक प्रवृत्ति से फिर शासन करने की इच्छा होती है। काम जुट जाता है।

राज की बात याद आ जाती है। दो-दो चाकर सेवा में बंधे रहते थे।

याद आता है बगुला भगत बनकर भी वह पाठशाला में था बड़ा शिष्य, उसके बाद ?

नहीं, भाड़ में जाय वह···भाड़ में जाय। बलिदत्त तेजी से घर की ओर लौट रहा है।

किंतु वह चिंतित है, क्षुब्ध है।

याद आता है—राज के चेहरे की हंसी बुझी नहीं। फिर भी कहीं वह पुराने रेशो को अनुपात समान रखता है, कहीं फिर भी उसका पलड़ा भारी है।

अचानक मानो एंकटराव की गणना और बलिदत्त का भाग्य समानांतर अवस्था से परस्पर की ओर सरक कर एक जगह मिल जाने की इच्छा करने लगे हैं। सुबह की बात है,—एंकटराव ने कहा—"दास, अबकी बार मिठाई तैयार रखना।" पर सब जानते हैं कि एक ऊंचा पद सबकी आंखों के आगे खाली पड़ा है। प्रार्थी हैं एंकटराव, बलि और अन्यान्य लोग भी। बलिदत्त ने संदेह से देखा था—

क्या एंकटराव ठीक कह रहा है ?

कहता हुआ एंकटराव लेंस के अंदर अपने दाहिने हाथ की हथेली के गड्ढों को मनोयोग से निरख रहा था, अंगूठों के नीचे खूब जोर से काले दाग ने रगड़ खायी। चेहरा उदास। मित्र के प्रश्न पर मुंह उठाकर, हंस कर कहा—' क्या कहा ? ठीक है ? हां ठीक, ठीक अवश्य यदि यह विद्या सही है !"

एंकटराव की घड़ी मार्का सिगरेट के खोल से आखरी सिगरेट खींच मुंह में ठूंस दियासलाई लगाते हुए बलिदत्त का हाथ कांप रहा था। लगता था,—आगामी भाग्य की दूर की लहर उससे टकरा रही है।

उस दिन दोपहर के समय—।

अचानक साहब का आदेश हुआ है—साथ चलना पड़ेगा। साहब की बड़ी गाड़ी में बैठ उनके साथ जाना होगा एक जगह। बलिदत्त का दिमाग घूम गया।

दफ्तर के आइने के सामने खड़े होकर उसने पहले अपना चेहरा देखा। दांतों पर पान के दाग नहीं, जीभ पर है। सामने के दांत, माथे का पसीना, कान का चीकट और नाक का लेसा रगड़-रगड़ कर साफ किया। पहने हुए कपड़े हाथ से झटक कर झाड़े। जल्दी-जल्दी। आईने में फिर एक बार सारा शरीर जांच मातेश्वरी का नाम लेकर तेजी से भागा।

साहब गाड़ी की ओर जा रहे हैं। स्टियरिंग पर हाथ फिरा रहे हैं। पिछली सीट पर साहब के महाबली अलसेसियन बैठे हुए हैं, जीभ लपलपा रहे हैं। बलिदत्त संभ्रम से गाड़ी की बगल में इस छोर से उस छोर तक मार्च कर रहा है। क्या करे कुछ समझ नहीं पा रहा है। साहब ने एक बार इधर मुंह घुमाया भी, उसने झुककर सैल्यूट किया। तुरंत साहब ने दूसरी ओर मुंह मोड़ लिया। अब किया भी क्या जाय ? क्या कर उनकी दृष्टि आकर्षित की जाय ? खांसने को जी करता है—याद आया हां जूता भी तो खटखटाया जा सकता है। और यदि वे गुस्से हो जायें ? इंजिन बिल्ली की तरह गुर्र-गुर्र करने लगा। यह भी कैसा दुख। स्वर्ग के द्वार खोल कर फिर नर्क में फेंकने के लिए कौन धकिया रहा है। या फिर मेल पकड़ते समय फाटक बंद, गाड़ी छूट रही है, अंदर से कोई धकेल रहा है। वे दो मिनट उसके लिए एक युग हो गये।

तब जाकर कहीं धूप झलकी। बड़े बाबू ने दौड़ते-दौड़ते आकर कागजों का एक पुलिंदा साहब के हाथ की ओर बढ़ा दिया, साहब ने मुंह मोड़ा, तेजी से इधर-

उधर होते बलिदत्त ने फिर से झुककर सलाम किया। साहब ने पिछली सीट दिखाकर हुक्म दिया, "बठो।"

बैठते-बैठते गाड़ी चल पड़ती है, गाड़ी का फाटक ठीक से खींच न सका वह, खुला है, जी-जान से खींचे हैं। फिर दुश्चिंता, अबकी बार पसीना आ गया। हठात् साहब की विरक्त निगाह—बायें हाथ से एक जोरदार खटाक्—फाटक बंद हो गया।

अब बलिदत्त ने अपनी स्थिति की ओर निगाह की। विकटाकार कुत्ता, सच यह तो कोई पालतू बाघ है,—विकराल, हिंस्र दृष्टि से देख रहा है, मुंह खोले जीभ दिखा रहा है। गंभीर होकर गुर्राना भी शुरू कर दिया। बलिदत्त का तो खून ही सूख रहा है, मुंह से निकलने-निकलने को है एक किलकिलाती चीख, जोर से चिल्ला पड़ता है—"ये, बाप रे, मो दाऊ लो। खा गया रे।" अति प्राचीन आदिम भाव-प्रकाश की सनातन राह से छाती का बोझ झटक कर चिड़चिड़ाकर भाग जाता—चला जाता, किंतु चीख के बदले निकलता है एक प्रकार की महीन सी सिसकारी का शब्द, भयभीत छोटे जंतु का अंतर्नाद। इसपर कुत्ते का मिजाज और भी गरम हो गया। अबकी बार उसका गंभीर गर्जन अगली सीट पर पहुंचा और साहब ने चिल्लाकर कहा—"शटप डिक"—डिक इतना ही निर्देश खोज रहा था। उसका गुर्राना बंद हो गया। पर अब उसे चाहिए दोस्ती। अपना विकराल मुंह आगे करते हुए बलिदत्त को नीचे से ऊपर तक सूंघते-सूंघते टटोलने लगा। उसके पेंट की मोहरी को पंजे से कुरेद कर गंदा कर दिया और फिर उसकी गोद में अपना एक वजनदार पांव रखकर इत्मीनान से सो गया।

जो हो, यह भी एक प्रकार की संधि है, कदम-कदम पर आशंका होने पर भी—मन जरा-सा बाहर उड़कर मेघ में खो जाना चाहता है पर कोई पहले ही धीरे से चिकोटी काटकर कोई सचेत कर देता है,—तू यहां है।

यही डर छोड़ सकता तो चेतना मजे में ऊंचाई पर उड़ सकती पतंग सरीखी। गाड़ी चली जा रही है। डर कर लोग रास्ते से हट जाते हैं, असंख्य प्रणाम। परिचित लोग अचंभे में भरकर बलिदत्त की ओर देखते हैं, जो उसे मच्छर-मक्खी समझते हैं वे भी मुंह उठा उस ओर देख लेते हैं। गाड़ी चली जा रही है। वास्तव में चलती गाड़ी पर से पृथ्वी और ही तरह की दिखायी देती है। वही सड़क, वही गली, दुकान-बाजार, किंतु धरती पर चल-चलकर जाने से वे दबाते से जान पड़ते

हैं, घोड़ा-गाड़ी से और ही ढंग से दीखते-दिखाते हैं, मोटर गाड़ी से और एक प्रकार—रेलगाड़ी के अंदर से तो बिलकुल अलग ही प्रकार से—सच, मानो चलती सराय है।

आसन की ऊंचाई और वाहन की गति में देखने वालों का व्यक्तित्व भी भागीदार होता है, उसकी आंखें बदलती हैं,—भावना बदल जाती है। सजावट के थोड़े से रद्दोबदल में भी परिपार्श्विक अवस्था बदल जाती है, मेज सरक जाय या लालटेन बुझ जाय तो भी।

कैसी आश्चर्यजनक बात है। बलिदत्त सोच रहा है। नशा करने पर भी उसका मन यों नहीं फूलता। पहले आधे घंटे वह रास्तों में फूल-फूलकर बाहर की ओर देखता रहा, स्वयं ऊंचा हो सबको नीचे देखता रहा। दूसरे आध घंटे में आ रही हैं उदार समवेत योजना, विस्तृत विश्लेषण, नयी-नयी धारणाएं, नयी अनुभूति का स्वाद, नयी कल्पना। सचमुच मानो अपना चार फुट नौ इंच का खोल फेंककर वह कद्दावर शाल की तरह बढ़ता जा रहा है। अब वह अपना दुख भूलकर औरों को सहानुभूति दे सकता है।

सामने वही साहब, बड़ा है, किंतु सोचने पर दुख होता है। क्योंकि वह दारू कूकर और घोड़ों में मन देता है ? साहब चुपचाप बैठा गाड़ी चलाता जा रहा है, किंतु कितना अकेला और एकाकी दिखता है. काम में डूबता है तो मशीन की तरह चलता है। काम से उठने पर वह जीवन को आमने-सामने नहीं देख सकता, घुल जाता है। ये उस दिन की बात तो है, घर पर,—टेबुल पर ढेर सारे कागजों का अंबार पड़ा था। दरवाजे पर से बंदूक तानकर उस ढेर को लक्ष्य किये साहब बंदूक का घोड़ा टीप रहे थे, मेम साहब ने छुड़ा लिया, नहीं तो क्या हो जाता ? उस ओर बूढ़ा बेयरा आकर ऊंघ रहा था, हड़बड़ा कर उठ खड़ा हुआ। खाली वह नशे में पागल हो गया था। उस घड़ी या जीवन के प्रति बढ़ता विरक्त भाव उस दिन बंदूक के मुंह पर झांक रहा था।

और मेम साहब, वहां क्या साहब के मन की चाबी में आये अबूझ उलझे जाल का छोर मिलेगा ? भगवान ही जानें। दोस्तों के बीच नाच में डूबकर खूब नाचती जाती है, साहब के हाथ में मानो तुलती है।

और शराब। उस दिन वह किस अवस्था में नीचे लुढ़क गया था, पोशाक दो टुकड़े हो खुल गयी थी, बैयरे ने बच्चे की तरह उठाकर पलंग पर सुलाया और

पंखा खोल दिया था।

चित्र-सी खूबसूरत हैं मेम साहब। पर चित्र-सी आती-जाती है, गरमी में ऊटी या दार्जिलिंग, जाड़े में बंबई से कलकत्ते। मौसमी चिड़िया की तरह वह उड़ आती है, अकेली।

इनकी दिग्विजयी दुनिया भी अजीब है।

विलायत में बच्चे, दो हैं। बूढ़ा बाप गांव में भेड़ पालता है, खाली समय में बंसी लेकर मछली फांसता है।

एक भाई अफ्रीका में बस गया, वहां वह खेती करता है।

बहन, हां बेयरे का कहना है कि बहन भी अपनी तरह की एक है, पहले जर्मनी में गीत गाती थी, अब हांगकांग में किसी पादरी की स्त्री है। सच, इनका यह दिग्विजयी संसार है।

सारी पृथ्वी उनका घर है।

मर-जी कर, गिर-उठकर, ये चलते रहे हैं। बमबारी में बार-बार गांव के गांव जल जाते हैं, बार-बार युद्ध में श्मशान-चंडी को बलि चढ़ाते हैं, फिर जीवन लोभी संस्कृति पुकारती है,—कीचड़ खाओ, खून पीओ, जीओ, वंश बढ़ाओ। क्षत-विक्षत युद्ध की घटाटोप के बीच पक्के-बूढ़े मुरब्बी चिल्ला रहे हैं—"आगे बढ़ो, दुख का कलेजा निचोड़ कर। फिर भी हम पायेंगे आनंद का रस, इसी अंधेरे में से प्रकाश उपजेगा, बढ़े चलो, हिप-हिप हुर्रे, लांग लिव द किंग।"

फिर साहब उदास क्यों हैं? क्लांत क्यों हैं?

बलिदत्त सोचता है वह खुद ही समझे।

साहब का कल्पित दुख अपने ऊपर लेकर वह सोचता है बुढ़िया की तरह,—आह! थोड़ा सहला देता उसके दुखते मन को।

प्रिया की तरह सोचता है,—काश सुख दे सकता।

दास की तरह सोचता है,—मन लगाकर सेवा करता।

चेतना को झटका देता-सा साहब कर्कश स्वर में बिलबिलाया—एक बार, दो बार, बलिदत्त समझता ही नहीं, चौंक पड़ा, आगे झुक गया है। साहब चुप हो गया। कुछ सोचकर वह खीझा था।

बलिदत्त की चेतना पीछे लौट रही है। अब वह केवल गर्वित है। अपने आप।

आगे रास्ता बंद किये एक मोटर जा रही है। रास्ता नहीं देती। ड्राइवर पास बैठा है, एक बहुत बड़ी चोटी, गले में काठ की माला और कंठी बाहें तले लाल बटुआ है। तराशे गये पत्थर की तरह बैठा है, मुंह से खंखारता है, हाथ से संकेत करता है। ड्राइवर से गों-गों होता है,—"और जरा तेज, और जोर-जोर से।"

भोवनी साहू। ईंट का भट्ठा है, कंट्राक्टरी करता है। युद्ध के बाजार में तंबू के कीले जुगाता है और उसी से रुपयों का स्तूप बना लिया, एक कील का एक रुपया। नया-नया पैसे वाला। अंगूठा छाप। अंगोछा बांधता है।

दानापानी के युद्ध में जयी भोवनी साहू। थोड़े ही केयर करता है ?. हूं !

साहब की पों-पों अनसुनी कर खूब धूल उड़ाती, शराबी की तरह लड़खड़ाती उसकी मोटर आगे भाग गयी।

साहब लाल हो गया है, बायीं अंगुली का मोटा नाखून चबाये डाल रहा है।

"ऐ बाबू। उस मोटर के नंबर नोट किये ?"

गड़गड़ाता बलिदत्त भोवनी साहू का नाम, गांव और उसकी मोटर के नंबर सब कुछ बताने लगा। उच्छ्वास में वह भूल गया कि मोटर पर मालिक का नाम गांव नहीं लिखा होता। और नंबर लेकर साहब भी क्या करेगा ? वह तो सरकार नहीं है, कंपनी का साहब है। पर इससे क्या होता ? पूछते ही सारी खबर दे सका है। जय मां काली।

"हूं !"—साहब चिंतित हैं, "अच्छा नोट कर रखो।"

लो, पायेगा, अब भोवनी साहू। पर साहब चिंतित क्यों हुआ ?

फिर संदेह, फिर अविश्वास होता है।

बलिदत्त का पारा सर्र से नीचे की ओर खिसक गया, गिर कर पता नहीं किधर छिप गया। वह विश्वविजयी नहीं, वह कुछ भी नहीं, वह खाली बलिदत्त है,—दानापानी चुगने वाली एक चींटी।

लोग कितने बड़े आदमी हो गये,—ओह !

नदी किनारे जो लोग फालतू में हवा खा रहे थे, कितनी ऊंची डाल पर चढ़ गये हैं वे लोग ! आह !

कुत्ता उस पर आधी काया लादकर सोया है।

याद आता है बूढ़ा बाप क्या करता होगा ?

कुत्ता देखते ही चिल्लायेगा—"मार, मार साले को,—नहीं तो छू देगा, सब कुछ अपवित्र कर देगा—"

गहरी सांस लेकर सीट के पीछे बैठा रहा बलिदत्त ।

संध्या ।

दिन भर की क्लांति के बाद सूखे मुंह से बाहर के किवाड़ की कुंडी हिलाते ही पुराना सफेद ब्लाउज पहने, सिंथी काढ़, बाल संवारे सरोजिनी ने किवाड़ खोल कर हंसते हुए कहा—"महापात्रजी आये थे ।"

"महापात्रजी ! कौन महापात्र ?" हंसकर बलिदत्त ने कहा—"कौन हैं ये महापात्र ?"

"हूं, सचमुच ही जैसे नहीं जानते हो । अनजान बनते हैं । तुम्हारे वो, जिनकी इतनी बात कहते हो, तुम्हारे मझले साहब या छोटे साहब या पता नहीं कौन साहब हैं ना,—तुम्हें बुलाते हैं ।"

"आये थे ? आये थे ? तुमने कैसे जाना ? और क्या कह गये हैं ?"

"मां री, फटी साड़ी पहने घर बुहार रही थी । बाहर बरामदे में देखा कोई खड़ा है । बोले—'बलिदत्त बाबू लौट आये क्या ?' मैं तो काठ हो गयी । कहने लगे, 'मैं महापात्र साहब ।' फिर कहने लगे, 'घर में क्या कोई नहीं है ? बहुत प्यास लगी है ।' सोचा, ये फिर साहब ठहरे । क्या यह अंधा है ? घर में गयी, साड़ी बदली । कुछ समय लगा, फिर देखा यह तो पहरेदार की तरह टहल रहा है । सोचा सच बहुत प्यास लगी होगी । साहस जुटाया, नींबू निचोड़ कर कांच के गिलास में पानी लिया । किवाड़ के सहारे-सहारे जाकर बरामदे में रख दिया । गट-गट पीकर बोले, 'ओह ! हमारे घर की ओर कभी आप लोग घूमने नहीं आते ? बलिदत्त बाबू को आने पर कहियेगा, वे आयेंगे ? जरूरी बात है उनकी नौकरी के बारे में ।' अच्छा तुम्हारे साहब की आंखें क्या बिल्ली की आंख हैं,—अंधेरे में भी झक्झक् जलती हैं,—"

सब ठीक कहा है ।

आंख जलने तक।

"छोड़ गयी बस एक बात। अनावश्यक जरा-सी बात, प्यास के बाद महापात्रजी बोले, 'पानी कितना खुशबूदार है—' भाई रे, कैसी अटपटी बात, पानी और फिर खुशबूवाला। और पानी पीकर अपने स्वाभाविक कायदे से कांच का गिलास नीचे न रख हाथों-हाथ बढ़ा दिया था,—बोले, 'नीचे रखने पर टूट जायेगा', और अपनी अंगुली की पोर से सिहराने वाली कड़ी चुटकी। गिलास देते-देते कहीं गिर न जाय इस डर से शायद कस कर पकड़ा होगा।"

बातें बलिदत्त को थोड़ी-थोड़ी असुविधाजनक सी लग रही थीं। मन में कहीं अंदर कुछ काले मेघ घुमड़ने लगे थे, वह कोसना चाहता है, 'मछली भुनी देख, बिल्ली की आंख जले।' किंतु सरोजिनी आज कितनी खुश है, पैर जमीन पर पड़ते ही नहीं, पति की सफलता की अनुभूति उसे फुलाये दे रही है, एक ही आत्मा तो। महापात्र जी ने नौकरी के बारे मे बुलाया है,—नौकरी में कुछ उन्नति होगी, जरूर होगी, एंकटराव ने कहा भी यही था। नौकरी। नौकरी। आज सब सुंदर लग रहा है। सरोजिनी कितनी सुंदर दिख रही है। आदमी यही तो चाहता है घर लौटते समय। साफ-सुथरी, अच्छे कपड़े पहने, हंस-मुख पत्नी। नहीं तो घर लीपते हुए गोबर में लतपथ हाथ, चेहरे पर हांड़ी की कालिख, रुखे-सूखे फरफराते बाल, सिर चूल्हे की राख, छि:। सरोजिनी महक रही है, चेहरे पर खुशबूदार स्नो, जो कभी-कभी ही निकलती है।

आज जरूर कोई विशेष दिन है।

बृहस्पति का चलन है।

कहां वे काले मेघ? मन के किस कोने में छुप गये। बलिदत्त की पत्थर की नींव धंसा कर जैसे बाढ़ आ रही है। व्यक्तित्व को आच्छन्न कर गरज रही है बाढ़ राक्षसी।

सरोजिनी की उसे जरूरत है, उसी क्षण।

मन के गहरे में अधिकार भावना को वह जाहिर करना चाहता है सरोजिनी पर, वह संपूर्ण उसकी है, किसी और की नहीं।

इसके बाद घूमने जाना पड़ेगा महापात्रजी के घर, सपत्नीक।

सांझ का झुटपुट, लोग जाग रहे हैं। उससे क्या? बंद किवाड़ों वाले घर में वह अनुभव करना चाहता है कि यहां का मालिक वह स्वयं है।

सरोजिनी चीखती है,—अरे—अरे—अरे।

आनंद या खीझ वह समझ नहीं पा रही है।

बलिदत्त हें-हें कर हंस रहा है, वह हंसी विजय का उल्लास है या आहत की आर्त्त चीत्कार।

रास्ते के उस ओर वाले घर से कालेज छात्र से शेक्सपीयर की स्पीच खूब धीर दर्प से पढ़ रहा है—

"हाउल-हाउल ओह्ह विंड्स—"

"चलो, देर होगी फिर।" बलिदत्त हड़बड़ी मचाने लगा। उसने शीघ्रता से अपने घूमने के कपड़े पहन लिये हैं, सफेद धोती, कमीज। गीले अंगोछे से मुंह रगड़ रहा है। सिर पर गीले हाथ फेर कर सहला रहा है। सरोजिनी अलसायी सी पान लगा रही है, उसे जाने की जल्दी नहीं है। कहने लगी,"मैं सोचती हूं आज न ही चलें। रहने दो। देर हो गयी। लौटते समय तक बहुत देर हो जायेगी।"

"कुछ भी हो। उन्होंने बुलाया है। उठ—"

"तुम हो आओ। अच्छा, जो लोग बुलाते हैं, गाड़ी क्यों नहीं भेजते? क्या उनके पास नहीं है?"

"अच्छा भगवान को कहो, गाड़ी में बिठायेंगे। जाना है, उठो, सिर में कंघी कर लो।"

"कंघी तो कर ली है—"

"चलो न, बातें न बनाओ।"

पांच मिनट बाद सरोजिनी ने सूचना दी—वह तैयार है। जम्हाई लेते हुए बोली,—

"अच्छा चलो—"

"यह क्या कर रही हो? आपकी अच्छी साड़ी कहां गयी?"

"धोबी के यहां गयी है।"

"और चप्पल? चप्पल की जोड़ी तो पहन लो—"

"क्या इतनी सजधज कर रहे हो ? चलना हो तो चलो, नहीं तो मैं जाती हूं। काम है।"

"देखो सरोज, काम तो सदा ही होता है, न करने वाला काम ही बेमौके करना पड़ता है, चलो।"

कहकर वह बहुत खुश हुआ। उसे लगा कोई पांडित्यपूर्ण बात कह डाली है। घर में ताला लगाकर दोनों चल पड़े।

आज रास्ते में जीवन शक्ति की लहरें खिल रही हैं, रोज वाली रात की अंधेरी सड़क, पर आज वह नयी लग रही है। आज के जीवन की अनुभूति निराशा में जली-भुनी नहीं है और न अभावग्रस्त प्राचुर्य में अचेत ही सोयी हुई है, आज कदम-कदम पर 'मैं' याद आता है, जो आशा को चंचल कर देता है। बलिदत्त जीवन को अनुभव करता हुआ चल रहा है। रास्ते में सरोजिनी से बड़ी-बड़ी बातें कहता चल रहा है, मजाक कर रहा है। अपनी बात का आप ही उत्तर दे रहा है, मानो अपने साथ खुद बातें कर रहा हो।

सामने ही महापात्र का बड़ा मकान है। सरोजिनी दबी-दबी चल रही है। बलिदत्त अधिक तेज चलने लगा। सरोजिनी के व्यक्तित्व में लघुता है—क्या है यहां उसका परिचय ? बलिदत्त परिस्थिति से बेखबर है। फाटक आ गया। यह फाटक एक परिचित जीवन का रूपक है, यहां ऊपर-नीचे, छोटा-बड़ा, दायित्व। सब का पता चल जाता है। सिलिड्रिकल चश्में के कांच की तरह फिर जीवन का दृष्टि-कोण घूमकर दिखा रहा है नया रूप। सेवार से ढंके मोटे-मोटे दो खंभे, बीच में कोलतार पुते सागवान की खड़ी लकड़ियों से गुंथा फाटक, वही उस जीवन की काली-कलूटी दांतिल हंसी, उसकी ओर देखने पर बलिदत्त को दिख जाता है अपना परिचित व्यक्तित्व, महापात्रजी या ऊपरवालों की तुलना में वह व्यक्तित्व टेढ़ा है—सीधा नहीं; पतला है—मोटा नहीं; खर्व है—उन्नत नहीं। देह मरोड़ झुकाकर सिर के बालों में अंगुलियां घुमाकर कोने ही कोने में कृतज्ञ नजर भय मिली आवाज, कुछ खुली दांतों की पंक्ति, तिरछे होकर,—खुलती है, बंद होती है, खुलती है बंद होती है, वह एक प्रकार की हंसी। यहां वीरत्व नहीं, यहां है दानापानी की चेतना, बित्ते भर के पेट के लिए सहज दास्य भाव से सुविधा की भिक्षा।

बलिदत्त खड़ा रहा, बाहर उसमें द्रुत परिवर्तन हो रहा है, जंतु के अंदर की

बहुरूपी प्रकृति को रक्षा कवच पहना रहा है, पारिपार्श्विक अवस्था से रंग ले रहा है।

सरोजिनी ने कहा—"यही है महापात्र जी का घर? अंदर चलो, खड़े क्यों हो?"

"रुको भी" बलिदत्त ने कहा, "पेशाब तो कर लूं," उसके स्वर पर ढक्कन चढ़ गया है। सरोजिनी ने इधर-उधर देखा। स्वामी के रूप-परिवर्तन की बात वह बिलकुल नहीं समझी। सोचती है, आज जो आये थे वे इसी घर में रहते हैं।

गिलास बढ़ाकर देते समय,—छिः।

यह उसके पति, उसके गर्व के प्रतीक।

पर आदमी की चमड़ी तो पत्थर नहीं है, वह स्पर्श को ग्रहण करती है।

गोपन में एक छवि की कल्पना की जा सकती है, इसके लिए किसी स्थूल निदर्शन का प्रयोजन नहीं, नारी मन की सूक्ष्म अनुभूति ही यथेष्ट है।

वह एक अशांत पुरुष की छवि, दुखी, दरिद्र, पिपासु।

हां, उन्हें गहरी प्यास लगी है।

दया आती है।

और इस फाटक के पास खड़े होकर कौतूहल घिर आता है—इसी मकान में वे रहते हैं, वे, उनकी स्त्री, उनके बाल-बच्चे। कैसी है वह स्त्री?

सरोजिनी के मन में दुःसाहसिक आविष्कार का कौतूहल है। वह मौन हो हंस रही है।

बलिदत्त सकपकाता-सा चला जा रहा है, पीछे-पीछे सरोजिनी है, उसकी चाल में गदराये निस्वार्थ यौवन का माधुर्य है।

खाली बदन में लुंगी लपेटे गुड़ाखू की लोई लिए दांत घिसते हुए टहल रहा है कोई, रात के साढ़े आठ बज गये। पहचाना नहीं जाता, पर गुड़ाखू के सहारे जो लार की धार से भरे मुंह से बिलबिला जाता है। कई बातें उसकी प्रतिध्वनि की तरह बाहर की रोशनी से भी घर में कोई वही बात कह रहा है, पर विनीत स्वर में।

'अरे जल्दी-जल्दी लिख, क्या आम बोलो तो जामुन समझता है, क्या बैंगन लिखता है। जल्दी कर। हूं, तुम्हारी उन्नति की आशा नहीं, एकदम घर लौट जाना चाहते हो। कंपनी मुफ्त तनखा दे रही है, क्यों? जल्दी लिख,—'सुनता है?'

सपत्नीक बलिदत्त।

"कौन ? कौन है वहां ? अबे गोपालिया,—कहा था तुझे किसी को न आने देना, यहां काम हो रहा है। हैं ? अभी तुझे ठीक करता हूं। कौन है वहां ? किधर आये ? यहां कुछ नहीं है जाओ,—भागो, दफ्तर में मिलना चुप-चाप खड़े क्यों हो, बात क्या है, बोलते नहीं ? कौन है ?"

"सर—"

"ओह। मिस्टर दास, साथ में और कौन है ?"

"सर बच्चे भी आये हैं—"

"ओ आइ सी, आइये, आइये, अंदर आइये न, मैं रास्ता दिखाता हूं,—आइये,—इधर से,—आज कितने भाग्य की बात है,—क्या किया जाय आदमी काम धंधे में एकदम अंधा,—इधर चले आइये,—अरे, रोशनी लाना तो—"

महापात्र जी रास्ता दिखाने लगे। बलिदत्त ने अंदर देखा,—"अरे, बिनु बाबू, इतनी देर तक ?—"

बाहर वाले कमरे से फुसफुसा कर बिनु बाबू ने कहा,—"देखते हैं अपनी आंखों, दस बजे जो खाकर आया था, अभी तक घर न जा सका। हाजत होते-होते वह भी बंद हो गयी। फिर भी चल रहा है काम। मंजन घिसते-घिसते बड़बड़ाते मुंह से क्या कहते हैं कभी-कभी समझ नहीं पड़ता। यद्यपि साहब लोग भी पाइप मुंह में ठूंसकर डिक्टेशन देते हैं, पर वे साहबी शब्द, कायदे के कारण पकड़ाई में आ जाते हैं, उस पर पीटमैन सर्टहैंड, और ये बाबा इन शब्दों की दांत घिसते समय की ध्वनि, उसमें फिर अंग्रेजी भाषा, उसे फिर पीटमैन शार्टहैंड। छोड़ो, तक-रीर,—एक पान तो देना ? आज तो साहब के साथ बैठकर गये थे, क्या हुआ ? आपके भाग्य जाग गये बलिदत्त बाबू, आपके भाग्य जाग गये।…"

"हूं हूं"—गला खंखारने की आवाज सुनायी पड़ती है। वे लौट आये। बलिदत्त बाहर आकर रुमाल से मुंह पोंछकर धीरे-धीरे टहलता है, वह वैसा कुछ जानता नहीं। बिनु बाबू ने रजिस्टर पर सिर झुकाया।

महापात्र जी बोले,—"काम तो अधूरा ही रह गया,—अच्छा, बिनु बाबू, तुम घर जाओ। तुम से कुछ होगा नहीं। लो तो बलिदत्त बाबू, तुम्हारा हाथ तो तेज है,—तुम चाहो तो अभी समाप्त कर दोगे, ओह,—इन साधारण लोगों से पाला पड़ता है,—छोड़ो। संभालो अब। हां, समझे तो,—आज मैं तुम्हारे घर गया

था। छोड़ो। वह सब बाद में कहेंगे। पकड़ो अब, —लिखो—"

गुड़ाखू का अंतिम अंश जल्दी ही पूरा हो गया, अब काम सहज है।

बलिदत्त लिखता है।

टन्-टन्,—नौ बज गये। लिखायी चल रही है।

फिर—टन्, साढ़े नौ लिखायी चालू है।

बलिदत्त घूमने आया था।

अब उसके विशिष्ट व्यक्तित्व की जीवन चेतना नहीं, वह मशीनी आदमी है, काम करता है। लिखायी समाप्त होने को आयी, अब शायद उसकी छुट्टी होगी।

महापात्रजी ने उसे क्यों बुलाया, पूछना याद नहीं रहा। आगे दिख जाता है फिर आगामी कल का परिश्रम, इतना लिखा टाइप करके देना होगा।

हाथ चल रहा है। मन मर चुका है। बलिदत्त काम कर रहा है।

उधर सरोजिनी—

सारी अभिलाषा बुझ गयी थी यथार्थ सामने था,—महापात्र का प्रथम संभाषण सुन, इसके बाद आग पर पानी छिड़कने की तरह अचानक उनकी अस्वाभाविक भद्रता,—गर्म चाय भाव की धुंध पैदा करती है, शांति का नाम नहीं।

क्या करे आदमी। यहां से तो छुट्टी मिले। सरोजिनी ने तुरंत सोचा।

पर आगे-आगे महापात्र,—"यही, इस रास्ते।" वही तेज चाल, तेज बात-चीत,—सब आदमी एक जैसे भीरु होते हैं,—सरोजिनी ने सोचा,—फर्क केवल उन्नीस-बीस का है।

अंदर आंगन में किवाड़ धकेल कर महापात्र जी ने आवाज लगायी, "ये देखो तो, बलिदत्त बाबू के बाल-बच्चे आये हैं।" कहकर चले गये। सरोजिनी निरीह-सी देखती रह गयी। कहां कौन है? बगल में रसोई घर से आवाज आ रही है, रसोई के बारे में बात हो रही है। एक तरफ पढ़ने वाले बच्चों की पढ़ायी चल रही है। एक कमरे में दो-तीन बच्चे किलकिलाते खेल रहे हैं। भंडार के किवाड़ खुले

हैं, रोशनी जल रही है,—घर की चीजें दिखती हैं। पलंग, बिस्तर, अलमारी,—भरा-पूरा बड़े आदमी का घर, सब काम में लगे हैं, वह यहां कौन है ?

खेलते-खेलते तीनों बच्चे बाहर चले आये, उसे देख सहम कर खड़े रह गये, फिर दौड़ गये मां के पास। दासी आयी और अपने आप कहने लगी। "कोई आयी है—हैं।" देखते-देखते सब आ गये। इस घर की कर्ता, बच्चे, रसोइया, नौकर-नौकरानी। एक साथ सबके दर्शन हो गये।

घर की मालकिन ने पूछा,—

"कौन ?"

"मैं घूमने आयी थी।"

उधर से कोई उत्साह नहीं, रात की इस घड़ी और अनजान आदमी का घूमने आना, ताल-मेल बैठता नहीं। फिर प्रश्न—"साथ में कौन है ?"

"वे भी आये हैं, जो बाहर बतिया रहे हैं।"

"ओह ! साहब के पास हैं ?"

"हां।"

"अच्छा आओ ऊपर चली आओ। अरे चटाई लाना। क्या पान तो खाओ। मीठा या जर्दा ? अरे, मेरा पान का बटुआ तो पकड़ा जाना। कहां हैं तुम्हारा घर ? सोझ के झुटपुटे में आये नहीं ? कहीं नहीं जा पाती किसी से जान पहचान भी नहीं हो पायी। सदा तो यही धंधा और क्या ? तुम्हारे कितने बाल-बच्चे हैं ? ओ—तुम्हारी तो अभी उमर ही कहां हुई है ? और क्या ? पीहर किस गांव में है ? ससुराल ? क्या-क्या तरकारी बनाती हो ?"

इसके बाद ? सवाल खत्म हो गये।

साहबानी पल्थी मारे बैठी है। सरोजिनी देख रही है, कोई विशेषता नहीं दिखती। नष्ट स्वास्थ्य का साधारण एक आदमी, छोटे कमरे में पड़ी होती तो भी पता नहीं चलता। हाड़ों पर सोने की छावनी की गयी है, उतना ही। और करने की एक प्रकार की भंगिमा उन्हें इस स्थान में खपाये है। कहने की भंगिमा में आदेश की सूचना है।

गुप्त आदेश पाकर नौकर गया था, परिचय लेकर चला आया। रसोई में जाने के बहाने खबर ले ली। बच्चे जिद्द कर रहे हैं खाने के लिए, "आती हूं", कहकर उठ खड़ी हुई।

इसके बाद साथ रहने के लिए एक नौकरानी, "बहूजी, बाबू क्या करते हैं ? वे क्या हमारे साहब के पास गुमास्ते हैं ? कितने रुपये वेतन पाते हैं ?"—पर उसके इस सुख-दुख में भी बाधा पड़ी, दूर से आयी धमक—"अरी ओ मल्ली, बर्तन मांजती है या बैठी है ?"

फिर वह अकेली रह गयी। मालकिन काम काज में लग गयी। सरोजिनी मन ही मन जाप रही है, "अब कब ? अब कब ?"

घर में रोज जैसा काम हो रहा है, वह कौन है इनके बीच ?

सोचते-सोचते उसके अंदर से निकलता है उसका व्यक्तित्व, याद आता है—रेल-पेल की इस दुनिया के मेले में वह भी एक स्त्री है, उसका आकार है, आकृति है, धंधा है, घर है, उद्देश्य है।

उद्देश्य है ! क्या है उसका उद्देश्य ? उपेक्षित मन में उद्देश्य भी चूर होकर क्षर जाता है, उसका कोई पता नहीं रहता, व्यक्तित्व छोटे से छोटा होकर मुंह छिपाने पता नहीं किस कोने में खो जाता है।

कौन है वह यहां ? कोई नहीं। क्या सिर्फ दर्शक भर है ? कस कर पकड़ने की उग्र आकांक्षा मन में भर कर बारंबार देखती है,—लाल होकर जलती है, लिपट जाता है काला रंग। वह बस वही है।

जाने को छटपटा रहा है उसका पलायनपंथी व्यक्तित्व। पर जा नहीं पाती। रास्ता बंद कर दिया है परिस्थिति की अर्गला ने। चेतना में जन्मजात रुंधापन है।

सिर्फ एक के बाद एक गहरी सांस खींचकर उत्तप्त व्याकुल होकर देखना। दुर्बल मन में भगवान को मुक्ति के लिए पुकारना। अपनी यातना के लिए दूसरे पर दोष मढ़कर गाली देना। यही तो कर सकती है वह।

सरोजिनी की आंखें खुली हैं, यह देख नहीं रही हैं। हांफती हुई भावना में तैर रही है, तेजी से; बार-बार उसे लगता है जैसे वह उपेक्षित है। मन ही मन महापात्र जी को गाली दे रही है, फिर पति को, फिर अपनी बुद्धिहीनता को।

इस तरह रात के साढ़े ग्यारह बज गये, अंदर से सुना, "एं ! गयी नहीं।" मालकिन किवाड़ खोल बाहर आकर बोली—"इतनी देर तक तुम्हें यहां बैठाये रखा है। खुद काम कर रहे हैं। कौन प्रतीक्षा करेगा, बोलो तो। अरे गोपालिया,—अर्ली—अर्ली—कोई है, जाना, कहना तो अपने साहब को। अच्छा, अब तुम जाओ। रास्ता दिखादे रे गोपालिया, अंधेरा हो गया है। अच्छा जाओ। आते

रहना, हैं ?"

गोपालिया रास्ता दिखाता चल रहा है। सरोजिनी बाहर आकर खड़ी हुई। दफ्तर में गोपालिया कुछ कहता है। महापात्र खीझकर उठ खड़े होते हैं।

"ओह ! और रहने दें। एक चिट्ठी अभी और लिखी जा सकती थी। अच्छा, बलिदत्त बाबू अब जाइये। शायद देर भी हो गयी। इतना तो ले जाइये। कल टाइप करके ले आयेंगे न।"

बलिदत्त के नमस्कार का उत्तर दिये बिना ही महापात्र ने किवाड़ बंद कर लिये।

अंधेरा रास्ता, बलिदत्त और सरोजिनी अकेले।

"इतनी देर कर दी ?" सरोजिनी और अधिक कुछ नहीं बोल सकी।

बलिदत्त ने बड़े कष्ट से जोर लगाकर कहा—"देख तो रही हो।"

दोनों चुपचाप घर की ओर चल रहे हैं।

एक नयी चेतना,—रुंधा हुआ विद्रोह, एक दबाए है परिस्थिति के विचार से, और दूसरा एक गोण मनोवृत्ति की लौह पोशाक तले।

सुबह उठा अभी मुंह भी नहीं धोया। गत रात रगड़े हुये कागजों का पुलिंदा देखता है,—बलिदत्त दास, यही तेरे जीवन की कविता है।

इसी दुनिया में रोज पौ फटती है, जंतु अपनी आंख या अनुभूति से अपने आनंद के लिए आनंद की सामग्री चुग लेता है।

प्रत्येक के लिए वही विशिष्ट है जो उसे रुचे। कोई लेता है आंसू भरी चिंता, क्रोध चखते-चखते एक प्रकार का स्वाद अनुभव करता होगा—आंसू का नमकीन स्वाद,—सांभर हरिण की प्रिय खारी माटी। कोई अपने को बेंत से लहू-लुहान कर आनंद पाता है। किसी के आनंद की सामग्री हंसी भर डलिया है, टोकरी भर सफेद फूलों की महक।

खाद के ढेर में कौवा चोंच मार रहा है। रास्ते के किनारे कोई कुत्ता जुटा है फटे जूते के टुकड़े को फाड़ने में।

रास्ते के उस ओर कॉलेज छात्र व्यायाम करने के बाद हथेली से पसीना पोंछ रहा है। उसके लंबे बाल झटककर माथे पर आ गये हैं, पसीना पोंछना अच्छा लगता है इसलिए वह खूब कसरत करता है। पसीना उसके आनंद की सामग्री है।

खाली अनुप्रास में अनुभूति की विशिष्टता है—अपने मन के अनुसार आनंद। वस्तु जड़ होती है, चेतना चिन्मय है। घटनाएं पुरानी होती हैं, अनुप्रासों की विशिष्टता से नया आनंद बोध मिलता है।

बलिदत्त फाइल जकड़े है।

इसके बाद दौड़ता है टाइप के लिए। पूरी करते-करते साढ़े-दस हो चुके।

सरोजिनी ने बताया था कि घर में सब्जी नहीं है।

नहीं तो न सही।

गरमा-गरम भात दो कौर, झिलमिलाता दाल का पानी, भाप निकालता एक उबला हुआ आलू, मैले-मैले दो-चार दाने नमक के और लाल-लाल दो मिरच। दो मुट्ठी निगल जाने की बात,—खाना प्रधान है या सफलता के लिए अग्रसर होने का आनंद ?

सब्जी हो या न हो, चाहे कुछ भी न हो,—चाहे काठ गीला या चूल्हा भीगा। घर को लौट, पैंट पहन, खींच-तान कर खड़े हो पल्थी मारकर बैठ जाता है और जैसे-तैसे दो कौर ठूंस कर नौकरी करने भागता है।

पहुंचने पर घड़ी देखकर चैन की सांस लेता है।

यह दिन की शुरुआत है।

पहले,—महापात्र के पास।

वे बैठे हैं,—काले जूते, थोड़ा मुंह खोले। गेरुवे रंग का फीता, लाल मौजे, पीली पैंट, फीकी पड़ी नीले रंग की कमीज, डोरिया कोट मूंगिया से रंग का, तीन रंग की लंबी टाई की गांठ कुछ तिरछी हो गयी है। चेहरे पर स्नो चिकचिक कर रही है, आंखों पर चौड़े फ्रेम का चश्मा, सिर में कंघी की नहीं, खड़े तिरछे कई भंगिमाओं में धूसर बाल, उनमें से सुगंधित तेल की तेज खुशबू निकल रही है।

टेबुल पर उद्वत भंगिमा में पैर टिके हैं, कुर्सी पर बैठ बगल में एक लिखने का पट्टा दबा है, खूब बड़े-बड़े अक्षर लिखते हुए हाथ चल रहा है। टेबुल पर जिधर जूते रखे हैं उधर एक गांठों वाली छड़ी, एक ओर बड़ा-सा पानदान, खुले मुंह वाले अखबारी ठोंगा भरा है गुंडी (पान का तंबाकू) से, तीन बोतल, एक में पिपर-मैंट, अर्कमैंथल, एक में कच्ची अजवायन और एक में लाल-लाल गोलियां,—पान का मीठा मसाला होगा।

बलिदत्त सोचता है प्रत्येक बड़ा आदमी एक-एक अवतार है, मुहूर्त की प्रतीक्षा कर सेवा करें तो फल मिलेगा। यह महापात्र अवतार है,—आदमी का अहं रूप, डैम केयर है। दुनिया की ओर जूते की नोक है। ज्ञानी है, हां, उपाधि इसका प्रमाण है, केवल पढ़ायी में ही नहीं, गुनायी में भी; ताश, वैद्यक, होम्योपैथी, ज्योतिष, वेदांत, नौकरी, बात-चीत, टैक्ट सब में। जो करने का मन में आया, उसमें तुरंत लग जाते हैं, उसमें धुरंधर हैं। पर उस ज्ञान का एक विशिष्ट रूप है, वह जगत की आंखों को एक बांकी छड़ी की तरह दिखता है।

एक में से आधी बीड़ी फूंककर बनु इस असमंजस पर एक लेक्चर झाड़ सकता है, "—आ-हा—हा, बेचारा बलिदत्त, भगवान की पूजा कर, वर पायेगा,हरिनाम ले, तर जायेगा, जल्दी स्वर्ग को उठ जायेगा, और महापात्र—महापात्र रटने पर क्या पायेगा?"

बलिदत्त हाथ भर की जीभ निकालता,—"तू लुटिया डुबोयेगा, बता; कौन सुनेगा; जानता है वह कितना ज्ञानी है—"

"तो क्या गजब हो गया, आ-हा-हा—ब्रह्मज्ञानी—"

"अरे, ज्ञान को वैसे चुटकी बजाकर उड़ा नहीं सकते, तू जब अड्डेबाजी कर रहा था, नहीं तो कैरम की गोटियां पीट रहा था, तब वे पढ़ते थे,—"

"तब उनकी किताब पढ़ने से तेरा मेरा कोई लाभ नहीं हुआ था, अब उनके ब्रह्मज्ञान से भी तेरा-मेरा कोई हानि-लाभ होने वाला नहीं है। दुनिया चाहती है इंसानियत, हम चाहते हैं स्नेह, सहानुभूति, और नहीं तो कम से कम भद्रता,—आदमी के प्रति आदमी जैसा व्यवहार, जहां वह नहीं है,—मारो गोली, डैम। अरे बलीवर्द दास! एक चीज के बारे में दस बातें रट लेने से आदमी ज्ञानी नहीं होता। या तेरे इन महापात्र की तरह अहंकार से पेट फुलाकर बड़ा कहाने से बड़ा नहीं बन जाता। ऐसे महापंडित जगत में सारे अनर्थ की जड़ होते हैं। और तू यहां

जिसे ज्ञान कहता है, वहां वह इतना गहरा नहीं है, वहां तो बस खाली ढोल पीट-पीट कर एक भांड है। फ्रायड की भाषा में कहें तो वह आदमी एक तरह का कड़ा एग्जिबिसनिस्ट है, झुककर देखो और भी मजा आयेगा, जा—"

अच्छा, इंफीरियरिटी कांप्लेक्स है,—बलिदत्त सोचता है। सोचता है,—किंतु अपनी पंडिताई में बनु एक बात की गलती करता है,—इतनी बड़ी दुनिया में जहां इतने प्रकार के आदमियों का अर्थात् छप्पन करोड़ प्राणियों का निवास है, वहां सब के साथ हमें मिल-जुल कर चलना होगा, वहां सब के व्यक्तित्व के बारे में सदा सचेत हो सब के रूप-गुण का विश्लेषण करके सिर हिलाता रहा तो आदमी दो कदम भी आगे नहीं बढ़ सकेगा।

महापात्र एग्जिबिसनिस्ट ! चाहे सेडिस्ट ही क्यों न हों,—जैसे भी इष्ट हों—इस में बलिदत्त का क्या आता-जाता है ?

ये, महापात्र जी बैठे हैं।

बलिदत्त को अंदर आये दो-तीन मिनट हो गये।

क्या महापात्र जी ने उसे देखा नहीं ? देखा तो होगा ही।

किंतु पुकारने तक किसी की स्थिति के प्रति सचेत होना उन की नीति के विरुद्ध है। क्योंकि उससे उनका आत्मसम्मान घटता है।

खड़े-खड़े बलिदत्त प्रतीक्षा करता है तो क्या, प्रतीक्षा चाहे सारी दुनिया करे, महापात्र काम कर रहे हैं। कार्य के गुरुभार के आगे व्यक्ति क्या चीज है ? व्यक्तित्व को वहां पूछता भी कौन है ?

फाइल दबाये बलिदत्त खड़ा है। महापात्र उसके अफसर नहीं हैं, न सही, हो तो सकते हैं। वह अपने को उसी आशा की दिलासा देता है, मुंह बंद कर पीठ के पीछे हाथ बांधे, कमर झुकाये किसी के आगे खड़े होना,—मानो अपने आंथ्रोपोएड पूर्वजों का उत्तरदायित्व अनुभव करना है, जो छोटी-सी पूंछ कटी थी वह धीरे-धीरे पास आ रही है,—अपना व्यक्तित्व भूल कर दूसरे के व्यक्तित्व में वह समय लीन हो जायेगा,—यह मानो किसी त्याग की साधना है। आशा से की जाती है,—क्योंकि उससे जुड़ा है उसका दानापानी का स्वप्न।

टेलीफोन बज उठा, महापात्र ने लपक कर फोन उठाया,—"मैं-मैं महापात्र,—हां, महापात्र बोल रहा हूं।···हां-हां-हूं-हूं—ठीक है—इडियट···"

अबकी बार बलिदत्त की ओर मुड़े—"हैलो मिस्टर दास—" बलिदत्त के

सारे व्यक्तित्व को प्लावित कर आनंद का ज्वार उठ आया है, चेहरे पर हंसी, अंग-अंग में अपूर्व भंगिमा।

"सर,—सर, ये, ले आया हूं—"

"हूं, लाये हैं ? इतनी जल्दी पूरा कर लिया ? वाह—"

"करता नहीं कैसे, सर, आपका जरूरी काम—!"

"ठीक है, ठीक है। हां जरूरी, एक दम अर्जेंट था बलिदत्त बाबू, बहुत बहुत धन्यवाद !"

महापात्र ने कागज ले लिये। बलिदत्त खड़ा रहा। फिर महापात्र का ध्यान काम में लग गया। बलिदत्त खड़ा रहा।

होंठों पर चिकचिक करती हंसी पोत कर बोले, —"अच्छा मिस्टर दास, हो सके तो आज शाम जरा आइये।"

महापात्र जी की अनकही प्रशंसा की मन ही मन कल्पना कर बलिदत्त कृत-कृत्य हो गया, सोचा,—शुभ से आज आरंभ हुआ, यही 'बोहनी' समझो।

इसके बाद दफ्तर का बड़ा बाबू। गोल-मटोल। प्रौढ़ सज्जन, मांसल शरीर को उम्र ने जगह-जगह से नोच-नोच कर लटका दिया है चेहरे की विशेषता के रूप में एक खूब मोटा थोबड़ा है, उसका निचला पाट हमेशा घूमने का आदी, बड़े-बड़े दांत, मोटे-मोटे कानों पर घने काले बाल। आंखों पर बिना कमानी का चश्मा डोर से बंधा है, जिसमें पीले और लाल रंग का सूत गुंथा है। मुंह थोड़ा खोल, कान लगा कर घात लगाने की तरह झुकते हैं और आस-पास की टेबुलों की ओर निगाह डालते हैं तो टेबुलों पर हड़कंप मच जाती है, टेबल पर हाथ चलते हैं फटाफट, कागज-पत्र फड़फड़ाने लगते हैं, कार्यलीन चेहरा टेबल पर झुका रहता है, मुरझाये कुई के फूल की तरह।

इस व्यक्तित्व के बल पर वे यहां बड़े बाबू हैं,—नहीं तो लोग कहते हैं उनका ऊपर तल्ला फांका है। पर उस से क्या आता जाता है ? चेहरे पर जरूरत के मुताबिक तत्परता, मुंह पर विज्ञ भंगिमा, सिर हिलाने के ढंग में एक तरह का पंडिताऊपन टपकता है, काम खुद न आता है तो दूसरे से पकड़ डरा-धमका कर करा लेने में माहिर,—ये क्या कम गुण हैं ?

चार आदमी घेरे बैठे हैं—हरि बाबू, कृष्ण बाबू, राम बाबू और गोपाल बाबू खड़े हैं, अभागे हरि बाबू आज डांट खा रहे हैं।

"देखो फिर गिन देता हूं, सुन लो,"—बड़े बाबू गरज रहे हैं, टेबल पर मझली अंगुली ठोक-ठोक कर गिन रहे हैं, "एक तो,—रोज तुम आते हो देर से ! दस बजे आने को कहा गया था ना ? और पधारे सवा-दस बजे,—लाट साहब, हैं न,—"

लाट साहब सवा दस-बजे आते हैं या नहीं सो किसी ने नहीं सोचा। पर लाट साहब कहने पर बात में महत्व आ जाता है कदम-कदम पर।

"मन ही मन लाट साहब हो गये, क्यों ? पर देखते हो यह कलम ? इसकी एक ही लकीर से तुम्हारा दानापानी उठ सकता है—"

सब गंभीर हैं, बड़े बाबू की बात में—हुंकारी भरनी ही पड़ेगी, पर एक भी शब्द मुंह खोल कर कहने की हिम्मत रहे। जब बड़े बाबू हों, तब वीर बाबू वीरत्व दिखायेंगे। सब चुप रह कर वीर बाबू को एड़ी से चोटी तक नीरस मुंह से देख रहे हैं, बाद में प्रकट करेंगे मौन सहानुभूति, वहां किया भी क्या जा सकता था ?

वीर बाबू व्याकुल हो गये,—"सर, स्त्री बीमार है, हाथों से रसोई बनाकर आना पड़ता है, फिर आजकल जो लकड़ी मिलती है, सर, एकदम गीली, फूंकते-फूंकते नाकों दम हो गया है,—दोनों बच्चों को कुछ बिना खिलाये-पिलाये आ जाता तो फिर वे दिन भर पें-पें करेंगे,—रहता हूं दो कोस पर, सर, सिर्फ दस-पंद्रह मिनट इधर-उधर।"

"अरे हटो, बहुत सुन चुका ये सब बातें, सुनते-सुनते बाल पक गये, हमारे और थोड़े ही घर-द्वार है, ये—बच्चों को दूध पिलाने के लिए कंपनी के काम में देर होती है तो फिर नौकरी छोड़ दो न ? घर में रह कर चूल्हा फूंकते रहो, स्त्री को पथ्य पका कर खिलाओ। बस बातें बनाना सीखा है, उपन्यास लिखो, अच्छा रहेगा।"

"झूठ नहीं कहता, स्त्री बीमार है, सर—"

"तो इसमें कंपनी को क्या ? हम क्या यहां अस्पताल खोल कर बैठे हैं ? या कोई अनाथाश्रम ? हैं, बताओ ?—रोज देर, रोज देर, आदमी सहे भी तो कितना ? हैं ? क्या कंपनी का पैसा तुम हराम का समझते हो। अच्छा, यह तो हुआ एक नंबर चार्ज, फिर लो—तुमने रिटर्न कितने दिन बकाया रखे हुए हैं ? आज तुम्हें भी ठंडा किये देता हूं।"

"सर, सर—केवल दो दिन ही तो हुए हैं,—आपने ही तो कहा था कि खुद

आप ठीक से जांच कर लेंगे तब रिटर्न लिखे जायेंगे।—"

"तो फिर शाम को या सुबह कहां चले गये ? हूं ?—"

सब एक-दूसरे का मुंह देखने लगे। अतः असली गुस्से का कारण अब समझ में आया, सब को खीझ आयी वीर बाबू की मूर्खता पर।

रुआंसे होकर वीर बाबू ने कहा—"सर मेरी स्त्री बीमार है, सुबह डाक्टर को बुलाने गया, फिर शाम को दवा लाने, इसके अलावा खुद रसोई का धंधा, नहीं तो, सर, बिना जाये रहता ? और क्या कहीं जा सकता हूं ? आप के पास न आता तो और कहां जाता ? आज जरूर आऊंगा, सर। धोबी को तागीद कर कपड़े जरूर ले जाऊंगा। आप क्या जानते नहीं, सर ?—आपके यहां ही नहीं जाऊंगा तो फिर दूसरी जगह भी कहां है मुझे ? बस, स्त्री की तबीयत खराब है, नहीं तो—"

'सर' का मतलब महाशय, पर वीर बाबू उसे इस तरह प्रयोग करते हैं,—मानो उस का अर्थ हो हुजूर, जहांपनाह और पता नहीं किस-किस स्तर तक। जो हो, —यह विनय, यह व्यवहार, यह आनुगत्य और अंत में धोबी,—इसके ऊपर और बात नहीं चल सकती। बड़े बाबू को बात घुमानी पड़ी,—

"जाओ, काम करो, चलो,—फिर मुझे कहना न पड़े समझ गये, खबरदार। स्त्री बीमार है। ओह, ऐसी एक फालतू कैफियत देने का साहस भी कैसे होता है तुम्हें ? औरतों के पल्लू के पीछे छुपकर आत्मरक्षा करने में लाज भी नहीं आती, तुम्हें ?"

वीर बाबू सिर लटकाये तिरछे-तिरछे देखते हुए, चल पड़े, मौका देख मजाक के लहजे में बलिदत्त ने कह दिया,—"उसकी ठहरी बचपन की आदत,—उधर गुरुजी ने आवाज लगायी होगी, इधर वह घर के कोने में दादी मां के पीछे,— आज बहुत पेट दुखता है मां, बहुत दुख रहा है, रहने दो आज—ओह।"

मुड़े बिना ही चल दिये वीर बाबू, मानो कुछ हुआ ही नहीं, वैसे भी क्या हुआ है, यह तो रोज की बात है, आदत पड़ गयी, मुंह पोंछ दो, काम खतम; उधर बलिदत्त की बात पर बड़े बाबू हंस पड़े।

बड़े बाबू हंस पड़े।

आस-पास के चार-पांच कर्मचारी भी हंस पड़े—जिसे जैसा आता है। उधर बलिदत्त ने चला रखा है मुर्गी की तरह, अंडे देने से पहले मुर्गी जैसे व्यस्त हो

जाती है और कुकड़ाती है,—"सी माइनर," रह-रह कर,—वैसी हार्दिक हंसी,—बड़े बाबू हंस रहे हैं इसलिए। कृष्ण बाबू का लंबा गर्दभ स्वर हें हें हें। हरि बाबू की गड़गड़ाती खांसी के बीच-बीच में काया, सेमीकॉलन की तरह एक-एक हिं-हिं राम बाबू की लहर बंद हो जाती है, वे सींकिया जवान हैं, दम लेकर फिर शुरू कर देते हैं। गोपाल बाबू का अंग प्रत्यंग हंस रहा है, टेबल के नीचे लंबी तोंद लदक रही है,—हें-हें-हें-हें। बड़े बाबू भी हंस रहे हैं—हें-हें।

और कतार की कतार लोग उस हंसी की पारी सम्हाल रहे हैं। हंसी की एक प्रतियोगिता, सब बड़े बाबू के मुंह की ओर देख रहे हैं, मानो उनकी हंसी बंद न होने तक और किसी की हंसी बंद नहीं होगी। डिसिप्लिन की बात है,—कोई मजाक है क्या ?

एंकटराव मुंह में रुमाल दबाये काम करता चला जा रहा है।

बड़े बाबू तैमूर लंग की तरह चिल्लाये,—"रहने दो, हंसी बंद करो, काम करो सब।"

थप्।

सब बंद। बस केवल कागज उलटने का फड़-फड़ का शब्द या फिर कागज पर कलम की चर्र-चर्र।

बड़े बाबू की टेबल पर से एक कागज नीचे खिसक गया। तुरंत झुक गये पांचों। गोपाल बाबू,—उनके लिए झुकना असंभव है, पर चेष्टा तो करनी ही पड़ेगी। दुबले-पतले राम बाबू कमर झुका कर टेबल के नीचे एकबार घूम रहे हैं, पर उनकी नजर कुछ कमजोर है। बलिदत्त छलांग लगा कर फर्श पर बैठ गया, उसे मिल गया, टेबल पर रख कर उस पर पत्थर रख दिया। बड़े बाबू ने उधर देखा तक नहीं। बड़े बाबू काम में बहुत व्यस्त हैं।

चारों खिसक कर चले गये हैं।

किंतु बलिदत्त ने अपनी पैंट की जेब से कोई चीज निकाली, टेबल के नीचे उसे देखा, धीरे-धीरे ऊपर उठाया।

एक पान। पीले वर्क में लिपटा है। ऊपर इत्र की खुशबू। प्रसिद्ध कुशिया पनवाड़ी के यहां से आया है।

वह खुद कभी पान नहीं खाता, पर कभी-कभार भेंट के लिए रखता है।

"ओह ! एनर्जी पिल ! अच्छा—," चक्की में पीसने की तरह थोबड़ी तेजी

से घूम रही है, बड़े बाबू ने पूछा,—"फिर, क्या हुआ ?"

"वही बात तो पूछने आया हूं, सर, सब आपके ही हाथ में है, आप की दया ! आप पर रहा, जो करें।"

"बात का अब तक फैसला नहीं हुआ," बड़े बाबू ने कहा, स्वर गंभीर है।

"हुआ नहीं, तो क्या, एक-दो दिन की ही तो बात है ?"

"सो तो ठीक।" बड़े बाबू लिखने में लीन हो गये।

छोटे बच्चे की तरह जरा लाड़-प्यार भरे स्वर में बलिदत्त ने कहा,—"सर-सर—क्या हुआ मेरा ? आप नहीं बतायेंगे तो मैं भूख हड़ताल कर दूंगा। बतायेंगे न सर ?"

बड़े बाबू मुस्करा पड़े। कुछ न कहने की तरह अन्यमनस्क से होकर कहने लगे, —"साहब ने तो अच्छा लिखा है। पर, और भी तो एकाध होंगे—।"

मन के अंदर खुशी होने पर भी एक गहरी सांस खींचकर बलिदत्त यह कहते-कहते उठ खड़ा हुआ—"आप हैं इसलिए मेरा सारा बल है, सर, नहीं तो ये लोग मुझे निगल जाते।" नमस्कार कर वह चल पड़ा। कुछ दूर जाकर फिर लौट आया और बड़े बाबू के कान के पास झुककर कहने लगा—"एक बात थी सर। आप क्या सोचेंगे, दुविधा हो रही है, अगर कुछ न कहें तो ?"

"क्या ?"

"सर, एंकटराव को आपने कुछ कहा था ?"

"किस बारे में ?"

"नहीं, सर, उस पर जरा कड़ाई कर,—माने कुछ गाली-वाली ?"

"धुत्—क्यों बात क्या हुई ? जरा खुलासा कर तो कहो ?"

बलिदत्त जरा सकपकाया, मानो बात गले तक आती है, उसके बाद नहीं, मानो बड़े बाबू के घर्षण से वह मर्माहत है, बहुत क्षुब्ध है, किंतु अप्रीतिकर बात जबान पर आती ही नहीं। सिर लटका अंगुली चबा कर एक चक्कर इधर-उधर घूम आया है वह। बड़े बाबू आश्चर्य में भर गये, काम अटका कर स्थिर हो उसकी ओर देख रहे हैं, माथे पर बल पड़ते हैं फिर सामान्य, इस तरह कई बार केवल प्रतीक्षा में।

"सर, मुझे बहुत बुरा लगा, देखिये तो सही लोगों का कैसा स्वभाव हो गया है। बिना किसी कारण के बुराई करना। कई तरह की बातें उड़ाते हैं, सिर्फ वह

अकेला ही नहीं, उसके घर में भी। कहता है मौका मिला तो साहब के सामने भी कहूंगा, एक्सपोज कर दूंगा, देखूंगा तब कौन बचाता है। अरे बाबा क्या है जो तू एक्सपोज कर देगा ? करेगा तो कर देना, इतना क्यों कहता-फिरता है ? लोग क्या सोचेंगे ? आपके पीछे इस तरह, और अभी पूछिये तो भला, छिः।" झुककर मानो पैरों पर ही गिर पड़ेगा, मानो विनय का अवतार है। और चरण-पादुका क्या पेड़ों पर लगती हैं ?

"हैं, एंकटराव ! तुम क्या कह रहे हो बलिदत्त।" थोथी आवाज में स्वत: बचपन की वह सहज और अभ्यस्त भाषा निकल पड़ी,—"तुम ठीक कहते हो ?"

"आहिस्ते, सर, जरा आहिस्ते। सुन लेगा तो वह मेरी जान खा जायेगा, ऐसे आदमी का उपाय और तरह का होता है। देखिये न, सब कैसे संदेह से देखने लगे, सर, आज शाम को आपके मकान पर आऊंगा, सारी बात बताऊंगा। एक्सपोज करेगा। बड़ा आया है एक्सपोज करने वाला—हुंः—"

"ओह ! कैसी दुनिया है— बेटा काला सांप—आस्तीन का सांप—" नमस्कार कर बलिदत्त चुपचाप सिर लटकाये निकल गया, उसके जाने की ओर बड़े बाबू का ध्यान ही नहीं गया। स्थिर होकर एक लय से देख रहे हैं सामने की टेबलों की कतार को।

वहीं तो चुपचाप विद्रोह सुलग रहा है।

उनके दानापानी पर आक्रमण किया है एंकटराव ने। क्यों। क्रमश: निचले होंठ पर चला गया दांतों का कसाव, जानवर की तरह एक शब्द कर बड़े बाबू उठ खड़े हुए, ड्रायर खोलकर चाबी का गुच्छा निकाला, बगल में लोहे की आलमारी खोलकर एक फाइल निकाली, उस पर कुछ लिखने बैठ गये, दांत भींच-भींच कर।

बलिदत्त एंकटराव के पास बैठा-बैठा देख रहा है। चल रहा है प्रेमालाप—

"ओह ! इतनी मेहनत कर क्यों मरे जा रहे हो, यार एंकटराव, कौन देखता है यहां, कौन बड़ाई करने वाला है ? देख तो रहे हो दुनिया किस तरह चल रही है। सिर्फ ठगना। जो जितना ठग सका। और तुम्हारे जैसे काम के लोग खाली घर और काम, काम और घर के अंदर ही डूबे हैं, सिर उठा कर भी नहीं देखते, कौन समझता है इस सच्ची मेहनत की महत्ता ? तुम जैसे हीरे का कौन पारखी है ? और कहीं होता तो अब तक क्या से क्या हो गया होता, और यहां। छोड़ो—"

एंकटराव हंस देता है और अपने छोटे फ्लास्क की तरफ संकेत कर कहता है, "कॉफी, कॉफी कावला ?—"

बलिदत्त नू-नक्कर करता रहा, यह भी उसकी एक आदत है, आधा कप कॉफी उसकी ओर बढ़ाते हुए एंकटराव ने कहा, "लो ना जरा-सा,—"

"ये देखो एंकटराव, बुड्ढा क्या कांफिडेंसियल आलमारी खोल रहा है, अरे फाइल भी खोल ली है, मतलब क्या है ?"

"भाई, तुम इधर देखो ना, कॉफी ठंडी हो जायेगी, किसी के मतलब से अपना क्या आता-जाता है ?"

खबर मिली चार बजे,—बलिदत्त की पदोन्नति हो गयी है। दफ्तर का दफ्तर उसे घेरे है, सबने बधाई दी—सूखे मुंह से, नीरस जबान से। एक की 'हुई है' कह कर मानो प्रत्येक सोच रहा है उसकी अपनी 'नहीं हुई,' 'हो सकती थी।' फिर भी दाना-पानी के घात-प्रतिघात में, यह बधाई देना कोई कम बात है, पान मांगना, नाश्ता मांगना, फीस्ट के लिए जिद करना। रहीम से लेकर रिचर्ड तक चपरासी भी बख्शीश मांग रहे हैं।

चिक-चिक करती आंखों से हंसता आकर खड़ा हो गया एंकटराव। हाथ बढ़ा कर बोला, "फल मिला गणना का ? अब तो दोष नहीं दोगे ?"

"दोष ! कैसा दोष भाई ?" बलिदत्त चौंक पड़ा।

"गणना में भूल होती तो कम दोष गाते-फिरते तुम? लो, सिगरेट तो लगाओ, काम तो हो गया, चलो अब चलें—"

कंपनी के दफ्तर का बड़ा फाटक पार कर बाहर आने के बाद बलिदत्त ने अनुभव किया उसमें कुछ परिवर्तन हो गया है। कदम बहुत हलके लग रहे हैं, चलने जैसा लगता ही नहीं। उड़ता-सा जान पड़ रहा है, छाती में हवा धंसी जा रही है, चारों ओर खेलने-कूदने की इच्छा होती है। उसके हृदय का जुलूस हवा में बहता जा रहा है। विचार बढ़ते जा रहे हैं दूर और दूर, उसके विचारों में सब कुछ संभव है, सब कुछ उसकी पहुंच के अंदर है।

उसकी पदोन्नति हुई है।

एक ही झटके में खट् से अपने बेलून की डोर तोड़ दी, अपने पारिपार्श्विक अवस्था के बंधन से मुक्त वह फर्र-फर्र उड़ता जा रहा है।

पदोन्नति क्या होती नहीं ? कुछ हुई है, कुछ हो जायेगी। पदोन्नति का निदान फिर क्या है ? उसमें क्या नहीं है ? पर बलिदत्त इस क्षण इतिहासकार नहीं है, दार्शनिक नहीं है, वैज्ञानिक नहीं है, वह एक सफल आदमी है, मोहमाया से खुश होता है।

उसकी सफलता की धारणा नौकरी में आबद्ध है, उसका स्थूल रूप पदोन्नति में है। खाली कुछ अधिक रुपये ? केवल धन लाभ का आनंद। मानो यह पदोन्नति उसके व्यक्तित्व की है। एंकटराव, केशव बाबू, मधु बाबू से वह बड़ा हो गया है। साधारण जीवन में वह उतना ही असाधारण हो गया है। इतने पर ही वह रुकेगा नहीं, और दूर बढ़ेगा, बढ़ता जायेगा, तब वह क्या होगा ? रास्ता दिखता नहीं, आंखों के आगे आशा है, चुपचाप चेहरे से हंसी की धार फूटती है, बलिदत्त दास उचक-उचक कर चल रहा है।

जब से याद है,—किसी से देह के जोर से इक्कीस न हो सका। उसके छोटे कद को देख लोग गर्दन झुका कर उसे देखते रहे हैं। छाती फुला कर चले हैं और उसी पर जोर झाड़ते रहे हैं। सब कुछ उसने सहा है, जान-बूझकर झगड़े-टंटे में नहीं गया, खेल-कसरत से वह बचकर रहा, किसी को किसी बात के लिए मना नहीं किया। प्रतिवाद नहीं किया। किंतु इस तारतम्य से वह एक गुण सीख सका है, बल से वह किसी का सामना नहीं कर सकता। निजत्व को झंडे की तरह उठा कर भागते-भागते गिर पड़ने की अपेक्षा पीठ देकर किनारे होकर उसने अपना कार्य किया है। आदमी को हाथ से न मरोड़ कर उसने सेवा से मरोड़ना सीखा है, विनय से और प्रशंसा से। स्कूल में वह गुड ब्वाय था, अच्छा लड़का था, मास्टरों को उससे अधिक भय नहीं हुआ, सदैव चुपके से बताता रहा किस लड़के ने क्या शैतानी की और दंड देने के उपाय में सहायक बना है। नौकरी में वह उसी उपाय से ऊपर वालों का प्रियपात्र हुआ है, भगवान ने उसके हाथ में अधिक शक्ति नहीं दी, न दें,—पर वह अपने को 'वाह-वाही' देता है। क्योंकि तरीके जो आते हैं उसे; बुद्धिर्यस्य बलं तस्य, खरगोश बनने से उसका काम चल जाता है।

कूटनीति से हाथों-हाथ परीक्षा का फल पाकर वह घर लौट रहा है। पुरानी

केंचुली छोड़ आया है दफ्तर में, अब वह सतेज है, सुंदर है, पर अपना सुंदर चेहरा अपने को नहीं मोहता। वह विह्वल है।

छाया घिर आयी है। घर पास ही है। सरोजिनी बैठी होगी। सरोजिनी को वह कहेगा। इसके बाद ? तेज कदमों से घर की ओर मुंह किये चल पड़ा।

दूर से वंशी की तान सुनाई पड़ रही है। अच्छी, खूब अच्छी। दिन ढलने पर मधुर वंशी, शांत संध्या है। इसके बाद चुपचाप अपने घर,—छोटे से आंगन में लंबे-लंबे भाजी के पौधे और उन पर तोरई की बिछी लता में खिल रहे होंगे फूल। पास आने पर गाय के कोठे से गायों का रंभाना, तुलसी के बिरवे के पास बत्ती जला कर गर्दन पर पल्लू रखे सिर टेक रही होगी उसकी पत्नी, उसी की मंगल कामना कर रही होगी। पूजा की कोठरी से घंटी और ढोल की आवाज। पड़ोस से संध्या-आरती के शब्द आ रहे हैं—"दीपं ज्योति परं ब्रह्म—"

दूर से वंशी स्वर, बहुत अच्छा, सुंदर लगता है।

पर यह कैसी छवि है ? यह तो गांव की है ? न होने की बात, किताबों में पढ़ने की बातें हैं। शायद सिनेमा में दिखायी जाती हैं ?—सिनेमा वह देखता नहीं। मन में गढ़ा है अद्‌भुत खयाल। हो सकता है वह प्यास का पानी हो, घुल रहे मशीनी-जीवन का आर्त्तनाद।

कितनी बेकार बात। बलिदत्त ने देखा उस ओर वह कालेज छात्र झरोखे के पास वंशी फूंक रहा है। इधर अपने घर के झरोखे में गाल पर हाथ दिये उसकी पत्नी सरोजिनी बैठी है। " 'हूं'—छोकरा—," गरज उठा वह मन-ही-मन—बेवकूफ छोकरा,—बेवकूफ छोकरा—, परंतु उसकी इस वंशी का सरोजिनी के यहां बैठने से संबंध क्या है ? पर सरोजिनी तो यहां बैठकर उसकी ही प्रतीक्षा करती है। आह, बेचारी। कितना सूना-सूना लगता होगा उसे। फिर भी मन नहीं मानता। लगता है जैसे उस झरोखे का वंशी बजाने वाला छोकरा और इस झरोखे की सरोजिनी एक ही चित्र के दो पहलू हैं।

क्रोध में शरीर कांपता है, सांस तेज हो जाती है। बलिदत्त ने अपने घर की कुंडी खटखटायी। सरोजिनी ने किवाड़ खोल दिये। अपने गुस्से में घर की आधी दूर जाकर फिर मुड़कर देखा सरोजिनी को। पदोन्नति की बात की घोषणा करना वह भूल गया। सरोजिनी की पीठ दिख रही है, सरोजिनी धीरे-धीरे किवाड़ बंद कर रही है। विराटकाय है सरोजिनी की पीठ, दीवार के एक टुकड़े सरीखी। वहां

उसके विकृत मन की बर्बर चिंता अंदर नहीं भेदती, पिछड़ जाती है। वंशी की लहर ऊंची होती है, देखते-देखते बरस पड़ती है, इसके बाद हवा में धूल की तरह उड़ रही है हाहाकार, जंतु की गें गें।

सरोजिनी ने मुड़कर देखा बलिदत्त गंभीर खड़ा है, सिर लटकाये है, होंठ भींचे हैं; अनुमान किया शायद पति वंशी की धुन पर मुग्ध है, बोली, "बहुत सुंदर बज रही है, क्यों नहीं ? कितनी उदास ? ग्वाला कहां से बजाना जानेगा इस तरह ? आह ! बहुत मीठी—"

"ऐं, क्या बोली ?" इतनी देर बाद गुस्से को रास्ता मिला, "बहुत अच्छा बजाता है न, बहुत अच्छा बजाता है, स्साला, अच्छी शैतानी है, आदमी कुछ न कहे तो शैतानी बढ़ती ही जाती है, भले आदमी इस बस्ती में अब···मुजरा करवायेंगे। ठहर मैं चखाता हूं तुझे मजा,"—चिल्लाया बलिदत्त दृढ़ प्रतिज्ञा के स्वर में। आगे तमक गया दरवाजे तक। आतंक से कंधा पकड़ कर सरोजिनी बोली, "छि यह क्या कर रहे हो ? कोई कुछ करे, इससे हमारा क्या आता-जाता है ?"

कंधे पर सरोजिनी की वज्रमुष्टि, सिर पर सरोजिनी की छाती और उस पर उसका चेहरा, छटपटा कर बलिदत्त बड़बड़ाया, "छोड़, रास्ता छोड़।"

छोड़, रास्ता छोड़,—उसके साथ वह उग्रमूर्ति, कभी देखे किसी अभिनय से एक जरा-सा अंश। गोपन में जीवन को प्रभावित करती है कला, उस पर एक और हुंकार, पहरेदार, पहरेदार।

"अरी, मां, किधर जाओगे, तुम क्यों हो रहे हो इस तरह ?"

"देखो तो सही, वह वंशी बजाने वाला छोकरा, शैतान कहीं का, उसे पहले ठीक कर दूं।"

वह जोर से चीखा था। उस ओर वंशी की आवाज घप् से बंद हो गयी। बलिदत्त की कंपकंपी सरोजिनी तक पहुंच गयी है, किवाड़ों पर पीठ सटा कर और बलिदत्त को पकड़ कर सरोजिनी बोली, "कहां जाओगे ? क्या हुआ ? तुम्हें हो क्या गया है ? आंखें तुम्हारी कलिंग पक्षी की तरह रंगीन-सी, चेहरे पर पानी नहीं, क्यों ऐसे हो रहे हो ? किधर जाओगे ? फौजदारी करने ? कर सकोगे तुम ? बताओ, क्यों इस तरह उतावले हो रहे हो ? रोज तो शांत रहते हो, हाथापाई कर सकोगे ? जा सकते हो तो जाओ जरा—"

ऐं क्या कहा ? कर सकोगे ? सख्त बात पैने कांटे की तरह किसी ने जैसे हथौड़ी से ठोंक दी उसके सिर के अंदर। ठंडा, सब ठंडा हो गया। बात भी ठंडी, लोहा भी ठंडा, कलेजा और भी ठंडा। सोचने पर याद आ जाता है,—तराशा हुआ-सा गदराया जवान छोकरा, भालू की-सी छाती है उसकी। वह कसरत कर रहा है। जैसे उत्कल भीम पद्मचरण का छोटा भाई हो। वह फुटबाल खेलता है, कालेज में पढ़ता है, उस पर बंधन नहीं। और उस चलते-फिरते पत्थर के सामने यह बलिदत्त—।

देह से गरम-गरम पसीना फूट रहा है। कोट के बटन खोलते हुए हाकिमी कायदे में बोला, "ओह सरोज, एक्सक्यूज मी, माइ नर्व्स आर जंपिंग—याने मेरी नसें कूद रही हैं, शायद देह बिगड़ गयी है। दफ्तर में काम का बोझ, काम करते-करते सिर भन्ना जाता है और फिर घर आते ही कान में ये पें-पें देखकर तालू गरम हो गया। फिर घर में आने पर आदमी जरा चैन से बैठे और इधर पास से इसने छोड़ी है पें-पें। भला वंशी बजाना भी आता तुझे, तो तू बजाता हम सुनते। ये क्या इस तरह चिल्ला रहा है मानो चील-कौवे एक साथ कांय-भांय कर रहे हैं—ईडियट।"

"बजाये वह अपना, हम इसके लिये क्यों झगड़ें, ठहरो, मैं खबर भेजती हूं नीरोद बाबू के यहां, देखेंगे वह और कैसे बजाता है ?"

"हूं, वे जैसे तुम्हारी बात की प्रतीक्षा में बैठे हैं—"

"मैं अपने नाम से क्यों कहूंगी, तुम्हारे नाम से ही भेजूंगी,—तुम्हारा नाम लेने पर भी नहीं सुनेंगे, कोई मजाक है ? कहलवा दूंगी कि यह सब सुनने पर सिर दर्द करने लगता है। फिर किसी के घर में अकेला बच्चा हो तो वंशी सुनकर मां खाना भी नहीं खायेगी। बजाने की इच्छा है तो जा बाबू मैदान में जाओ।"

"हां। ठीक, बिलकुल ठीक—"

"आओ तो, तुम खाओगे।"

दो मिनट में सरोजनी ने नाश्ता लाकर रख दिया। खाने के लिए बैठते-बैठते बलिदत्त बोला, "ओह। काम के बोझ से सिर ठिकाने रखना बहुत मुश्किल—" खाते-खाते एक छोटे लेक्चर का सूत्रपात करते हुए शुरू किया, "जानती हो सरोज, मजदूरों की सब की यही दुर्दशा है, थककर घर लौटते हैं, सब गुस्सा उतरता है घर में। सांझ के समय झगड़ा-फसाद, और अशांति। क्या करें, काम का यही तो लक्षण

है। मिजाज बिगड़ जाता है—"

सरोजनी सिर लटकाये बैठी है, तूफान को वह इतने सहज नहीं टाल सकी, मुंह थम गया है, मेघ की तरह।

बातों के सहारे बलिदत्त खाना निगल रहा है, बारह आना शेष हो चुका। पेट की भूख बुझ आयी। देह में शांति भर आयी। हठात् उसे खयाल आया—कितनी बड़ी बात वह भूल गया है। कौतूहल-सा लगा। फांय से हंसकर बोला,—"जानती हो सरोज, आज दफ्तर में क्या हुआ। सिर्फ मेरा ही प्रोमोशन हुआ।"

सरोजिनी चमक उठी। क्षण भर में उसके चेहरे से मेघ हट गये और तरल धूप खिल गयी। हंसकर झूमती हुई खड़ी होकर बोली, "सच। अब तक बताया भी नहीं। इतने भुलक्कड़ हो गये तुम।"

पिछली बात भूत होकर उड़ गयी, वस्तुवादी दुनिया का जादुई डंडा मोहिनी फेर गया, दो हृदय, झुक आये एक दूसरे के पास, दोनों एक ही छंद में धड़कने लगे।

उस छंद का नाम शार्दूलविक्रीड़ित छंद नही, उसका नाम है नौकरी वाले का प्रमोशन। दो चिड़ियां एक दूसरे के पास हैं—चिड़ा-चिड़ी। चिड़ी चाहे जरा बड़ी हो पर उसका नाम चिड़ा नहीं हो सकता। नौकरी वाले का प्रमोशन। चिड़े ने तिनके ला-लाकर घोंसला बना दिया है। चिड़ी अंडे देगी। इसके बाद नया घर, चिड़ा-चिड़ी औरअंडे।

नौकरी वाले का प्रमोशन।

सरोजिनी ने पान आगे कर दिया, बलिदत्त ने पान का बीड़ा उलटा मुंह में लेकर मुंह आगे सरोजिनी के मुंह की ओर कर दिया, सरोजिनी ने हंसते-हंसते दांत से काट लिया।

कहा—"इसके बाद ?"

उसके चेहरे की भंगिमा को प्रमोशन के बारे में प्रश्नवाची समझ. अर्थ करता हुआ बलिदत्त बोल गया, "इसके बाद और क्या ? शायद दो रोटी पेट भर खाने को मिलें, क्योंकि तनखा बढ़ गयी पचहत्तर से डेढ़ सौ। कल से एक चपरासी मिलेगा। मकान तो जरूर बदलेगा, इस तरह के सी टाइप क्वार्टर में तो हम रह नहीं सकेंगे। वह जो हो, इस प्रमोशन का लाभ क्या होगा जानती हो ? समझ लो अब नाबालिगपना कट गया, हम अब बाबू नहीं रहे। छोटे हों या बड़े हों, हम भी

अफसर हैं। समझी, अब हम भी अफसर हो गये हैं। काम में लगे रहे तो हम भी महापात्र बनेंगे, हम भी साहब होंगे, समझी ? सिर्फ कुछ दिन परिश्रम, और परिश्रम के साथ जरा समझ,—लोगों का मन खींचने का टैक्ट—टैक्ट का मतलब जानती हो ? अब तुम्हें कैसे बताऊं हमारी भाषा में टैक्ट का पर्यायवाची दूसरा कोई शब्द नहीं है और हमें टैक्ट आता नहीं। इसलिए अन्य देशों के लोग टैक्ट के बल पर ऊपर वालों को प्लीज कर बाजी मार ले जाते हैं और हमारे लोग मुंह बाये रह जाते हैं। बैठे रहो बाबा, बस मुंह बाये। किससे कैसे काम हासिल होगा, बल-छल-कौशल—कैसे, कहां कैसी बात कही जायेगी। पानी पर भी मलाई जमा दे, जीते आदमी की चमडी उतार ले और वह सिर्फ देखता रह जाय, इसी का नाम तो है—टैक्ट। देखा, कितनी जल्दी हुआ प्रमोशन। राजपूत समझते थे टैक्ट, इसीलिए तो मुगल राज में भी शासन करते थे। राजपूत, वह तो इतिहास की बात है। अब औरों को देख—"

अपने भाषण पर मुग्ध हो बलिदत्त गप्पें हांकता गया, यह मानो एक नशा है, नशे में नशा चढ़ता है। सरोजिनी चुप होकर सुनती जा रही है। बात हो या बेबात बलिदत्त एक नये व्यक्तित्व का अवतार दिख रहा है। उसकी आंखें सरोजिनी की आंखों को बांधे हैं। कहा,—"मैं कहता तो तुम्हें विश्वास नहीं आता, अब देख लिया, यही क्या और भी देखोगी, अभी तो आरंभ ही हुआ है। पर हमारा असल अभाव क्या है। नौकरी में औरतों की धेले भर की भी मदद नहीं है। तुम चूल्हा-चक्की जानती हो, मैं मना नहीं करता, पर वह तो पांच रुपये का रसोइया भी कर सकता है,—याने, तुम बुरा न मानना,—नौकरी में तुम्हारी हमें मदद क्या है ?"

"शास्त्र में है कि स्त्री सहधर्मिणी होती है, धर्म का मतलब है वृत्ति। पर तुम्हारी और हमारी वृत्ति अलग-अलग है। ये औरों की बात देखो, कंपनी के जितने अफसर हैं उनकी फारवर्ड स्त्रियां हैं, क्लब में मौका देखकर ऊपर वालों से एक दो बात कही और इधर स्वामी का प्रमोशन। कोई गाना जानती है, तो कोई नाचना; कोई खेलना, तो कोई बात करना। इधर बातों ही बातों में काम बनाया और छू। कोई जानता भी है ? अपना कोई नुकसान होता है, साल भर में स्वामी के चार प्रमोशन। लोग कहां से कहां जा पहुंचते हैं, कल जो लोहा ढलाई करता था या करघा चलाता था, आज वह बड़ा अफसर बना फिरता है और हमारी गर्दन में झूलता है।"

बलिदत्त का व्यक्तित्व बढ़ा है, सरोजिनी का घटा है। अपने को वाह्-वाही देते-देते स्त्री को काटकर पत्थर बनाकर रख दिया। सरोजिनी चुप बैठी है। कुछ देर सोचकर बोली,—"लोग करते हैं, कहते हो, मैं सुन रही हूं। स्वामी चाकरी करें और स्त्रियां चाकरानी बनें, तो फिर घर कहां रहा ? किसके लिए ? घर की फिर जरूरत भी क्या रही ? ठीक है, पर सब सभी काम नहीं कर सकते। जो जैसे स्वभाव का है, मैं नहीं कर सकती, तो दोष देने से क्या मैं कर सकूंगी ?"

"धतेरे की, अच्छा समझी, इसे ही तो कहते हैं ओछी बुद्धि, वांटिंग इन टैक्ट। किसने तुम्हें कहा कि नहीं कर सकोगी ? सब सभी काम कर सकते हैं, तुम भी कर सकती हो मन चाहता हो, तब न।"

"मुझे कुछ नहीं चाहिए, मैं कुछ नहीं कर सकती।"

"अच्छा तुम शुरू तो करो, सी ए टी—कैट बी ए टी—बैट। दो दिन रटो तो सही। देना जरा चार बीड़े पान के, घूम आऊं।"

सरोजिनी ने पान दिये।

बलिदत्त बाहर निकल गया।

पान चबाते-चबाते अंधेरे में चला जा रहा है बलिदत्त। चुपचाप, मशीन के साथ-साथ चिंता घूम रही है।

अंधेरे में उसके लिए रोशनी की सुरंग खुलती जा रही है, सीधा रास्ता, दूर झिलमिलाती रोशनी, इस रास्ते का अंत नहीं है। और एक तरफ अंधेरा है, बलिदत्त आगे चलेगा। कितनी दूर ? जितना भी हो, बलिदत्त आगे ही जायेगा। भाग्य ! हुंह ! सब अपने हाथों की करामात है, मूर्ख ही प्रतीक्षा करता है भाग्य की। अफसर। यह तो सिर्फ शुरुआत है।

इसके बाद ! स्पष्ट दिख रहा है उसे अपना भविष्य। किस जैसा होगा ? महापात्र, महांति, सिंह, त्रिपाठी, दास, दंडसेना, मिश्र, भंगराज, जानसन, मिल, असंख्यों आदमी और उनके असंख्य नाम, फिर भी कम, कहां दस हजार में एक। उनका जीवन स्वतंत्र है और उनकी श्रेणियां स्वतंत्र हैं।

प्रणाम पा-पाकर पत्थर भी देवता होकर यदि भक्ति ग्रहण कर सकता है, तो फिर सलाम पाते-पाते आदमी में दृढ़ता भी संचार कर सकती है। चेहरे पर क्षमता की दृप्त भंगिमा, स्वर में दृढ़ता, चाल भी कहती जाय कि मेरी क्षमता है, मैं साधारण नहीं हूं। लोग उनके हवा में गंध से ही उनको पहचान कर अपने आप

दूर हट जाते हैं। रास्ते के किनारे पेड़ के नीचे दूर से देखकर आपस में बात-चीत कर लेते हैं। व्यक्तिगत जीवन तो मन की इच्छा से है। दुनिया की साधारण नीति से उसे कोई मानने नहीं जाता। वे उस माप से बाहर जो ठहरे।

उसी श्रेणी में प्रविष्ट हुआ है वह—बलिदत्त दास। और अब क्या परवाह है?

आज पेड़ की डाली पर चढ़कर नीचे की ओर निरापद मुस्कराया जा सकता है, ऊंचे से देखा जा सकता है अपना किरानी जीवन। उसके प्रति घृणा होती है, अधिक घृणा होती है क्योंकि वह अपना अतीत जो ठहरा। उस श्रेणी के प्रति उनके मन में अब जरा-सी भी सहानुभूति नहीं है, वह उन्हें नचायेगा, कस कर काम लेगा, उस श्रेणी के सारे फिसाद वह जानता है, पर कभी पता न चलने देगा, कि खुद वह उसी दल का रहा है। फटे-पुराने लिहाफ की तरह अतीत चला गया तो उसे जाने दो।

अब वह अफसर है।

वह बल का अवतार है, वायु का न सही, कार्यक्षमता का अवतार तो है, परिश्रम का घोड़ा, टैक्ट में धुरंधर, बुद्धि में गजानन, श्रेणी में अतिमानव, न लज्जा, न संकोच, न माया न ममता, कठोर दायित्व के लिए उसकी शक्ति निष्ठुर है, सीधा अपना रास्ता काटता हुआ आगे बढ़ जायेगा, निदतु नीति निपुणाः।

लोग उसके पीछे-पीछे चलेंगे, उसके सामने सिर झुकायेंगे, खड़े होकर उसकी प्रतीक्षा करेंगे। भेंट करने के लिए अपना नाम लिख कर चिट भेजेंगे, बाहर धूल चाटते फिरेंगे, और मुलाकात का समय देगा सबको एक-एक मिनट। बार-बार घड़ी देखकर पूछेगा, "और कुछ?"

उसका मन फूल उठता है, वह अकेला है, साथी-दोस्त कोई नहीं।

इच्छा हुई एक सिगरेट पी जाय। पान की दुकान पर अटकता है, "ऐ एक कैप्स्टेन।" पान वाला एक बीड़ा पान का लगा रहा है। फिर ग्राहकों के साथ खेल की चर्चा चल रही है कोई नया खिलाड़ी उतरा है—फरीद मियां, उसी की चर्चा हो रही है। पान लगाने में जरा देर हो रही है।

"ऐ, एक कैप्स्टैन—"

चार बार हांक लगायी तब जाकर पान वाले ने 'हां देता हूं' कह कर और ग्राहकों से पूछा,—"बाबू आपका क्या? कत्थेवाला मीठा या जर्दा? देशी जर्दा चाहिए?" फिर फरीद मियां की बात। झूलती आग की रस्सी से कोई बीड़ी

सुलगा रहा था, सिर पर रुमाल बांधे है, हड्डियों वाला चेहरा जिस पर खुरदरे कांटे, ठुड्डी पर थोड़ी-सी दाढ़ी, फटी मैली कमीज पर काली फत्तुरी, कमर में फीता। और टांगों में कारी लगा मैला पजामा। बात उकसा देता है वह,—"अरे, फरीद मियां से उसका चाचा समद मियां और भी जोरदार खेलता था, चोट खाकर घुटना जख्मी हो गया, नहीं तो—?" बीड़ी भी सहज जलना नहीं चाहती और मुंह पर फरीद मियां। बलिदत्त के 'ए कैप्स्टैन देना' को अपनी बात में डुबो कर ज्वार की तरह पान वाले की फरीद मियां के पक्ष में वकालत बढ़ती जा रही है। अनजान खिलाड़ी फरीद मियां पान वाले का एक अमिट आदर्श रूप है, उसके लिए वह क्या नहीं कर सकता ? ऐसी लड़ाई चलती हैं कि खेल के मैदान में देखने वाले आपस में लहू-लुहान।

वह किसी से डरता है ? फरीद मियां अच्छा खेलता है, अतः उसके लिए दस बात जरूर कहेगा। कर्त्तव्य का तगाजा जो ठहरा।

"क्यों, सिगरेट नहीं मिलेगी ?" अंत से चिढ़कर बलिदत्त ने पूछा, किंतु उसके बड़प्पन का यहां कोई मूल्य नहीं, यहां फरीदा का मूल्य अधिक है। पान वाले ने अनुकंपा से देखा बाबू बहुत देर से खड़ा है। सिगरेट बढ़ाकर बोला, "तुम्हीं बताओ तो भला, आज गये थे खेल देखने ? कौन खिलाड़ी तुम्हें बढ़िया खेलता नजर आया, जरा बोलो तो ?"

"मैं नहीं गया।"

"ओह।" घटिया आदमी। मामूली सा ग्राहक ही तो ठहरा। पान वाला औरों को जिरह करने में लग गया। बलिदत्त ने टोका, "माचिस देना, जरा सिगरेट जला लूं।"

"वो देखो उधर रस्सी में आग है।"

"दियासलाई नहीं है ?"

"बहुत हैं, खरीदोगे ? ये लो।"

"नहीं रहने दो।"

सिगरेट खरीदकर आत्ममर्यादा का एक बड़ा भाग तो बेच दिया, और जरा-सा बचा है। जाने दो उतना। रस्सी के सिरे पर आग है सचमुच, किंतु रस्सी के सिरे तक सिगरेट पहुंच नहीं पाती है। रस्सी हिल जाती है, नीचे अनुसरण नहीं कर पाती। खींचकर लगाते-लगाते नेपथ्य में एक कोलाहल—"अरे लग गयी।"

समता के मंदिर इस शहरी पान वाले की दुकान उसके सामंती मन को पासंग में भी नहीं डालती।

आहत मन से फिर चल पड़ा है। फिर वही चिंता की किसी ने नहीं समझा उसे, किसी ने उसे उचित सम्मान नहीं दिया न पत्नी ने, न जनसाधारण ने। ठीक ही तो है गांव की जोगी-जोगना,—इस देश में वीर पूजा नहीं है। अभागा देश ! दुर्भाग्य—कौन बैठा है किसी की भलाई-बुराई की प्रतीक्षा में। आगे आना ही होगा, वह स्टीम रोलर है, वह अफसर है, अपने-आप लोग जानेंगे, अपने-आप पास आकर खुशामद करेंगे, तब ? हूं,—तब देखूंगा।

उत्साह तेज हो रहा है, नया-नया तैयार अफसर चल रहा है। इस तरह रास्ते में छाती फुलाकर चलने पर जैसे उत्साह का मूर्त्तरूप लग रहा है। फिर वे अंधेरे में मिल जाते हैं। अतीत में कितने राजा, कितने शासक, कितने खंडाधीश, विषयी श्रेणीक आमात्य, बूढ़े मंत्री, महापात्र हो गये। वे भी तो नये उत्साह का रूप लिये रास्ते में चलते रहे होंगे, सोचते होंगे मिट्टी पर मुहर की छाप मारते चलें, मुट्ठी कसे होंगे, पैरों से रोंदते चले होंगे। समय के बहाव में वह एक मशीन है, जंग खा गया तो मिट्टी हो जायेगा। और मिट्टी में न उत्साह है और न तेज। पर बलिदत्त विशिष्टता खोज रहा है। उसकी दृष्टि ऊपर आकाश की ओर नहीं है, और न नीचे की ओर। मन के गहरे स्टीम रोलर की धारणा लिये तेजी से आगे चला जा रहा है।

किसी के मुंह से फूंका गया साबुन के झागों से बना बुलबुले सरीखा उसका छोटा-सा 'मैं' अंधेरे में प्रतिष्ठा खोजता जा रहा है। फूला है, फटा नहीं।

वह चल रहा है।

आदिम मन में जब विश्वास आता है कि अपनी शक्ति बढ़ गयी है, तब जंतु अनेक तरीकों से अपनी उस शक्ति को परख देखता है। उस पर परखता है जिसे वह दुर्बल, निरीह समझता है, जिसके बारे में सोचता है कि वह कोई बाधा नहीं देगा। छोटा बच्चा जरा-जरा से जंतुओं को पीटता है। पेंसिल और साड़ी को दांतों से काट कर दांतों का जोर परखता है। मोटा सांड मोटे पेड़ में सींग मारता है। आधी-फूटी दीवार के सहारे पीठ रगड़ता है। फासिस्ट देश पड़ोसी छोटे देश पर चढ़ाई करता है।

परखने का यह प्रचंड नशा ही तो बलिदत्त दास को खींच कर ले जा रहा है

अपने अतीत के सहकर्मी बनु के दरवाजे की ओर, क्योंकि बलिदत्त जानता है कि दानापानी के युद्ध में बनु बहुत पिछड़ा हुआ पड़ा है। बनु हारा हुआ है, वह स्वयं जीता हुआ है। वहीं आज वह कहेगा, वह आज से अफसर है। थोड़ा मुस्करा कर सदा की खुली आराम-कुर्सी खींच कर बैठेगा और संभाषण करते हुए पूछेगा, "क्यों रे, बनु, मजे में तो है ? सब ठीक-ठाक तो चल रहा है ?" संभव हुआ तो बनु को दो बातें सदुपदेश की कहेगा, उसे उपदेश देना अच्छा लगता है यदि श्रोता राजी हो जाय। वही उसका दैनंदिन का सामाजिक कार्य है, समाज को उसका अमूल्य दान है, बिना कुछ किये परोपकार। परोपकार स्वर्गीय। वह अक्ल बांटता है।

अतः वह शायद कहेगा, "इस तरह की झगड़ालू बुद्धि छोड़ दे बनु, जिधर वर्षा छाता उधर ही करना चाहिए नहीं तो इस तरह कितने दिन चलोगे ?" 'भाई' शब्द भी तो जोड़ना ही पड़ेगा, सहानुभूति प्रकट करते समय 'भाई' शब्द भी तो उच्चारण करते समय गले के ऊपर भाप सी उठती है, सब साफ और तरल कर देता है वह शब्द ग्लिसरीन एनिमा की तरह, "तू भाई नरम पड़, तुझ में बुद्धि है, विद्या है; पार्टस हैं पर उन्हें लगाना नहीं जानता, उन्हें जोड़ नहीं पाता। कर के देख, महीना दो महीना फिर कहना मुझे।"

और किताबों के रास्ते वह बनु के मन पर आक्रमण करता है। क्योंकि बनु किताबें पढ़ता है, किताबों के रास्ते दुनिया को देखता है यह मूर्ख, किंतु किताबों में क्या धरा है, सफलता के लिए तो ढेर की ढेर किताबें लिखी गयी हैं।

"किताब पढ़ेगा, भाई बनु? किताब भी है असल किताब—हाव टू विन फ्रेंड्स, ऊपर वालों के वशीकरण की विद्या। नहीं तो बैटेन ओकिमुरा की किताब—सक्सेस। यह एक बात है, उसे पलट कर देख, पहले। सूत्र यही है कि संसार में सभी लोग अपने 'मैं' को सामने रख कर सोचते हैं कि हमारा मत ठीक है। उन्हें मना कर प्रतिवाद करोगे तो अपमान समझते हैं, अपने मत को और जोर से जकड़ कर पकड़ते हैं। अतः वहां उपाय क्या है ? उपाय यही है कि शुरू में ही उनकी बात में हामी भर लो। जी हां, आप जो कह रहे हैं वह एकदम ठीक है। उससे अच्छी बात और कौन कह सकेगा ? पर उसी बात को यों कहते तो कैसा रहता ? वैसे आप की मर्जी। इस तरह करने पर 'आप' कहते 'ये इस तरह', देखिये आपकी मर्जी।

माने सब में कहना पड़ेगा "आप···आप कर रहे हैं···आप सोच रहे हैं, 'मैं'

नहीं। यहां पर 'मैं' का बिलकुल स्थान नहीं है। स्वयं 'आप' अपने मत को 'आपका मत' मान कर और दृढ़ता के साथ जारी कर देंगे। होगी 'मेरी' बात, वही 'आप' करेंगे, 'मेरी' बात रहेगी। 'आप' अपनी बात का खुद प्रतिवाद कर कहेंगे, अरे हां यह तो बहुत ठीक है। तो मैं फिर वैसे क्यों सोच रहा था ?" तभी सोचने का कारण शत्रु पर उंडेल देना होगा। उसने भूल समझायी थी, आप गलत रास्ते जा रहे थे। इसके बाद मूर्ख 'आप' अपने पहले वाले मत का दायित्व डाल देंगे अपने शत्रु पर। खाली मेरा मत ही रहा हो सो बात नहीं, एक शत्रु का पत्ता भी कट गया, क्यों, कैसा साहस है "रे बनु जो भी ऊपर उठते हैं सब यही नीति पकड़ते हैं। और तू नहीं पकड़ेगा ?"

कल्पना कर रहा है बनु का गंभीर चेहरा, चुपचाप बीड़ी जली जा रही है। हाय रे बनु !

आज बलिदत्त सहानुभूति उंडेल देगा, क्योंकि उसका प्रमोशन हुआ है। सहृदय व्यक्तित्व की आड़ में उसका छोटा सा घड़ा भर गया···पूरा भर गया है। सहानुभूति में बंधु की आर्थिक दुर्दशा के लिए दो बूंद आंसू भी ढाल सकता है। फिर दूने उत्साह से वहां जपानी बैरेन ओकिमूरा और अमेरिकन कार्नेगी उतरेंगे। बलिदत्त बकता चला जायेगा, बनु की चाय गरम है, बनु की बीड़ी तेज है, शायद वह एक सिगरेट रोल कर थूक लगा कर बढ़ा दे, टिन भरी थी।

वह बकता जायेगा।

अभी तो संध्या शुरू ही हुई है।

यही—बनु का मकान है। सब कुछ परिचित, पहचानी हुई सुगंध, जिसके स्पर्श भर से पुरानी स्मृति ताजा हो जाती है। खुले दरवाजे पर चमेली की मोटी लता, रोशनी में झलमलाती छोटी सी कोठरी अंधेरे रास्ते पर अपनी किरणें फेंक रही है। दूसरी ओर विराट प्रासाद है, सड़क आगंतुकों के लिए मोटर गैरेज बन गयी है, गाड़ियों के बीच हो-होकर आना-जाना पड़ता है।

बनु के घर में कदम पड़ते हैं, कर्कश हाऊं-हाऊं करती काली कुतिया आक्रमण

करने को आकर हाजिर। "अरे रे, टामी ! चु···चु—"

"भोः भोः भोः भोः,—कस्त्वम् भोः—"

काली कुतिया पूंछ हिला कर रास्ता छोड़ देती है, सूंघ-सूंघ कर पीछे से दौड़ती है, आज यह कैसी विचित्र बात! कूकर तो गंध से ही आदमी को पहचान लेता है, काली कुतिया की गंध स्नायु में आज बलिदत्त अनजान, लग रहा है, अजीब बात है।

बलिदत्त ने प्रत्याक्रमण के लिए ईंट उठायी, काली कुतिया ने तनिक हट कर जोर की चीख मारी, खींस निपोर कर गाउं-गाउं करने लगी। उसकी लंबी चीख कूकर की बोली में सहायता मांगने के लिए है, वह काफी हैसियतवाली कुतिया है, इस मुहल्ले के मोड़ पर उसके प्रशंसक हैं, उपासक हैं, बंधु-बांधव हैं। दूर से उन्होंने उत्तर दिया। बलिदत्त क्या समझेगा ? किंतु हठात् उसने अनुभव किया वह किसी कूकर-व्यूह में आ गया है। वह कंपनी का अफसर हो गया है। धीरे से गुस्सा दबाकर भय आ गया, दैवात् रात भी हो गयी है, इस रात में इस मुहल्ले के कुत्ते-कुतिया आक्रमण करने के लिए आ रहे हैं। दांत दिखा, जीभ लप-लपाते चढ़ते चले आ रहे हैं, कोई पंजों से रास्ते को खोदे जा रहा है, कोई टांग ऊपर कर पेशाब करने को प्रस्तुत हो रहा है, सब के मुंह पर जोरदार कोलाहल, नाना स्वरों में, और चमेली के नीचे गरजती बिफरती सी नाच-नाच कर रण-रंगिनी काली कुतिया उन्हें उत्तेजित कर रही है—आगे बढ़ो, आगे बढ़ो। दिखा दो पिल-पिलाते इस सुविधावाद को सर्वहारा की एकता का बल।

रास्ते पर ही खड़े-खड़े चिल्लाया बलिदत्त—"बनु, बनु—"

"अरे अरे—ऐ टामी ! चले आओ भाई, कुछ नहीं करेगी।"

टामी अपमानित सा होकर भों-भों करती अंदर चली गयी। इशारा समझ कर मुहल्ले के कुत्ते भी लौट गये। बलिदत्त ने मुक्ति की सांस ली, किंतु निढाल हो बनु के हाथ में ढलक गया, कड़े हाथ से उस की बांह पकड़ घसीटता सा ले गया बनु,—पागल बनु,—"अरे यों कांप रहा है क्यों ? डर गये ? अरे पगले, वही संटू दा, वही अशोक, वही नंद, अरे देखो—बलिदत्त आया है।" आराम कुर्सी के अंदर धंसा कर बोला "बैठ, चाय पी, जरा सुस्ता ले, बेचारे को कुत्तों ने बहुत तंग किया।"

"नमस्कार—" बलिदत्त ने कहा।

"नमस्कार—बलिदत्त, तुम्हें क्या हुआ है। मुंह सूख क्यों गया है ?" किरे बनु ?"

"उनका प्रमोशन हुआ है।" नंद ने कहा, "ना, सच ?"

सब हंस पड़े, अनंत ने कहा,—"अच्छा लॉजिक है। तुम्हारा भी, नंद, प्रमोशन होने पर चेहरा क्यों सूखेगा ?"

"क्योंकि कुत्ते पीछा करते है। सब हंस-हंस कर लोट-पोट हो गये, बलिदत्त भी मजबूरन हंसा। नंद ने खड़े होकर कहा, "तीन-चार प्रमोशन के बाद मुझे काफी अनुभव है भाई बलिदत्त दास, कुत्ते पीछे लग जाते हैं, मेरे पीछे भी कुत्ते लगे। अतः मैं संसार छोड़ रहा हूं। लो, चला भाई बनु।"

"इतनी जल्दी ?"

"एक दिन तो जाना ही पड़ेगा रे उल्लू, उससे पहले चले जाना अच्छा है, अपने हाथों सब रास्ते साफ कर आदमी जा सकता है, मैं तो चला भाई बनु,"—नंद आगे बढ़ गया।

"किधर चले नंद बाबू, इतनी जल्दी ?" बलिदत्त ने पूछा। नंद ने उत्तर दिया, "मैं भी लगा हूं एक प्रमोशन के चक्कर में बलिदत्त बाबू, शाम को बिना गये नहीं चलेगा। क्या सोचेंगे वे ?" नंद हंस रहा था।

"सो तो सच है, बिलकुल सच,—" विज्ञ की तरह सिर हिला-हिला कर बोला बलिदत्त। "ठहर," बनु ने कहा। संटू दा ध्यानमग्न हैं, अनंत और अशोक अखबार पढ़ने में लगे हैं।

"तू तो कहेगा रुक, तू समझेगा भी क्या ? ये देख बलिदत्त बाबू कितनी जल्दी समझ गये, ये ठहरे अनुभवी आदमी। अरे बेवकूफ, शाम को जाना पड़ता है, समझे, तेरी तरह घर बैठे रहने से काम नहीं होता।"

"अच्छी बात है, बनु छोड़ दे, उन्हें जाने दे। अच्छा, नंद बाबू, आप का कहां प्रमोशन हो रहा है ?"

"कहां ? कह दूं ? अच्छा, प्रमोशन हुए बिना कोई पहले से ही भेद खोल देता है ? मनसा चिंतितं कर्म वचसा न प्रकाशयेत्, अन्यलक्षित कार्यस्य यतः सिद्धिर्नैयायते। है न, बलिदत्त बाबू ? आप क्या कहते थे ? अच्छा, सभी बताओ तो, प्रमोशन हो रहा है इतना तो कह चुका और घंटे भर में जरूर अखबारों में छप जायेगा और फिर बता दूं कहां प्रमोशन होगा ? रखोगे तुम सब ? हें रे बनु कहूं

या नहीं ?" नंद हंस रहा था ।

"कह, कह दे,—" बनु ने कहा ।

"कहिये, कहिये," बलिदत्त ने जिद्द सी की ।

"बोलो मत ।" अनंत ने कहा ।

"ओ टा पागल," संटू दा ने कहा, "कि बल्बि रे, पागल् ?"

नंद बैठ गया, "कह कर ही जाऊं तब, क्यों ? क्योंकि अनंत मना कर रहा है । सुनिये बलिदत्त बाबू कहां प्रमोशन की जुगाड़ लगा रहा हूं आप को कह देता हूं, क्योंकि आपके साथ वहां कंपीटीशन नहीं है । संटू दा तो बहुत आगे हैं, मां का सबसे छोटा लड़का । अनंत साथ है पर वह पहले पहुंचेगा, वह जितना जोर लगा रहा है उसी से सूख कर कांटा बनता जा रहा है ।

"बोलूं—बोलूं —बोलूं मेरा कहां प्रमोशन हो रहा है ।"

इसके बाद उच्छ्वसित आनंद में हंस कर वह गीत गाने लगा—

शून्य मंदिरे विहार, रूपरेख नाहिं जार ।
दुइ पाद न मिशइ एक पाद धरधर ।···
अलेख पारणापुर सेठाबरे तांक घर
नाहिं शरद उषुम साधुजने हेतुकर
निरामिश निअइंठा पिउथिले लागे मिठा
अदेखा अनामे स्वाद एमंत साधुर ।
देखिता छटक चालि ज्ञानी मरुछंति भालि
चक्षु छटकरुं बेगे विजुलिरु अतिखर
जेउं ठारे ब्रह्म अछि उदे अस्त नाहिं किछि
कहे भीमं अरक्षित निमेल निअंधकार

(वह अलेख स्वामी जिसकी कोई रूपरेखा नहीं है, शून्य मंदिर में विहार करते हैं । अलेख पाटणापुर में उनका घर है, जहां शीत, ग्रीष्म आदि का कोई प्रवेश नहीं, वहां दो पाद का मिलन नहीं, किंतु एक पाद ही सबको धारण करने में समर्थ है । वे अनाम, अनदेखे, निरामिष, अनुच्छिष्ट हैं, पर उनका नाम भी लेने पर प्रतिक्षण मधुर लगेगा । इस मधुर तृप्ति का कोई अंत नहीं, उनकी चाल की छवि देख ज्ञानी सदा न्योछावर हो जाते हैं, पलक झपकने से भी तीव्र एवं विद्युत से भी अधिक वेगवान हैं वे । वे ब्रह्म पुरुष जहां विराजमान हैं वहां न उदय है न अस्त ।

अरक्षित भीमा भोइ कहते हैं वहां सदा अंधकारहीन, नित्य नूतन निर्मलता विराजमान है)

"वहीं हो रहा है मेरा प्रमोशन बलिदत्त बाबू, उसी 'अलेख पाटणापुर'।" इसके बाद उसकी आंखें छलछला आयीं, गला भर आया, आंसुओं में से हंस कर नंद बोला, "हो कहां रहा है, बहुत बाकी है, कहां हुआ ?" रुआंसी सी आवाज में गीत गाने लगा,—

"छंदा चरण है, मते तारिब कि,
मते कंदाई कंदाई मारिब कि ?"

गाते हुए चला गया, रास्ते से चिल्लाया, "भाई कोई मुझे कर्जदार न करना, मैं पहले से ही कहे देता हूं, नमस्कार, नमस्कार—"

बनु ने उदास होकर कहा, "चल सीधा श्मशान के पास वाले मठ को ।" संटू दा ने गहरी सांस छोड़ते हुए कहा, "सब्ब गोबिंदर इच्छा ।"

बलिदत्त आवक् देखता रह गया। वह यह सब क्या देख रहा है ? यह तो थियेटर भी है । साधारण जीवन में भी ऐसा ही होता है । आदमी सचमुच का थियेटर भी करता है ? अब याद आ रहा है उस जाने-पहचाने नंद से यह नंद कितना अलग है। वह नंद था कपड़े-लत्ते और चाल-ढाल एकदम स्मार्ट। टक्कर लेता था मोटे दुखू के साथ। दुखू आज नहीं है, पर याद आता है उसके फूले हुए गालों के बीच छोटी सी नाक, आंख पर चश्मा, बात करे तो गजर-मजर फुसफुसाहट के शब्द।उसका चूड़ीदार कुर्ता, रेशमी रुमाल लटकता, सादी देह महकती हुई। एम. ए. बी. एल. दुखू, सात बहनों के एकमात्र भाई, कितना रईस, कितना दिलदार, आधी उमर में दुखू चला गया।

नंद के साथ तुलना करते-करते अचानक याद आ गया दुखू ।

इस कुर्सी पर किसी दिन दुखू भी बैठता था। इसी कोठरी में धमा-चौकड़ी मचा देता। सच इस संसार में अब और दुखू नहीं हैं ।

वह नंद दुख के साथ टक्कर लेता, नहीं उससे भी बढ़ कर था। दुखू जीवन से प्यार करता था, जितनी सुंदर खुशबू, सुंदर रात, सुंदर फूल, सुंदर लड़की, पर वह देखना पसंद करता फूल को, फूल की तरह उठा कर दूर से ही सूंघता, हाथ में दबाकर पकड़ रखने के लिए उसका अंगूठा तक नहीं मुड़ता। इतनी मोटी— देह में संकोच भर जाता, अतः खाली देखने के बहाने दौड़ जाता दिल्ली से

कलकत्ता, कलकत्ता से बंबई, बंबई से पुरी समुद्र के किनारे, वहां से फिर कराची चला जाता। हरदम कैमरा साथ। लाता ढेर सारी फोटो, सुंदर लड़कियां, इन्हीं के सुंदर दृश्य। कई कई कहानियां,—सुंदर रातों में दूर से देखने की अनुभूतियां। इस कमरे में वह अपनी बातें खूब उत्साह से बिखेरता,—समझे बनु,—" ! दुखू, —-सफेद फरफराती लहराती धोती, घुंघरालेंत बाल, छोटी तीखी नाक, चेहरे पर बच्चों की सी हंसी, वसुधाबंधु ! दानापानी की धमा-चौकड़ी उस की जीवन पूजा को स्पर्श नहीं कर सकी। संसार में उस का कोई शत्रु नहीं, सिर्फ तीस वर्ष, वह भी क्या चला गया उसी --

"अलेख पाटनापुर, से ठावरे तांक घर,
नाहि शरद उषुम, साधुजने हेतु कर।"

(अलेख पाटणापुर में उनका घर है···हे साधुजनों, वहां न सर्द है न गर्म—)

भीम भोई के भजन के साथ-साथ स्मृति में सजीव हो रहा है। दुखू याद आता है वह कहां चला गया। नंद एक प्रकार से दुखू का प्रतिद्वंद्वी था। उसे भी सुंदर रात, सुंदर फूल, सुंदर लड़की पसंद थी, पर देखने के लिए नहीं, खा कर हजम करने के लिए। नंद भोग को खा सकता था, देवी का चरणामृत पी सकता था। परिणाम के लिए उसने कभी चिंता नहीं की, कितनी अनुभूतियां हैं उसकी। कहीं वह किसी का धर्म भाई बना है, किसी का ट्यूशन मास्टर, किसी की देह की क्षुधा मिटाने का सुयोग पाने के लिए मंदिर के चक्कर काटे हैं। गिरजे में घुटने मोड़कर प्रार्थना सभा में गया है, मस्जिद के पिछवाड़े वाली गली में गया है। इसके लिए उसने कष्ट उठा कर बंगला सीखी है, पुरी समुद्र के किनारे होटल में ठहरा है, नाम बदला है, क्या कुछ नहीं किया। क्योंकि वह कच्चा मांस चखना चाहता है। इसी क्रम में उसने कई बार मार खायी है। कई बार किसी का नाम लिखा रुमाल उपहार में पाया है। कल की प्रतीक्षा करने नहीं बैठता, चेष्टा में लगा रहता है। सदा कड़क, सदा फिट-फाट्, हंसमुख, मुंह पर खाली विज्ञापनों की तरह एक के बाद एक हृदय जीतने की कहानियां,—। उस बार क्या हुआ, गाड़ी में जा रहा था, बहुत भीड़, भुवनेश्वर स्टेशन पर लड़की चढ़ना चाहती थी, हाथ में वैनिटी बैग, होंठों पर लिपस्टिक। हठात् मुझे ही लक्ष्य कर बोली—'मोशाय,—एकटु—' इसके बाद क्या किया—।

वही नंद है।

बलिदत्त चौंक कर सोचने लगा, उसका क्या सिर्फ मन ही बदला है ? चेहरा भी तो। बाल नहीं बनाये, दाढ़ी बढ़ गयी, माथे पर सिंदूर का टीका, लाल आंखें —रंगीन चाय, बैठे-बैठे वह बिना कारण कई बार मुस्कराया था। खाली बातों में धर्म-पागल।

वही नंद था। पढ़ायी में एम. ए., नौकरी में ऊंची जगह, मतलब में सदा सुविधावादी, वस्तुवादी, धर्म में नास्तिक, चार्वाकपंथी।

कल्पना भी नहीं कर सकता कि वही नंद आज साधु मार्ग पर है। जीवन उसके लिए तुच्छ है, दानापानी की चिंता,—उसे तो मानो वह भूल गया है।

"क्या सोचता है बलिदत्त, ले बीड़ी पी—"

"नहीं कुछ भी तो नहीं सोचता।"

"धत्, झूठ बोलता है, बता तो, क्या सोच रहा है, नहीं तो पकड़ूंगा तेरा कान।"

"ओ र ओ या आबछे भावुक्, ताते तोमार कि" संटु दा ने कहा।

"आप भी कितना अच्छा बोलते हैं संटू दा।" बलिदत्त ने कहा।

"उसे पूछो ना, अभी गोपीभाषा, केशव कोइलि से बयालिस पटल तक सब कुछ गा देगा।"

"तब फिर यह मिली-जुली भाषा क्यों ?"

"ओ दुटोइ याक्। आर उर्दू आर तामिल, ताओ यदि मिशिये पारताम् सेओ हतो याक्। बुझले दादा हांदू राम, यार येमन् रुचि—सब्ह गोबिंदेर इच्छे।"

'ये सब पागल हैं' बलिदत्त सोचने लगा।

अनंत ने कहा—"बहुत देर तक 'बट एंड' किया बनु, जरा हमें भी बता दे। बट एंड फिर क्या चीज है ? बी यू टी बट्, बट माने किंतु, एंड माने शेष, 'किंतु शेष' 'किंतु शेष' में फंस गया बलिदत्त। किंतु सोचने को अवसर दिये बिना ही खड़ा हो गया, बोला,—"कसूर मेरा है, सात कांड रामायण हो गयी, पर अब भी कह नहीं सकता सीता कौन थी ? ऐ बलिदत्त दास,—ओफ् 'श्री' कहना तो भूल ही गया। ये कंपनी के वफादार कर्मचारी, आज इनकी पदोन्नति हुई है।"

"और ये ? ये श्री अनंत कुलकर्णी चौपट, याने श्री अनंत कुलकरण चउपट्ट-नायक, प्रसिद्ध कवि, कुशल राजनीतिज्ञ, बंबई के विख्यात फिल्म प्रोड्यूसर,—पहला चित्र अनंतशया, फिर प्रसिद्ध आलोचक, और—अरे भाई रुको, मुझे मत

टोको, विख्यात 'हटहटा' गांव के जमींदार एवं बारिस्टर एट ला, लिकंस इन, बी.ए. 'हंस'—"

"एँ,—"

बलिदत्त की छोटी एँ बंद नहीं होती।

"—और ये हैं श्रीमान् अशोक मेहता एम. काम., सत्रह पीढ़ी के यहां के वासिंदा, कवि माधव मेहता के पोते, स्वयं मेहता एंड मेहता लिमिटेड कंट्राक्टर्स, प्रमुख मासिक 'क्षणजन्मा' के संपादक एवं उच्चकोटि के लेखक।

"और—"

अनंत ने कहा—"और ये हैं वन विहारी पट्टनायक एम. आर. सी. एस., लिजियन डि ऑनर, फेडरल इंवेस्टिगेशन ब्यूरो, प्रसिद्ध गुप्तचर ब्लैक के साथी अर्थात् सेक्रेटरी।"

सब हो-होकर हंस पड़े, बलिदत्त बेवकूफ बन गया। दो अपरिचित सज्जनों का परिचय पाकर आश्चर्य में भरते-भरते परिचय हंसी में उड़ा जा रहा है, तो यह सच है या झूठ ?

कौन हैं ये लोग ?—निशाचर जीव ? बलिदत्त को याद आता है, कहीं देखा है इन्हें। ये जिन्हें बनु ने अनंत कुलकर्णी चौपट बताया,—कहीं विराट सभा में भाषण दे रहे थे इन्हीं के जैसे आदमी, ऐसा ही चौखूंटा चेहरा, तीखी चिबुक, गहरी तेज-तर्रार आंखें, दंभ भरा माथा, ऐसे ही माथे पर बिछी थीं बिखरी-बिखरी बालों की लटें। गर्दन में फूलों की माला, बातों में आगामी किसी स्वर्णयुग की छवि। जनता बार-बार तालियों की गड़गड़ाहट कर रही थी। क्या ये वे ही हैं ? जो लोगों को मस्त किये दे रहे थे, हंसा-रुला रहे थे, बातों की गर्जना से गरमी पैदा कर रहे थे ?

इसके बाद किसी दिन अखबार में उनका बड़ा-सा चित्र छपा था, ऐसे ही थे, उनके चेहरे की तलवार-सी तीखी आकृति ऐसे ही गंभीर, अथाह आंखें। पर वह तो रुग्ण दिख रहा था। अखबार ने खबर दी थी—किस अगम्य वन्य देश में रोशनी इसी आदमी ने जलायी, दासत्व की बेड़ियां कड़कड़ा कर टूट गयीं, जाति उद्बुद्ध हुई, इसके बाद स्वेच्छाचारी शासक के क्रोध की आग उस पर बरसी,—चमड़ी पर फफोले हो गये, जला नहीं सका। वह हाथ-पैरों में जंजीर झुला कर कोड़े लगाता है, गुदा द्वार से बांस ठूंसता है, प्यास लगने पर पेशाब, पीठ पर गरम सलाख गोंजना, नाक में लाल मिर्च की धूनी, हथेली पर नागफनी के कांटे—ओह,

सारा देश नफरत से कांप उठा, क्रोध से जल उठा, छोटी-सी सफलता के इच्छुक बलिदत्त दास ने भी एकांत कमरे में छोटी-सी हथेली बंद कर उठायी थी अनदेखे शत्रु के मुंह की ओर। अखबार ने लिखा था,—यह ? वह आदमी है ? इतने अंधकार में भी संदेश भेजा था—

बंदीर मुक्ति निश्चित, दलित विजय,
चाल झंझार नादे गाइ मुक्तिर वाणी
जड़तार शिरे वज्र हाबुड़ि हाणि
आर्त्त जगते परषि संजिबनी
माड़ि चाल, दलि चाल, माड़ि चाल।"

देह में पीड़ा, गुदा में बांस, मुंह में पेशाब,—

गा रहा था मुमूर्ष देह से विजय के जुलूस का गीत,—अखबार में छपा था।

यह क्या वही आदमी है ?

सादृश्य तो है, पर यही होगा इसका विश्वास नहीं आता, यही तो था 'अनंत शया' चित्र का निर्देशक, नहीं तो यह देह, यह उन प्राणों की सामयिक अनंतशया। कहा नहीं जा सकता।

और यह जिन्हें अशोक मेहता कहा जा रहा है—रास्ते में कितनी बार साईकल पर गाते देखा है, ऐसे ही एक आदमी को। सांझ के झुरमुटे में। साहित्यिकों के साथ, कभी कहीं घूमते देखा है। खाली साहित्य की चर्चा, जोरदार तर्क, कथा सुनते ही खुलकर दिख जाता अंदर का मार्जित मन। सभा की भीड़ में मंच पर खड़े होकर भाषण दिया है इसी की तरह के किसी ने, पंडित की भाषा में कठिन दर्शनशास्त्र को मिलाकर बिछा दिया है, उच्छ्वास की पंखुड़ियां, स्वप्न से झिलमिलाती आंखें। इसी तरह के किंतु वे तो कंट्राक्टर न थे।

परिचय—परिचय—

उड़ती चिड़िया का परिचय, नहीं यह तो पीठ में चोंच गड़ाये आंख मूंदे सिमटे-गुमटे बैठी चिड़िया, मुट्ठी भर पंख ही हैं।

जिंदा आदमी का परिचय यह नहीं कि काला-कलूटा कीचड़ से सना मुर्दार,— जिसे पकड़ने पर कीचड़ मलता-सा लग रहा हो, इस्स। इतना-इतना कीचड़,— मुर्दार कहीं का,—

किसका परिचय, इस्स !

बाहर अंधेरी रात है, मस्तिष्क में नंद का वही गीत, 'शून्य मंदिरे बिहार',— अंदर चुपचाप बैठे हैं एक-एक कर, बनु की इस पागल कोठरी में यही धारणा पैदा होती। कोई मुर्दार याद आता है। शरीर कांप उठता है। बलिदत्त जाना चाहता है।

संटू दा ने कहना शुरू किया जैसे मंदिर की गंभीरी (जलहरी के पास) से कोई कह रहा हो, बात का उद्देश्य वे खुद हैं,—

"शुनले त परिचय ? इससे क्या समझे तुम, बोलो ? एक लिकनुस इन, एक कंट्राक्टर्स, एक फेडरल इन्वेस्टिगेशन। और मेरा परिचय अब शायद टिबेट्टन लामा। व्हाट्स इन ए ने ए म् ?

अपना—अपना परिचय भी तो ठीक करो, यद्यपि इसके लिए ऋषि-मुनि कल्प-कल्पांत बिता देते हैं तब ओ ओर नागाल् ओरा पायणा।

"परिचय भी क्या हो ? लोग हमें जो भी पुकारें, जो भी सोचें, वह तो एक लेबल के अलावा और कुछ नहीं ? लेबल बदले जा सकते हैं, वस्तु के उपादान जरा भी नहीं बदल सकते। ऊपर का लेबल भीतर की चीजों का ठीक वर्णन करे ही, यह सोचना तो बिलकुल गलत है। फिर भी देखोगे यह लेबल चुगते फिर रहे हैं बड़े-बड़े लड़के, और उसके लिए कितनी मार-काट। चाय का लेबल इकट्ठा करने पर अशांति।"

"बाबा, पहले अपने मन को पूछो, अपनी जरूरतें क्या हैं, अपनी भलाई किसमें है ? व्हाट डू यू रियली नीड, व्हाट आर द परमानेंट वेल्यूज इन लाइफ ? ता नोयं शुधु लेब्ल, अपनी जरूरत, अपना अभाव, अपनी इच्छा आदि सब चीजों के लिए मां के पेट से निकलते न निकलते तुम्हारे आगे एक लेबुल है, उसी के लिए लड़ते-लड़ते तुम्हारे प्राण निकल जायेंगे। पेटेंट मेडिसिन के विज्ञापन की तरह पेटेंट आइडियाज का हौवा दुनिया पर छाया है, इसीलिए कितनी भी चेष्टा करो,

दुनिया सभ्य नहीं हो सकती या युद्ध और अशांति नहीं मिट सकती।

—"बाबा, यदि, इतना न कर सको तो पकड़ो सीधा रास्ता,—अटोसजेशन। याने लेबल बदल दो। धन जोड़ने की जरूरत नहीं, वह जो विराट पर्वत दिख रहा है वह समूचा तुम्हारा है, उसके नीचे तुम्हारी सोने की खान है। बैंक में जिसकी बिना कमाई पूंजी जमा है, वह उससे ड्रा कर जो खा रहा है उसका कोई माने नहीं। खाली देखने से सुख होगा उसे। तुम्हारा परिचय वही पर्वत है। सोचो कि पृथ्वी तुम्हारी है, और फिर दुख नहीं। यह बनु की खाट मेरी, क्यों बनु—लो मैं सो गया, सिर के नीचे तकिया दे तो बाबा,—आह—"

अनंत और अशोक वैसे ही चुपचाप बैठे हैं।

बलिदत्त का दिमाग अस्थिर हो गया, मानो नंद के पीछे-पीछे जाने को मन हो रहा है। घड़ी ने दस बजाये, रात के दस बजे फिर चेतना लौट आयी,—दिन में दस बजे वह बड़े बाबू को कह आया था, रात में आऊंगा।

हत्—एक रात बेकार चली गयी।

बनु के घर से निकल कर मोड़ पर आने तक वे ही धारणाएं थी। मोड़ के बाद चौड़ा रास्ता, बड़ी सड़क। दुकान, बाजार, बड़ी-बड़ी इमारतें। गाड़ी और भीड़-भाड़। रोशनी की चकाचौंध है। चौराहे पर वह खड़ा-सा हो गया, पीछे के माया-वाद को मानो खींच मरोड़ कर अपने आपको हिम्मत देने की महापात्र की भंगिमा का अनुकरण कर कहा—"ईडियट्स—पागल—पागल कहीं के—"

इसके बाद तेजी से चल पड़ा।

सरोजिनी ने किवाड़ की अर्गला लगा दी। साथ-साथ कुछ हो गया जैसा लगा उसके इच्छा मन और अनिश्चित, बेकाबू, प्रभाव-प्रक्रिया मय बाह्य मनोजगत के बीच यह किवाड़ है—अब उसके लिए भरपूर एकांत है। वह मुखौटा उतार सकती है, भेष उतार कर खेल सकती है अपने साथ। अजीब है उसके मन का कारोबार भी, एक-एक साधारण-सा काम,—किवाड़ बंद करना, दीवार से धक्का खाकर देहरी पर टकराना और जाने-अनजाने में देह को कष्ट देना, चूल्हे में पतला लकड़ी का

टुकड़ा ठूंसकर उदास दृष्टि से उसे जलते-जलते राख होने तक गाल पर हाथ रखे देखना,—मानो भीतरी मन में रुंधी किसी धारणा को संकोच के आडंबर में अपना प्रतिबिंब देखना, बाहर का कार्य मामूली रूपक होता है। उसका मन अशांत है, उसमें इच्छा चलती-फिरती है।

किवाड़ बंद किये, घर में कोई नहीं। वह अकेली है।

कुछ सोचे बिना ही रोज का धंधा करती चली गयी—दीया जलाना, घर बुहारना, चीजें सजाकर रखना, सब्जी काटते-काटते चूल्हे के आगे बैठकर फूंकना। चूल्हे में धक-धक आग जल रही है। भात चढ़ा हुआ है, दाल पक गयी है। चारों ओर अंधेरा है।

धीरे-धीरे मन के अंदर वह पुरानी बात लौट आती है, बलिदत्त घर लौटा था। अचानक किसी बात पर पैर पटक कर पागल-सा गरज उठा था, गाली बकने लगा था। पैर पटकना उसी बात का अस्तित्व प्रकट कर जाता है,—मन के गहरे अंधेरे में वही भूत, अशांत युवती की मन की आकांक्षा का रूप। वह आकांक्षा मिटती नहीं बलिदत्त के हावभाव, उसके कोट-पैंट, या उसके प्रमोशन का बड़प्पन।

सिर पर चमकता सिंदूर। हाथ में चूड़ियां, कहती हैं 'काच वज्र हो' का आशीर्वाद, कंधे पर 'पतिपरमगुरु' ब्रूच,—सरोजिनी अनजाने दुख से सिसक उठी।

चूल्हा फूंकने से निकला खारा पानी गरम-गरम आंसुओं की धार में बदल गया। उस क्षण उसने अपने जीवन को धिक्कारा—जीवन धुआं बनकर जलता जा रहा है,—इस चूल्हे के अंदर मन की उमंग एक लंबी 'हाय' बन कर रह गयी है।

रोना चाहती है पर मन नहीं रोने देता। उसे अपना पिछला जीवन याद आता है। दादी कितना चाहती थी उसे,—गोद में बिना लिये नींद ही नहीं आती थी। वह अब नहीं है। मौसा,—थुलथुल पेट पर बिठाकर नचाते,—वे भी अब कहां हैं। मृत्यु—विछोह। फिर अपना घाव और दर्द, अभाव और अभियोग। आहा 'च्—च्—' कितनी दुखियारिन है, कितनी अभागन है वह।

यह संसार दुख का सागर है, जहां से अंजुरी भर दुख उठा कर मन में उंड़ेल दो, आंखों के रास्ते टप्-टप् होकर बह जायेगा।

सरोजिनी रो रही थी, इस दूर परदेश में पीहर की याद आती है। यहां सुख

नहीं, स्नेह नहीं, बस मशीन की तरह काम किये जाओ। दूर पीछे छूटी सखी-सहेलियों का साया सिर पर नहीं। कैसा जीवन है। क्रमशः सिसकियां धीमी पड़ती गयीं। उदास मन, कोई हलचल नहीं, झूलता रहा चुपचाप। धीरे-धीरे मन में कुछ तेज हो जाता है, पवनाहारी सांप की तरह तमतमाया चेहरा, सूं सूं करती लंबी सांस, लाल-लाल आंखें, वंचित प्रवृत्ति शिथिलता खोज अपने अंदर से निकाल कर अंधेरे में रूप गढ़ रही है। इसी तरह दिन में वह आता है, मन झनझना उठता है। अस्थिर होकर बहुत इधर-उधर होती है—बाहर, दरवाजे में, अंदर के कमरे के झरोखे के रास्ते अन्यमनस्क हो बाहर देखती है।

वहां कौन है ? रास्ते के उस ओर झरोखे होकर दिख जाता है कालेज छात्र। वह किताब की ओर आंख किये पेंसिल की नोक मुंह में दबाये कुछ सोच रहा है।

कुछ सोच रहा है। उसका मन उधर हिल गया। झट से खिड़की बंद कर दी फिर थका हुआ मन का पक्षी उतर कर अपनी जगह लौट आया।

पतीली में चावल उबलने लगा है।

गरम पानी में असंख्य बुलबुले उठते हैं—गब-गब—गब-गब। कितनी गरमी से। कैसा शब्द ! कितने बड़े-बड़े हैं। फूटकर मिल जाते हैं, फिर भी जगह खाली नहीं रहती। झुंड के झुंड नाचते हैं। सच, कितने असंख्य बुलबुले हैं। जब देखो तभी पूर्ण हैं। पूर्ण से पूर्ण को चले जाते हैं, रह जाता है फिर भी पूर्ण। बुदबुदों का नाच नित्य नयी चमक दिखा जाता है।

सरोजिनी भात पका रही है।

कुछ नहीं, घर की एक बहू बैठी भात पका रही है, एकदम मामूली दृश्य है।

रात के नौ बजे।

अभी लौटते होंगे। उनका प्रमोशन हुआ है, दूसरा कदम, बड़ा कदम। छोटे घर से बड़े घर में पैर बढ़ाना नजदीक हो गया। इसके बाद धन आयेगा, सरोजिनी धन को प्यार करती है। कैसा है वह जीवन ? धनी होने पर कैसा लगता है ? बचपन से अब तक की देखी-सुनी बातें याद आती हैं। पास के गांव में सगाई की बात चली थी,—नाइन कह रही थी कि उनकी पक्की हवेली है, धान के कोठे हैं, नौकर-चाकर काम करते हैं, चबूतरे पर आने-जाने वाले लगे रहते हैं, नाच-तमाशा होता रहता है, कल का बाजा बजता है उनके यहां। जन्मपत्री ने साथ नहीं दिया। किंतु वह था बड़े आदमी होने का सपना। इसके बाद बाट में, घाट में, किसी के

घर घूमने गयी तो कीमती साड़ी, सिर से पैर तक गहनों से लदी,—किंतु नहीं सब धनी तो वेश किये नहीं घूमते। धन है, इतनी धारणा होना ही यथेष्ट है। घोड़े-गाड़ियां, जमीन-जायदाद, धन-संपत्ति होना ही यथेष्ट नहीं, जरूरत है कर्तृत्व की, धनगत अधिकार की और दूसरों से खातिरदारी की। होना ही यथेष्ट नहीं है,—हां, यह बात दस आदमी कहते फिरें—इनके यहां है, हमारे यहां नहीं। अभाव वाले न रहें तो भरे-पूरे लोगों के पास होना न होने जैसा है। महीने के डेढ़ सौ, इतने क्या—! किंतु बढ़ जायेंगे हू हू करते, पति की आशा और उद्यम उसके आकार और गढ़न के साथ समान नहीं। अत: वह धनी होगी, पर इतना धन; धन क्या शरीर में लगता है ? चेहरा बदल देता है ? मन में सुख सरस मोहिनी देता है ? वह गहरी सांस लेती है।

डिबरी उठा कर कढ़ाई में तरकारी देख रही थी कि गहरी सांस से बत्ती बुझ गयी। चूल्हे से लकड़ी लेकर जलाते-जलाते उसके मन में फिर वह पुराना दर्द लौट आया। यह वही व्यक्तित्व है जो सोचता है शांति नहीं, सुख नहीं। शांति नहीं,—वह तो अवस्था की बात है, कर्म की बात है, सहलाने के लिए वहां तक धन के हाथ नहीं पहुंचते, मन में सुख न हो तो दुनिया भर की चीजें घर में भर लेने से भी क्या लाभ ? किंतु, सुख,—वह धन से भी गढ़ा जा सकता है। कम से कम असल का नकली तो गढ़ा ही जा सकता है। ठीक वही न सही,—बदले में उसी तरह का और एक। प्रति क्षण बदला लेने को मन तैयार है, अत: सुख का बदला,—सुख जैसा ही कुछ। उसे ही पाने की स्वाधीनता देता है धन।

हो सकता है सुख आये। याद आया, 'वे कहा करते हैं,—निकलती क्यों नहीं, बाहर निकलो तो सही, शिक्षित बनो, हम भी इन बड़े-बड़ों के साथ सामाजिक संबंध जोड़ते तो देखती कितनी जल्दी हमारा भाग्य सुधर जाता। तुम तो पत्थर हो पत्थर।'

हो सकता है धन स्वाधीनता दे जाय, और वे भी खुश होंगे।

सरोजिनी नया जीवन सामने देख रही है, माथे पर पसीने की बूंदें, नासा फूल गयी है, स्वांस में तूफान, रक्त गरम हो उठा है। चेहरा नीचे किये अन्यमनस्क होकर वही जीवन, वही सुख देख रही है। जो इस परिचित मन के आगे भाषा में भी नहीं कहा जा सकता। चुपचाप, केवल अनुभूति, केवल स्वप्न, उसकी रूप-रेखा आंकने को मन नहीं करता; किंतु उसका तेज अपनी आंच से अंतर को व्याकुल कर

देता है, व्यग्र कर देता है। अंधेरे में कहां से तेज बहा आ रहा है, अपने को मोह कर पकड़े है उसी ओर। स्वयं भी वह अस्पष्ट छाया से ढक गयी है।

कोई बुला रहा है ?

"बेयरा—बेयरा—"

सरोजिनी किवाड़ खोलकर बाहर देखने लगी। "कौन है ?"

चेहरे पर ठंडी हवा का झोंका, बाहर अंधकार, अंधेरे में एक जगह सिगरेट का सिरा जल रहा है, "महापात्र हूं।"

दो कदम हटकर भड़ास से दोनों किवाड़ उढ़काने लगी तो सुनायी पड़ा, "ओफ्, मेरा पैर,—सुनिये।"

बस, किवाड़ की फांक में कब उन्होंने पैर ही रख दिया—लो, झुककर दोनों हाथ से टखने को दबाये बैठे हैं। दो-चार बार ओह-आह—

मानो कोई चौपाया जंतु हो। जंतु का पैर जख्मी हो गया है, वह करे तो भी क्या ? किसे बुलाये ? क्या करे।

रुका भी नहीं जाता, पास जा भी नहीं सकती, देह थरथरा रही है। छाती धड़क रही है। होंठ काटकर सांसों में भरी सरोजिनी उनके पैर को देखती खड़ी है।

क्या हो गया !

महापात्र ! महापात्र आहत हो गये।

नीचे से सिर उठाकर महापात्र बोले,—"क्या बलिदत्त बाबू नही हैं ?"

"नहीं।"

"ओह !—तो—"

दोनों आंखें किस तरह जल रही हैं। स्वर कैसे फटा-फटा है। चोट शायद अधिक लगी है। महापात्र रुक गये। घर में एक दो कदम बढ़ आये हैं। सरोजिनी को देख रहे हैं।

"वह सब आप अधिक न सोचें, कसूर मेरा है, पैर अंदर रह गया था। तो फिर बलिदत्त बाबू नहीं हैं, बहुत घूम-फिर कर आया। होते तो कहता चाय का कप तो पिलाइये, आज आपका प्रमोशन जो हुआ है। घर पर होते तो क्या चाय का कप भी नहीं देते ? अब तो वे अफसर हैं, बराबर के भाई हो गये और चिंता क्या ?"

अंधेरा, खूब अंधेरा।

घर के अंदर टिमटिमाती रोशनी, अंधेरा जैसे उसकी मजाक उड़ा रहा हो।

सरोजिनी मुंह झुकाये चुपचाप खड़ी है। चाय की बात सुनते ही याद आया कि चाय का बर्तन आले में है। जरा सा गरम पानी, डब्बे के दूध से चम्मच भर और चुटकी भर चाय की पत्तियां, चीनी के दो दाने। यही तो है—कप भर गरम पानी, जिसका नाम है चाय।

मना कर दूं? 'वे' आते ही होंगे, क्या कहेंगे वे?

'इतना भी तुमसे नहीं हो सका? मुंह खोलकर कह दिया तो भी! छिः।'

कर्त्तव्य के आडंबर में चाय का बर्तन उठाने के लिये उसने हाथ बढ़ा दिया, आला इनके पास ही तो है। चाय का बर्तन उठाते-उठाते लंबे हाथ पर उनकी पैनी नजर गड़ जाती है। इससे चमड़ी कांप उठती है। रोम रोम खड़ा हो गया है।

महापात्र उसकी खुली बांह को देख रहे हैं। फूली हुई सीधी रबर की नली, न, सांप, लता—या गोरी-गोरी चमकती चमड़ी, उसके नीचे कच्चा मांस—कच्चा मांस। उसके छंद में बिजली, वायु और आकाश के बीच खिलाती है चुंबकीय तरंग। उसे समेट रहे हैं महापात्र। चाय, दूर से तैर आती है कप-प्यालों की छंद-युक्त खट्खटांग, शब्दों से बढ़ जाती है अंतर की ऊष्मा—परिचित सुगंध, परिचित रंग और परिचित भाप, मधुर हाथों का स्नेह स्पर्श, घर का चूल्हा, एकदम घरेलू।

मुग्ध महापात्र देख रहे हैं। विह्वल सरोजिनी चाय का बर्तन उठा रही है, अलसाये हाथों से। लेते-लेते हाथ कांप उठते हैं। प्लेट से कप खिसक जाता है। उठाते-उठाते और कोई हाथ बढ़ा देता है। कोई हाथ पकड़कर थाम लेता है। हाय राम? समूची देह सूखे पत्ते सी थरथरा रही है। पृथ्वी कांप उठी। आंख मुंदी-मुंदी जा रही हैं। आंख खुलने तक पसीने में भर गयी। कंप-कंपी छूट रही है, कोई कह रहा है धीरे से जरा होले से,—'फिर लड़खड़ा जायेगी। फिर से गिर न जायें।' कुछ टूटा नहीं, न कुछ गिरा, कप-प्लेट और केतली ले जरा सी झुककर सीधे घर की ओर दौड़ी, गरमी लग रही है, गरमी सारी देह में फैल रही है, ओह असहनीय गरम, दिमाग के अंदर तूफान।

एकदम आकर चूल्हे के पास। वही उसका दुर्ग है, उसका आश्रय, उसके अंतर का निभृत साथी। भावना का प्रतीक, जीवन का रूप, गृहस्थली की सूचना—, अग्नि।

चूल्हे में आग जल रही है।

बैठकर अपने को ठीक-ठाक करते न करते बाहर वाले कमरे से महापात्र को उल्लास भरी व्यंग्य मिली आवाज सुनाई पड़ी,—

"और जरा होती तो बलिदत्त बाबू का इतनी शौकीनी का कप नीचे गिर पड़ता—एकदम चकनाचूर हो जाता—हें। चीनी मिट्टी गिरे तो चकनाचूर, और जुड़ती नहीं, हें हें हें हें—"

सरोजिनी के कान लगे हुए हैं।

चीनी मिट्टी गिरने पर चकनाचूर,—क्या गिर रहा था ? क्यों यह बात कही ? कान के सिरे गरम हो जाते हैं। गुमसुम देख रही है चाय के पानी को। पिछली बात को पीछे फेंक कर जल्दी ही सहज होने की चेष्टा कर रही है। सिर में दूर से आ रहे तूफान की धूं-धूं-धूं।

इसके बाद। सोचने में ही डर लगता है, सिर्फ प्रतीक्षा। सच मानो युग बीत गया हो। इसके बाद बाहर वाले कमरे में सुनायी पड़ा,—"अरे, बलिदत्त बाबू ? किधर गये थे ? मैं आपकी ही प्रतीक्षा में बैठा था।"

"सर नमस्कार। सर नमस्कार। कब आये सर ? पान—"

"मेरी चिंता न करें, चाय आ रही है। बहुत बड़ी खुशी हुई है, आपका प्रमोशन जो हुआ है।"

"सर वह सब तो आप की दया है—"

"कुछ नहीं, कुछ नहीं, यह तो शुरुआत है, और कितना बाकी है। आप ही एक दिन इस कंपनी के बड़े साहब होंगे, व्यवसाय चलायेंगे, हेल मैकबेथ, हेल कडर, हेले ग्लेमिस, द ग्रेटेस्ट इज यट टु कम—हा-हा।"

"सब आपकी दया हैं, सर, नहीं तो मेरा और कौन है ?"

"जरूर, जरूर मैंने साहब को कहा था कि बलिदत्त दास को अवसर अवश्य दें उनके जैसा कार्यकुशल और कौन है ? छोड़ो वह बात, आप पहले अंदर हो आइये।"

"सर, मां जी के दांतों में दर्द था, सुना !"

"दांत ? मुझे तो पता ही नहीं।"

"हां, एक दांत में दर्द था, अर्दली से सुना, डाक्टर बाबू को कह आया हूं।"

"तो डाक्टर देख गये होंगे। उनको पायरिया है न, बीच-बीच में वैसा दर्द हो

जाता है। वह आप काफी देखभाल कर रहे हैं, देखता हूं। अच्छा, बलिदत्त बाबू आप तो वैसे रात में देर तक बाहर रहते हैं, इधर वे घर में अकेली हैरान होती होंगी। मेरे कहने का मतलल है कि एक छोटा मोटा नौकर रख लें।"

बलिदत्त का हृदय उछल रहा है। हंस-हंसकर जोर-जोर से कदम रखते हुए जाकर अंदर बरामदे में। सरोजिनी कान लगाये थी, वह भी हंसमुख हो गयी मानो भूतिमंत ममता हो। फुर्ति से जूतों के फीते खोले, कोट खोला, फुसफुसाकर बोली—"जानते हो क्या हुआ, तुम तो थे नहीं, कोई आवाज दे रहा था। किवाड़ खोले तो देखा कोई मर्द है। मैं तो गड़ गयी। तुम्हारा नाम लेकर महापात्र ने पूछा, घर में नहीं हैं क्या ? अच्छा मैं बैठता हूं। जरा-सी चाय भिजवा दो। मुंह खोलकर आदमी चाय मांगता है। मन ही मन सोचा, ठीक है बिदुर के घर साग-भाजी ही सही, चाय बनायी, सोच ही रही थी ले जाकर कौन देगा ? नहीं तो ओट से देहरी पर नीचे रख आती, छिः क्या सोचते वे ?"

"क्यों, अंदर जाकर टेबुल पर रख आती तो क्या पाप हो जाता ? यही तो तुम्हारा उल्लूपन है। जानती हो, कितने बड़े आदमी हैं वे, उनकी ही कलम से तो मेरा दानापानी बढ़ा है। खुद चाय मांगी। ओह ! इतने सरल, उतने ही खुले आदमी हैं वे सदा से। उनकी बहुत दया है—बहुत दया है। खाली चाय दोगी ? नहीं कुछ भी बना दो। यही, जरा सा मोहन भोग।"

"कुछ बात कर रहे हैं बलिदत्त बाबू ! धत् आदमी रात में क्यों घूमने आये ! रहने दें डोंट माइंड इट। मैं चलता हूं—"

"सर, सर, और जरा, और जरा—"

"अच्छा, अच्छा मैं नहीं जाता।"

कुछ ही समय में दरवाजे के पास सरोजिनी आकर बगल में खड़ी हो गयी, हाथ में चाय और मोहन भोग।

अंग का आधा दिख रहा है, उसी आधे में भोज्य का नैवेद्य।

बलिदत्त ले आया।

महापात्र ने जोर से कहा—"तो फिर आज घर पर खाना खत्म करवा दिया आपने। यह क्या ? यह तो ब्लैक मेजिक।"

गरम-गरम मोहन भोग पर चार अंगुलियों की छाप, खूब सुंदर ढंग से उभरी है। महापात्र ने देखकर कहा, "ये देखिये। ठूंस-ठांस कितना कर दिया है। आपकी

पत्नी की अंगुलियां लगता है खूब छोटी-छोटी हैं। उस पर इतना काम।"

महापात्र हंस पड़े। बलिदत्त बेवकूफ सा हंस रहा है। नेपथ्य से सुनायी पड़ रही है खे खे की दबी-दबी हंसी। सरोजिनी बता रही है कि वह भी हंस रही है।

"कितना सुंदर मोहन भोग। वास्तव में आप की पत्नी एक रत्न हैं रत्न। मुझे तो ईर्ष्या होने लगी—हें हें हें हें।"

सुबह वाड़ी के पास राम बाबू की स्त्री—

"तुम्हारा तो खूब तोनाल मोनाल!"

"हें।"

"तुम्हारा तो खूब टन-छन।"

"क्या?"

"हमसे ही क्या छुपाती हो? अब तो बड़े हो गये, बड़े-बड़े आदमी आते हैं। हम गरीबों को और क्यों पूछोगी, बहन। ठीक है, इन आंखों ने कितनी बातें देखी हैं, कितनी देखेंगी। भगवान बड़ा करें, सुखी रखें। अरे, यह क्या कर रही हो? ये कच्चे पपीते झाड़ रही हो? पेड़ पर होते तो पक नहीं जाते?"

"लो दो साग कर लेना।"

"मैं क्या करूंगी। अरे रहने भी दो, रहने दो। पकेंगे।"

"दीदी, और क्या होगा, हम तो जा रहे हैं।"

"अरे, इसीलिए! नींबू के पेड़ में इतने कच्चे फल लदे थे, अभी देखा तो पेड़ नंगा हो गया। क्या सारे झाड़ दिये? तुम न खातीं तो चलो और कोई खाता। गये! गाड़ी भर नींबू लगते। इन दिनों नींबू कितने महंगे हैं, पैसे का एक! रहने दे, रहने, पपीते क्यों झाड रही हो।"

"तुम्हें अच्छा नहीं लगता क्या दीदी?"—पपीते में एक और लकड़ी खेंचती हुई सरोजिनी बोली।

"नहीं री।"

"तो तुम घर चली जाओ।"

"घर में नहीं तो क्या बाहर हूं। सब देख-सुनकर भी तो आंख मूंदे बैठी हूं और यह क्यों। ठीक है, चलो। रोपा हुआ पेड़ नहीं काटते हैं री।"

राम बाबू की स्त्री चली गयी।

सरोजिनी को सचमुच पेड़ काटने की इच्छा हुई।

पुराना घर छोड़ना पड़ेगा। अपने दखल अधिकार का कुछ भी नहीं छोड़ जायेगी। एक तिनका भी नहीं।

किंतु आदमी अपनी कई बातें पीछे छोड़ जाता है, इच्छा न होने पर भी सरोजिनी तथा बलिदत्त दोनों ने यही अनुभव किया। जब गाड़ी आकर खड़ी हुई, चीज-बस्तों का बांधना-रखना खतम हुआ, पुराने घर से जाना ही होगा।

केवल दूसरा मकान ही नहीं,—कंपनी का आर्डर था, स्थानांतरण। क्योंकि बलिदत्त की पदोन्नति हुई है, और कंपनी की नजर में वह और भी बड़ा दायित्व संभालने में समर्थ है, इसलिए उसे दूर जाना होगा। आशा से उत्फुल्ल है,—वेतन बढ़ गया है, साथ ही अपनी क्षमता दिखाने का अवसर भी मिल गया है। उसी दूरी पर उसे अपना भविष्य दिख रहा है, वह सीढ़ी है, जिसके ऊपर वह चढ़ सकेगा। हो-हल्ला, दौड़-धूप कर जाने का आयोजन किया है। गाड़ी में पूरा सामान—रखते-रखते जोर से बोला "चलो-चलो—" किंतु अंतिम क्षणों में छोटी-छोटी बात के लिए भी रुकता रहता है अन्यमनस्क भाव से, और तभी आदमी की चरम दुर्बलता अपने में प्रकट होती है कि चाहे वह जितना भी अग्रगामी हो पीछे अवश्य देखता है, क्योंकि अपना कुछ भाग पीछे रह जाता है जिसे साथ नहीं लिया जा सकता।

क्योंकि प्रकाश सिर्फ आकाश का सूर्य या टेबल की लालटेन ही नहीं फैलाती, आदमी भी समय पर अपना प्रकाश फैलाता है। अपनी ऊष्मा स्थान-स्थान पर बिछाता चलता है। अनुभूति लेकर स्पर्श की और स्मरण की अनुभूति दे जाता है। दे-देकर एक दिन वह बर्फ हो जाता है, अंधकार हो जाता है, किंतु वह परिणति एक क्षण में नहीं आती। वह एक क्रम है, जन्म से मरण तक का। यह घर उसका आधार था। यहां वह अपना कुछ छोड़े जा रहा है।

इतने दिन तक सुबह उठता तो यह था दृश्य, घर कहने पर यही चित्र उभरता। घर में बैठकर आकाश कहने पर चित्र तैर जाता यहीं से दिखने वाले आकाश का, इसी पट्टभूमि पर। रोज दतौन की है इसी जगह, नहाया है इसी जगह। देह की

क्रियायें मन की क्रियाओं के लिए अपने व्यक्तित्व पर नपे-तुले खोल की तरह चिपका है यह घर। यह परिवेश, जो उसके साथ लेन-देन में एकदम अंतरंग हो गया है। उसे आज छोड़ना होगा।

कंपनी की नौकरी करने पर कितने घर, कितने देश। गंगा किनारे पिता की राख, गोदावरी के किनारे माता की अस्थियां, विंध्याचल के नीचे किसी के भाड़े के मकान में अपना विवाह, तो समुद्र किनारे अपनी समाधि। चाकरी वाले उड़ती चिड़ियां हैं, किंतु वे उड़ते हैं कंपनी के आर्डर से। रास्ते पर बटोही चला जाता है, घर रह जाता है। हर्ज भी क्या है ?

पिछली चिंता के मकड़ी जाल को खींचकर तोड़ते हुए बलिदत्त ने आवाज लगायी, "चलो, चलो, देर हो रही है।"

सरोजिनी ने माथा टेक जाने से पहले किसी को प्रणाम किया। जाने के लिए सजी है, रंगीन साड़ी, चिक-चिक करती मांग में सिंदूर की रेखा, चेहरे पर स्नो, पैरों में महावर (अलत्मक)।

यही है उसकी पत्नी।

जाते समय मन भीगा होते हुए भी बलिदत्त उस दृश्य को देख उत्साहित हुआ। "चलो चलो" कह कर फिर अंदर देख आया—कुछ छोड़ा तो नहीं ? कुछ नहीं। टूटी बुहारी सहित सब कुछ बांध-बूंधकर गाड़ी में चढ़ा दिया है। जहां बगीचा था वहां केवल टूटी-फूटी डालियों का ढेर है, दरवाजे पर कूड़ा पड़ा है।

पिछवाड़े से भंगिन आकर प्रतीक्षा कर रही है, यदि कुछ हो तो ? दीमक खाये देवदारू के ढाबल के तीन पट्टे दरवाजे के बाहर पड़े हैं, टूटी-फूटी एक बड़ी हंडी, और बांस के चार टुकड़े। उसी ओर हाथ दिखाकर मन की उदारता से कहा, "ले जा। पिछवाडे में देख खूंटे पड़े होंगे, जला लेना।"

मुड़कर बाहर के दरवाजे की ओर चला। सरोजिनी को घेर कर पड़ोसिनें विदाई दे रही हैं। "जाती हूं दीदी ?" "जा रही हो ?" "गाली तो नहीं दोगी ?" "चिट्ठी देना री।" सखी-सहेलियों से कितने ही "नमस्कार—नमस्कार—नमस्कार।"

हठात् इस जाने की घड़ी में याद आती है—सच, कितने अपने थे ये लोग। और इनसे कभी भेंट होगी भी या नहीं।

पांच वर्ष का यह परिचित दृश्य। पढ़े हुए उपन्यास की तरह वह लौटेगा नहीं

इन आंखों के सामने । उपन्यास के चरित्रों की तरह भूल इन्हें जायेगा, इनके बारे में खास-खास बातें ही याद रहेंगी ।हंसी की, गुस्से की, गुप्त अफवाहें, घृणा, स्नेह अनुभूति। एक दिन की अपनी आलमारी की सजी-धजी चीजें । घर-गृहस्थी । वह भूल जायेगा । इनके नाम—गांव भूलेगा । घूमते-फिरते दस साल बाद कहीं रास्ते में भेंट हुई तो सोचेगा शायद इन्हें कहीं देखा है ।

परिचित दृश्य पराये हो जायेंगे ।

"अच्छा, जी, चलता हूं, नमस्कार ।"

बैलगाड़ी कचर-कें करती हुई चल पड़ी, बलिदत्त बैलगाड़ी ही लाया है, वह फिजूल खर्चे का विरोधी है ।

सरोजिनी पीछे की ओर देखती है। कालेज छात्र भी देख रहा है । दूर आकाश में उड़ती पतंग को उसकी खाली दृष्टि देख रही है । आंखों में भाषा नहीं । सरोजिनी उसे दूर से देखकर हंस पड़ी। वैसे उसकी दृष्टि गूंगी है, चेतनाहीन ।

पतंग उड़ रही है,—उतर आती है—पतंगों के दांव-पेंच चल रहे हैं—पतंग कटती है—फिर भी पतंग उड़ रही है—पतंग उड़ती है ।

अब कभी भेंट नहीं होगी,—सरोजिनी ने सोचा।

वैसे एकटक एक लय खाली बेवकूफ-सा वह देख रहा है । दूरी के कारण उसका चेहरा छोटा हो आया । कितना छोटा। धुंधला पड़ रहा है । दुर्बल । याद नहीं आया कि वह व्यायाम करता है, वंशी बजाता है, शेक्सपीयर को सांड की तरह रंभा-रंभा कर जोर-जोर से पढ़ता है । वह दुर्बल है । उसने गति भूली है, भाषा भूली है।

क्यों ?

भीगी आंखों से दूर देखते हुए सरोजिनी को खयाल आया,—वह लाड़ करती, दोनों हाथों से उस छोटे से चेहरे को उठा अजस्र लाड़ से बल देती इस दुर्बल को ।

छाती भर-भर आयी, हृदय में प्रवणता की कलकतिया पतंग,—गिरते-गिरते गिरने लगती है, फिर उठती है। अनायास ही आंखों से झर पड़ीं दो बूंद । ये लो,—गाड़ी मुड़ गयी ।

"वह देखो महापात्र जी का मकान ।"

सरोजिनी ने गरदन मोड़कर देखा, कोई नहीं, फिर भी सिर पर पल्लू खींच लिया । लगा,—चेहरा सच जल रहा है । वहां भी कटी है पतंग की डोर, बस

खाली गहरी सांस।

"और यह देखो हमारा दफ्तर—हमारा दफ्तर—मैं कहां बैठता था जानती हो ? देखो, वो जो काला पट्टा टंगा है न, उसके थोड़ा-सा पीछे—"

कबूतर खाना, पीजन होल।

"मंदिर के कबूतर फड़फड़ा रहे हैं।"

"और कभी यदि आऊंगा तो उस तरफ कमरे में बैठूंगा, देखो।"

सरोजिनी सुनकर भी नहीं सुनती। तिरछे देख रही है। कंपनी का दफ्तर लगा है। बखारी पर के कबूतर याद आ रहे हैं,—बग्बगुम्कुम्-बग्बगुम्कुम्—बैलगाड़ी कें-कें करती चल रही है। कभी-कभी लगता है उसकी कें-कें एक आदमी की रुलाई है। साक्षात् आदमी की जीभ से उसकी आपत्ति, अभियोग, विलाप की ध्वनि, लड़खड़ाते, गिरते, उठते, घिसटने की तरह, फिर भी वह चल रहा है, देखता नहीं। रास्ता कितनी दूर है। कितनी दूर।

सूर्य उग आया।

नयी जगह।

रेल से उतर कर स्टेशन के बाहर आते समय अधेड़-सी उम्र का लंबा आदमी खड़ा अधगंजे सिर पर पगड़ी बांधने मे लगा था। घबरा कर सिर झुकाते हुए बोला, "दंडवत मां, दंडवत हुजूर, मैं हुजूर का चपरासी हूं, गाड़ी खड़ी है।"

बलिदत्त ने जरा ऐंठते हुए गंभीर होकर दो बार उसकी ओर देखा। सरोजिनी केवल हंस पड़ी, बोली, "तुम्हारा नाम ?"

"जी, हुजूर मुझे 'निता' कहते हैं।"

उसकी सफेद पतलून। मुड़ा-नुचा और गंदा सफेद कोट, उस पर चौड़ा फीता, जिस पर पीतल के तगमें पर कंपनी का नाम झलमला रहा है। बलिदत्त के चेहरे से सरोजिनी के चेहरे तक सकपका कर देखते हुए निता चपरासी विह्वल हो कह उठा, "मेरा बाप नहीं, मेरी मां नहीं, आप ही मेरे मां-बाप हैं। आपके भरोसे ही पड़ा हूं।"

सरोजिनी फिर हंस पड़ी। जीवन में पहली बार किसी ने उसको आत्मसमर्पण किया है। अननुभूतमातृत्व से उसका मन भर उठा, चेहरा गौरव से चमक उठा है। उसने लक्ष्य किया,—उसका हड्डियों वाला चेहरा, छलछलायी आंखें, जले होंठ, सफेद बाल, यहां-वहां दाढ़ी के खूंटे, गाल का झुर्रियां पड़ा चमड़ा, जिस पर जगह-जगह कुछ लगा है, उसके अस्थिर पैर। सरोजिनी उसके साथ बातें करना चाहती है,—"मिता, तुम्हारी जाति क्या है ? घर कहां है ? बाल-बच्चे कितने हैं ?" बलिदत्त कुछ दूर हटकर अधीर हो धरती पर जूते पटक रहा है। चिल्लाया "निताय, आओ जरा," फिर जोर से बोला—

"निताय—यहां आ।"

"हुजूर—" निताई चीखता-सा भागा।

"तुम चपरासी हो ?"

"जी हां हुजूर।"

"कब से काम कर रहे हो ?"

"बीस वर्ष हो गये हुजूर।"

"बीस वर्ष।" बलिदत्त ने रुंधा हुआ गुस्सा एक साथ उंडेल दिया, "बीस वर्ष। और तेरी अक्कल खुली नहीं रे बुड्ढे। गाड़ी आयी, गाड़ी छोड़ दी और तू आराम से बाहर खड़ा है। रेल से उतारने गया नहीं। सामान उतरवाने नहीं गया। बाहर खड़ा गप्पें मार रहा है, गप्पेड़ी कहीं का—"

यह पहली बार है। याद आता है वे इसी तरह की बातें कहते हैं। वही जिनकी तरह होने का स्वप्न वह देख रहा था उस दिन—ये—फौलादी इंसान।

और किसी आदमी को लताड़ते समय यदि वह चुपचाप खड़ा खाली अपने हाव-भाव से आहत की तरह घाव दिखाये तब तो लताड़ने में कितना मजा आता है। मुंह से गाली की भाषा में फूल झरते हैं। लावा भूने जाने की तरह शब्द होता है। मुख-सुख से हस्त-सुख करने को जी करता है, इसे परखने के लिए ही जाग उठा था बलिदत्त के अंदर का बड़ा आदमी, तेज होकर वह बड़ा हो गया था।

"जाता है या नहीं, हैं ? काम सीखा नहीं, सीखना पड़ेगा। सब ढीला-ढाला, क्यों ? इस तरह कंपनी का काम नहीं चलेगा, कहे देता हूं, एक लकीर में उठा दूंगा दानापानी तुम्हारा, जानते हो मुझे ?"

निताई हड़बड़ा उठा है। उसका देहयंत्र एकदम हिल उठा। पर वह बूढ़ा हो

चला है, उसने आश्रय लिया था एक मढ़िया का जिसकी छाजन टपकने लगी है। दानापानी की आशंका से काम करने के लिए उसका सारा अंग-प्रत्यंग कांप उठा है, किंतु उसमें समताल नहीं। दोनों पैर दो ओर लरज रहे हैं, और हाथ दोनों दूसरी तरफ। नाना भंगिमा से लरजता-झुकता तेजी से जा रहा है, उसका मुंह एक बैलगाड़ी की ओर है। गाड़ी वाला पत्ते में तमाखू लपेट पीका बना रहा है। निताई चेहरा विकृत कर बाबू से पायी हुई गाली मूल्य-ब्याज सहित मिला कर वीभत्स भाव से फटकारने लगा, "तेरी—"

गाड़ीवाला भी अलसाया-सा बैठा था, युद्ध की सूचना पाते ही सजग हो उठा, "क्या ? भाड़े की बात तो पटी ही नहीं, फूटी कौड़ी भी नहीं, खाली जोर गांठते हो ? मुंह संभाल कर बात करो। कोई तुम्हारा खातेदार नहीं है या कोई तेरी जमींदारी में नहीं बसता। हूं, गाली देता है ? देख—"

बक-झक शुरू हो गयी। निताई चक्र की तरह उसके दोनों हाथ हिला रहा है, दोनों ओर से नाना प्रकार की गालियों की वर्षा। लोग जमा हो गये। उधर बलिदत्त अपने हाथों घसीट-घसीट कर चीजें इकट्ठी कर रहा है। सरोजिनी टहल रही है, कुली लोग बलिदत्त को घेर कर मजूरी के लिए धींगामुश्ती कर रहे हैं। गाड़ीवान लड़-झगड़ घड़र-घड़र करता अपनी गाड़ी लेकर चला गया, कहता गया है, "बाबू-बाबू, मैंने क्या बाबू नहीं देखे हैं, बहुत बाबू बाबू लगा रखी है—"

निताई लौट आया है, गाली बकता, पसीने में तर।

बलिदत्त गरम हो गया। खुद बढ़ गया। थोड़ी दूर पर एक और बैलगाड़ी। गाड़ीवान प्रतीक्षा कर रहा था, बैलगाड़ी और नहीं है।

"कितना लेगा ?"

"तीन रुपया।"

"दो रुपये ?"

"नहीं।"

"अच्छा चल। ऐ चपरासी, सामान लाकर गाड़ी में लाद।"

"जी, हुजूर।"

"मकान ठीक है ?"

"हुजूर।"

नयी-नयी सुबह नये अफसर ने अपना रूप दिखाया है।

चपरासी समझ गया।

सरोजिनी देख रही है। यह उसका नया घर,—सामने बगीचा, पीछे बाड़ी, बड़ा आहाता। सच, घर तो खूब बड़ा है।

बड़ा घर है,—पुराना गया, नया आया। गाड़ी से उतर कर चारों ओर घूम कर सामान उतार कर बीच में रखा। इसी क्षण अपना हो गया। कितनी जल्दी। देखते-देखते वह कल्पना कर चुका है इस कमरे में बैठक होगी, वह सोने का कमरा, वहां भंडार, उधर रसोई,—आदि। चीजें लाते-लाते निताई हांफ उठा है, अलसा गया है।

"नौकर भी ठीक कर रखा है, मां जी! अच्छी जात का है, कहें तो ले आऊं।"

"पूछता क्या है?" बलिदत्त ने कहा, "जल्दी ले आ, सस्ता तो है?"

"हुजूर जो भी देंगे।"

बलिदत्त का मन भी खुश है। मजाक के लहजे में बोला, "अरे उल्लू, कहा करते हैं न—गाय काली हो, पूंछ तले घिसटती हो, खाती थोड़ा हो पर दूध ज्यादा दे।"

"हुजूर की बुद्धि! आहा हा! सच धर्मावतार हैं, कैसे वचन, मां जी कैसी बात—" निताई ने कहा, फिर मां जी के कान के पास फुसफुसा कर बोला, ताकि बाबू भी सुन लें,—"अकेले हुए तो क्या हुआ, बहुत बड़े हाकिम हैं। ये काम करायेंगे, काम जानते हैं, पहले हाकिमों की तरह नहीं हैं। काम में तो राहू हैं, साहब के लाडले हो जायेंगे—"

"पहले मेरे कपड़े-लत्ते तो निकाल, जरा साहब के पास हो आऊं।"

"नहाना-धोना?"

"तुम देती क्यों नहीं? समझती तो हो नहीं, नयी जगह ठहरी।"

सरोजिनी ने पोशाक निकाल दी। उस कमरे में बलिदत्त कपड़े बदलता है। इस ओर निताई, "चाकर को बुला दूं मां जी?"

"चाकर!"

पहले किसने कहा था? याद आ रहा है। मन कसैला हो उठा। एक टूटी हुई स्मृति, छूते-छूते झर जाती है, गहरी सांस लेती है।

"रहने दे, नौकर की क्या जरूरत है, निताई, कुल दो प्राणी तो हैं, मैं अकेली

कर लूंगी। उस पर तुम तो हो ही, जरा-सा हाथ बटा देना।"

"लोग क्या कहेंगे, मां जी, उलाहना देंगे। कहेंगे बाबू के घर में नौकर भी नहीं ? नौकरानी नहीं ? बाबू क्या ऐसे-वैसे हैं। साक्षात् अफसर, भोर होते ही बारह तरह के लोगों का आना-जाना। मेरे रहते-रहते कोई बाबू की ओर उंगली उठायेगा ? नहीं तो यह भी कोई काम है ? मुझे जरा वात हो गया है, बूढ़ा हो गया हूं, रात में बुखार चढ़ता है। आप की दया से कितने बाबुओं की सेवा की है, अकेले इन्हीं हाथों से पकाया है, घर बुहारा है, लकड़ी काटी है। इधर, देह जरा ठीक नहीं रहती, जब देह ठीक होगी, आप देखेंगे मेरा काम। फिर पेट भी दुखता है। पर, यह सब हमेशा तो नहीं रहता ?"

"इस घर में कौन-कौन थे निताई ?"

"अठारह बाबुओं की सेवा कर चुका हूं मां जी। इस घर में चार बाबू तो मर चुके हैं।"

"मर चुके हैं।"

"मरे हैं। मरे-जीये का कौन दायी है, मां जी, जनम-मरण तो लगा ही रहता है। आप के धरम से मैं भी किसी दिन आंखें मूंद लूंगा, बस भगवान से इतनी ही अरज है, मैं इन्हीं बाबू-बबुआइन के पैरों में ध्यान करते-करते प्राण छोड़ूं, तब मुझे बैकुंठ मिलेगा। जीवन भर अफसरों की सेवा की, मरती बेला में अफसर देखे बिना क्या आंख मूंदूंगा ? हां, मां जी, चार-चार जन गये इसी घर से, खुद गाड़ी चढ़कर जाकर उनके बाल-बच्चों को छोड़कर आया हूं। इसके अलावा इस घर में दो की बहुएं मरी हैं, एक की पत्नी मरी, बच्चे तो चार-छह। उनके लिए भी मैंने आग जलायी है, डुबकी ली है, काम पड़ने पर मैं कभी पीछे नहीं हटता। साटीफीकट रखे हैं मां जी। दिखाऊं।"

"भाड़े के घर में नहीं रहते ?"

"और भाड़े के घर का क्या होगा ? यहीं तो ठीक है, सारी सुविधा है, भाड़ा भी नहीं, आफिस भी पास और बजार भी निकट ही।"

"पर इतने आदमी इस घर में मरे बताते हो ?"

"वैसे क्या मरते नही मां जी, विधि का विधान कौन टाल सकता है ? घर छोड़ कर कौन जाता है ? यही देखो ना, मां जी, यह जो माटी, हम जहां बैठे हैं, कौन जानता है यहां क्या है ?—"

"हूँ।"

सरोजिनी ने आंखें फाड़-फाड़कर चारों ओर देखा। क्या कहता है यह आदमी ! देह थर्रा उठी है।

"नहीं मां जी, मैं कहता था कि, ये जो इतने लोग मरते हैं, ये कहां जाते हैं ? इसी मिट्टी में तो ? यह दुनिया एक मुर्दाखाना, इसी मिट्टी में सबका हाड़-मांस मिला है। कहां गये वे लोग ? इस मिट्टी में तो ? और यह धरती, यह वसुधा,— शास्त्र कहते हैं यह—असुर की हड्डी है, उसी हाड़ों के ढेर पर हम घर बनाते हैं, उसी हड्डियों के ढेर से रस लेकर, तोरई, करेला, साग-भाजी फलते-फूलते हैं, हम उन्हें खाते हैं, उसी रस से आलू, गाजर, शलगम—"

"रहने दे, रहने दे निताई, वह सब न बोल—"

"कुछ नहीं माजी ! चावल-दाल धान के पौधे, मूंग के पौधे, सब पेड़-पौधे इसी हाड़-मांस के ढेर से खाद लेकर बढ़ते हैं। उसी का रस पोरता है, फलता है, उसी मरे आदमियों के हाड़-मांस—"

"छोड़ो ! रहने दो, रहने दो, ये सब सुनने पर कुछ खाने को जी नहीं करेगा—"

"मां जी, मन होगा नहीं, तभी तो मैं कम खाता हूं, सोचता हूं यह तो आमिष है, यह तो औरों का रक्त है, क्या करें,—विधाता ने इतना बेहाल कर रखा है। यहां दूसरों का रक्त-मांस खाये बिना आदमी जी न सकेगा—"

"माई री—"

सरोजिनी चारों ओर देख रही थी खाली हाड़, रक्त, मांस अति निर्दोष माटी का चेहरा वीभत्स दिख रहा था। निताई उसका चेहरा देखकर खुश हो रहा था, शांति से ऊंघने का उसका ढंग टूट गया है। बबुआइनपन खिसक गया है। बस एक औरत दिख रही है। जिसे डर लगता है। बोला, "यह बरहमग्यान, मां जी, दुनिया खाली आने-जाने का नाम है, यह सोचने पर माया कटती है। रहने दें, इतना न सोचें, सब तो विधि का विधान है, और क्या करें बोलो। चाकर लाऊं क्या ?"

"हां, हां, ले आ निताई, कोई नहीं, सूना-सूना—"

"और मैं सोचता हूं, एक नौकरानी रख दूं तो ठीक होगा, इतना बड़ा घर, घर में आदमी से ही तो शोभा होती है मां जी, बाबू और मैं तो खाली दौरे पर घूमते

रहेंगे, घर में दो आदमी रहें तभी तो ? सस्ती-सी एक रख दूंगा, खा-पीकर दो-चार रुपये ले लेगी —"

"दो-दो, तनखा कितनी है जो—"

"रुपयों की बात मुझ पर छोड़ दें मांजी, इस राज में सोना फलता है। बाबू जानकर भी नहीं जानेंगे। सब मैं करा देता हूं। इतने बाबू आये-गये, क्या खाया होगा, कितना कुछ नहीं पिया, क्या-क्या नहीं लिया ? यहां रुपये तो बोरों में भर कर नापे जाते हैं, सब मैं करा देता हूं। आपको किस बात की चिंता ? बस और घरों से मांएं आपके यहां महीने में एकाध बार आयें, तो मुंह सुखाकर मुझे कहती रहा करें—निता, घर में आज तो चावल नहीं है रे, कहीं से दस-पांच उधार ही ले आता। दरवाजे के पास जरा ऊंचे स्वर में फुस-फुसाकर कहना, सब सुन सकें और बाबू भी दफ्तर से दस-बीस हर महीने किरानी बाबू से उधार लाते रहें—"

"क्या, करज करके नौकर-चाकर रखे जाते हैं ?—"

"नहीं जी, यह तो खाली लोक दिखावे का, समझतीं क्यों नहीं। उसमें भी एक बात है। लाग यही समझें कि तुम उधार लेकर काम चलाती हो, लोगों की ईर्ष्यालू आंखें हैं ना, उनमें धूल झोंके बिना रुपये नहीं उपजेंगे। नहीं तो वे बदला नहीं लेंगे ?"

सरोजिनी ने कुछ कहा नहीं। यह दानापानी का नया व्याकरण है, उसके मन में नाना विचार आते हैं। सोचती है, यह नित है, इसके मुंह पर पाप है।

मिस्टर 'श'।

'श' पद युग-युग से स्नेहमय मधुर संबंध की सूचना देता आया है। हमारी भाषा में उसका एक खास स्थान है, ज्यादा प्रयोग में जीभ के आगे वह 'ह:' भी हो जाता है। वाक्य के अंत में मन ही मन उसका उच्चारण कर कोई-कोई तो नयी उमंग पाते हैं, नया उत्साह पाते हैं।

और 'श' में यहां एक व्यापक सार्वजनिकता है। संगी का संबोधन संगी को, हलवाहे का बैल को, मजदूर का अपनी स्त्री को, सबका सबको।

किंतु 'श' के गठन में स्नेह का अंश नहीं है, काला-कलूटा, मोटा-सोटा, डेंगू आदमी, फावड़े-सा चेहरा, गंभीर, रुक्ष और निष्ठुर। सिर पर कदंब के फूल से बारीक-बारीक कटे बाल, कांच की-सी आंखें। मोटे होंठों पर आधी बांक मानो बायीं ओर का गाल हरदम लटकता रहता है। अस्वाभाविक रूप से मोटी गर्दन, जो हठात् मुड़कर एक भंगिमा में मुड़कर रह जाती है, गद्दर हाथ किसी जंतु के पंजे की तरह, मटके-सा पेट, दिखाने में सदा ताक में रहने का भाव, यह कूदा—की-सी भंगिमा। याद आ जाता है फूलका के पास कुश्ती के अखाड़े का खलीफा।

किंतु खलीफा में तारुण्य नहीं, प्रौढ़त्व है।

सम्मान पाते-पाते अहंकार बढ़ गया है, उधर गृह-जंजाल बढ़ते-बढ़ते दिन पर दिन खीझ बढ़ती गयी है, दानापानी की उन्नति के लिए अनेक क्षेत्रों में त्याग दे-देकर क्रमशः त्याग की चेतना में मन धू-धू जल रहा है।

ऐसा आदमी स्नेह शील नहीं होता। न ही सार्वजनिकता का अधिकारी। जिसकी चाल से धरती थर-थर कांपती है, जिसके स्वर से पेड़ की चिड़ियां फुर्र उड़ जाती हैं, जिसके प्रकोप से लोगों में त्राहि-त्राहि मच जाती है, वह सार्वजनिक नहीं, स्वतंत्र है। आस-पास के मानव समाज की ओर कभी निगाह डालता है, तो उनसे मिलने के लिए नहीं, उनसे वसूल करने के लिए। मानव देखने की अभिज्ञता उसे नहीं है। वह तो देखता है निर्जीव खिलौने, उसकी दुनिया सिर्फ कठपुतलियों की दुनिया है। गहन मन की विकृति की रूपांतरित इच्छा के दबाव से इस कठ-पुतली के मेले में घुड़दौड़ खेलने को मन करता है, कि कठपुतली का सिर किस कठपुतली के पेट से टकराकर टूट जाता है, पुतली जगत में गड़बड़ मचाकर वह उनकी अवस्था देखता है,—कौन-सी चित-पटांग, किसका सिर नीचे पैर ऊपर, कौन-सी टुकड़े-टुकड़े हो गयी है, वह इस दृश्य का उपभोग कर आनंद पाता है, चाहे लोग उसे सैडिस्ट कहें या कुछ और।

अथच वह 'श' है, क्योंकि वहां 'साहू' पद से 'श' पद का साहबी प्रकाश है,—बाहर वह सूट साधे रहता है, खोपड़ी पर टोप लादे, मुंह में चुरुट खोंसे, हाथ में छड़ी थामे। बंद्योपाध्याय के बदले 'बनर्जी' की तरह पुश्त-दर-पुश्त 'साहू' का अंग्रेजी भेष तालव्य 'श' सुनने में अपने आपको खुशी-सी लगती है।

मिस्टर 'श' एक कर्मचारी हैं, साधारण नहीं,—कंपनी के साहब हैं।

प्रकांड मिस्टर 'श' बैठे हैं। दोनों ओर काठ के रैं में ढेरों कागज, उनमें बड़ी-बड़ी

समस्याएं हैं। बड़ा कमरा है, खिड़की और दरवाजों पर मोटा पर्दा टंगा है। बाहर के प्रकाश का विकल्प इस कमरे में टेबल पर बिजली की रोशनी हो रही है। टेबल के उस ओर आगंतुक के लिए एक कुर्सी, हाथ वाली और एक कुर्सी,—जरा पुरानी, उसका एक हाथ अदृश्य है, पड़ी है। एक स्टूल है। आगंतुक को यदि बैठने की बिलकुल जिद ही हो तो उसका पद देख, विचार कर इन तीन आसनों में जिसके योग्य उसे 'श' समझता है, उसे वही आसन देता है। 'श' को सोचने के लिए फुरसत चाहिए, नहीं तो आगंतुक खड़ा रहे।

कमरे के अंदर एक ओर काठ का कपड़ा लटकाकर एक ऊंचा पर्दा टंगा है। उसी की ओट में खड़े हो पेशाब करने का बर्तन और एक पाखाने जाने का ठीया। ये दोनों ही काम 'श' उस पर्दे की ओट में करते हैं। यह साहबीपन का लक्षण है, कमरे की बासी गंध में पेशाब की कड़ी गंध स्पष्ट हो जाती है। उसी कमरे के दूसरी ओर एक पर्दे की ओट में नाश्ते के बर्तनों की, जलपान और खाना रखा जाता है, फ्लास्क में चाय। वहीं अलगनी पर एक तौलिया, खाने के लिए एक टेबल, उस पर मौके-बेमौके प्रसाधन के लिए एक आईना भी रहता है।

मिस्टर 'श'—बैठे लिख रहे हैं। कलम को जोर से दबाकर पकड़े लिखते जा रहे हैं मानो कागज के साथ कसरत कर रहे हों, चेहरे की मांसपेशियां संकुचित हो तन जाती हैं, चेहरे के भाव स्पष्ट दिख जाते हैं, कभी हिंसा के, कभी क्रोध के, कभी तर्क के तो कभी कुटिलता के।

टेबल पर रखी बुलाने की घंटी पर थाप पड़ी, घंटी चरचरा उठती है। उधर अलसाया दीवार के सहारे बैठा चपरासी हड़बड़ा कर उठ खड़ा होता है और कमर झुकाकर सलाम कर कहता है, "हजूर ?"

"बुलाओ।"

"हुजूर।"

वैसे ही हड़बड़ी में तीर की तरह चपरासी बाहर चला जाता है, इधर-उधर देखता है ? कतार की कतार बाबू लोग बैठकर काम कर रहे हैं, फिर छोटी-छोटी कोठरियों में छोटे-छोटे साहब, आफिस के बड़े बाबू। साहब ने कहा है बुलाना ही होगा। किसे ? बुद्धि लगाकर चपरासी दौड़ा बड़े बाबू के पास, वही बासुआ बैल, सारी बलाय संभाल सकते हैं पहले वे ही।

"साहब ने सलाम भेजा है, जी !"

बड़े बाबू तेजी से उठकर दौड़े कमरे की ओर, जाते-जाते अभ्यस्त हाथों से कोट के बटन बंद कर लिये। साहब लिख रहे हैं, खड़े रहना पड़ा। सिर उठाये बिना सिर्फ आंखें ऊपर कर साहब बोले—

"काम किया ?"

मुंह से निकल पड़ा, "क्या काम ?"

गरज कर साहब बोले, "क्या काम ? कितनी बार कहूं ? इसे मिला कर सोलहवीं बार हुआ। बोलो, किया या नहीं ?"

जल्दबाजी में बड़े बाबू को कहना पड़ा, "चल रहा है, चल रहा है, बस पूरा होने को ही है, कल रात भर लगा रहा।"

"अच्छा जाओ,—अब तक खत्म नहीं हुआ ? कितने निकम्मे लोग हैं।" मुंह लटकाये बड़े बाबू चल पड़े। बाहर आकर चैन की सांस ली। काम क्या, वे नहीं जानते, डेढ़ सौ काम होंगे, पूरा हो गया न कहकर, बाकी रह गया कहकर आने में भूल हो गयी।

क्या उत्तर उन्होंने दिया है, किस काम के बारे में वे नहीं जानते। फिर भी सवाल आने पर उत्तर तो देना ही पड़ेगा। प्रश्न बाहर से भी आता है। आधी रात में टेलीग्राम—अलग-अलग डिपो में तुम्हारे कितने बैल हैं टेलीग्राम करो, इस साल कितने एकड़ में तंबाकू की खेती कितनी हुई है टेलीग्राम करो।

जवाब में टेलीग्राम करना ही पड़ता है। खोजकर तथ्य जुटाने तक उत्तर को अटकाकर रखे बिना वे बड़े बाबू काम पर अधिक दिन नहीं टिक सकते थे।

बड़े बाबू गये, साहब कमरे में अकेले हैं।

कागज पर जोर-शोर से कलम का हल चलता रहा।

बाहर शादी की शहनाई सुनायी पड़ रही है। शहनाई बज रही है। बज भी खूब मीठी रही है। एक लहर मन को किसी अतीत की ओर बहा ले जाती है।

साहब चिढ़ उठे—ओह ! आदमी जन्मेंगे, ब्याहेंगे, घर बसायेंगे, मरेंगे। जीवन की साधारण घिसी-पिटी बातें कितनी चिढ़ाने वाली होती हैं। बाहर वही हाट की घों-घां। कपड़े की ओट में स्वार्थ को चिपटाकर अपने-अपने उद्देश्य में एक-एक आते-जाते हैं, वही जिद, वही आपत्ति, वही सुख, वही दुख।

दूर विवाह की बारात चली आ रही है, दिन में लगी है ढो-ढा, शहनाई बज रही है।

बोतल भर दारू पी चुके हैं।

वही बात, वही बात, विराम नहीं। मानो कतार की कतार बैलगाड़ियों की वही कटर-कें एक-एक कर रास्ते में चल रहीं हैं।

घिरे बादलों की तरह उमस भरा जीवन। लोग सूअर की तरह कीचड़ में लोट-पोट होते हुए भी जीवन को भोगने में व्यस्त हैं।

यही जीवन है।

दूर शहनाई की मीठी तान गूंज रही है। मन स्थिर नहीं रह पाता।

चलने दो यही जीवन। कागज पर कलम स्थिर हो गयी, गर्दन मुड़ी। चेहरे पर एक क्रूर अधूरी हंसी झूल रही है। अर्ध चेतना में फूल झाड़ी की तरह कोई स्मृति उठ रही है, लाल, नीली, बैंगनी, पीली नाना प्रकार की। परिचित मन जोर-जोर से चीख रहा है,—कुछ नहीं, यह दुर्बलता है, यह झूठ है, बिलकुल तुच्छ। यह साधारण लोगों जैसी चेतना।

खुद वे,—इस दफ्तर की कोठी के डिक्टेटर।

डिक्टेटर। एक ही ठोकर में उड़ा सकता है—कई-कई लोगों का भाग्य, दाना-पानी का आसरा। मुंह का कौर छीन लेने पर ऊंचा सिर भी अपने आप झुक जाता है। आदमी बिलबिला कर रो उठता है। हजार दोस्ती हो, बीच में किसी की पत्तल में बचा खुचा जरा सा अधिक उड़ेल दो, दस जने झपटते हैं। अनेक तरीके से छीना-झपटी करने की चेष्टा करते हैं। बंधुता हवा में मिल जाती है। लड़ा देना बहुत सहज है, बस जरा सा आश्वासन दे कर। इसके बाद देखो आदमी रूपी पशु लड़ रहे हैं, धर-पकड़, लुढ़क-पुढ़क, नोंचना-खसोटना हर तरह से। गर्जन से आकाश फट पड़ता है,—कितने दुष्ट हैं। सच मानो रास्ते के कुत्तों की लड़ाई चल रही है।

चेहरा और गाल मटकते, चुलबुले छोकरे चले जाते हैं। आंखों में सर्वजयी आशा, कार्य में गंभीर आनंद का उच्छ्वास, चाल में छंद और मांसपेशियां नाचती सी। दो-एक दिन तो घानी के बैल की तरह जुतेंगे, फिर दो-चार दिन उसी दाने-पानी का चक्कर चलेगा। इसके बाद फूल कुम्हला जाता है। यौवन वृद्धावस्था के आगे सिर झुका लेता है, गुठली से गालों पर खुरदरी खाल। घायल निस्तेज आंखें,—वे किसी को सामने देखने में डरती हैं, यौवन का ध्वजभंग अंतराल में छिपा लेती हैं। इसके बाद वह भी एक मशीन बन जाता है। सूर्योदय या सूर्यास्त देखने

को मन कभी छटपटायेगा नहीं। खेल खेलना या देखना उसे कभी याद भी नहीं रहेगा। किताब पढ़ने के आनंद से लेकर दोस्तों के बीच घूम कर गप्पें मारने तक के सारे आनंद की चेतना मुरझा जाती है। खाली मशीन, बैठो कहने पर बैठेगा, उठो उठो कहो तो उठेगा, फूल लेकर सलाम देगा, खोखले स्वर के कोरस में प्रशस्ति गायेगा। केवल एक चेतना है उसकी,—सुविधा मिली तो आगे बढ़ कर दानापानी के बिखरे टुकड़े समेटेगा,—"एक मुट्ठी और सर, एक मुट्ठी और, हे भगवान। बस मुट्ठी भर।"

दूसरी ओर का अनुमान लगाया जा सकता है। उस की गृहिणी, मेंहदी लगा, लाख पहन देवी सी सजकर आयी थी,—लाश की विषैली सांस का वह गरजता कंकाल है, उग्रहस्त है, अभाव में अर्द्धमानवीय संतानों का समूह। सब मिल कर अशांति और हिंसा से युक्त, मानो मरण देवता की प्रचार वाहिनी है,—"मरण को नमस्कार कर, जीवन नहीं, मरण है, आओ, हे मरण, चिता में माया जाल बिछा कर आओ, शीघ्र आओ।" गृहिणी चिल्लाती है, "मर मर मर मर।" संतानों का झुंड पारी-पारी से नाचता है रेइ घेइ करता हुआ।

हाः हाः हा. हाः—डिक्टेटर,—हो हो हो हां—बारबार मारता है वज्र,—जीवन, कैसा प्रतिशोध ? मर मर मर मर।

बारात दूर चली गयी है, दूर से शहनाई की टूटी सी हूक रुक-रुक कर सुनायी पड़ जाती है, कभी-कभी नहीं सुनायी पड़ती।

उस ओर की लहरों की तरह बहती-बहती चली आती।

उसका कोई लंबा-चौड़ा आडंबर नहीं, न ही विलायती बैंड के साथ पलटन का जुलूस। कान बहरे करते जमीन को जूतों की टाप से हिलाते, हवा पर व्यापक आक्रमण नहीं करता, और न ही उसे पीतल सा चमचमाता लोक दिखावे का आभिजात्य पसंद है।

खाली दूर से शहनाई। बाप-दादों के जमाने से गांव-गली का पुराना तरीका। हाथ छुआने भर की दूरी तक आती है फिर दूर चली जाती है। रुक-रुक कर बज रही है।

बाहों में नहीं बांध लेती। रुकने का जरा भी प्रयास नहीं करती। सिर्फ छूकर भाग जाती है, छू-छू कर सिर्फ। चिल्ला कर छिप जाती है बगीचे की आड़ में, ये देखो दूर हटती जा रही है।

वह तो, उलझी···छूटो···

फिर भी मन दोड़ उसके पीछे-पीछे पड़ता है। दूर से उसकी टूटी लहरें चुनने के लिए चेतना कान लगाये रहती है।

कहां, कब की बातें हैं वे तो,—कल सुबह की सी लगती हैं। शहनाई की दूर होती जाती गूंज के बाद में दिखती है सघन अमराई, आम में बौर आये हैं। दूर से दृष्टि फेंक कर देखने से अंकित हो जाता है, धूप जली पीली टेढ़ी मेढ़ी उसकी ही प्रतिच्छवि, ढेर के ढेर खेतों की सपाट माटी, खेतों में कटे हुए धान के पौधों की जड़, पाल पर सब्ज लता के मोटे पत्तों के बीच छोटे-छोटे पीले फूल। मोहल्ले में नयी-नयी छान के घर। सब जगह हल्दी, वही,—वासंतिका।

शहर की किताबी दुनिया से जरा हट जाने पर यहां कैसी शांति है। पेड़-पौधों की कतार, छप्पर के घर खेत और बगीचे। समय के अनंत चंदोवे तले, जहां गीत नीरव हैं किंतु निश्चित।

जहां जीवन संदेहाकुल नहीं, सरल है, स्वच्छ है।

"साहू हो, घर पर हो क्या ?"

"मिस्टर 'श' नहीं, साहू।"

"बैठो, पान लगाओ, अरे—पान देना, पान।"

बैठ कर अलसाया आलाप करना, इत्मीनान से पान के पत्ते पर चूना लगा धीरे-धीरे सरोते से टुकुर-टुकुर सुपारी कुतरना, गुंडी मसल कर गलफड़े में रखना, एक खत्म हुआ दूसरा लगाना।

स्नेहिल दृष्टि से देखते रहना देहात का रोजमर्रे का स्नेहपूर्ण काम-काज गांव-गली में जहां प्राचीन देश का हृदय धड़क रहा है, उसी तरह स्नेहिल, उसी तरह टुकुर-टुकुर, बंद नहीं होता, चल रहा है, सदी दर सदी। जल्द-बाजी की वहां कोई जरूरत नहीं। गाड़ी भूत की तरह धूल के बगूले उड़ाती एकाकार नहीं कर जाती। न ही रेल का टाइम देख धक्कम धक्का रेल-पेल कर हांफते-हांफते भागना, ठोकर खाना, गिरना फिर उठना।

खाली देखना, समझना, अपने हृदय में अनुभव करना, उसी हृदय की धड़कन, —जो किताबों में नहीं लिखी होती। लिखी होती है जाति के रक्त में।

खाली सुनना, मस्त होना भावना की लहर में, स्वप्निल आंखों से देखते रहना दूर से दूर तक। भोर उदयाचल से आरंभ होता है उसका छंद धीरे-धीरे, धान उसेना करने का काम, बड़ी बनाना, तमाखू कूटना, अल्पना रंगोली बनाना, पोखर की पाल पर गांव की बहू-बेटियों की गप्पें, दैनंदिन का काम, सब धीरे-धीरे गांव में घर-घर चूल्हे में बांस की आग, पत्तों की आग, वह भी धक-धक जलती, हुत-हुत होकर नहीं। घर के कोने में कांजी पानी है। वह भी कहेगा उसी सरल निरुद्ध वेग की मधुर अनंत कहानी। घर-घर में दस वर्ष पंद्रह वर्ष पुराना कांजी पानी सहेज कर रखा है। युग-युगांतर का धूल दबा युगों का घर-संसार, आचार की हंडी,—वह भी पुरानी सब सहेज कर रखे हैं।

"साहू हे, घूमने नहीं चलोगे ?"

चमचमाती धूप में गायों की गुहाल में सांड नाच रहा है। देखते-देखते घड़ी भर बीत जाता। पेड़ से कौवा तिनका ले जा रहा है, वहां भी देखने-समझने की उमंग है। तितली एक उड़ी जा रही है। बच्चे पकड़ रहे हैं। ठिआपाला देखकर लोग-बाग लौट रहे हैं। मेहमान कोई घर लौट रहा है, आगे-आगे चित्रकारी की गयी हंडी, पीछे-पीछे कमीज पहने दुपट्टा डाले कोई, कंधे पर लाल-लाल रेशमी दुपट्टा डाले छोटा बच्चा।

सब समान, वाद-विवाद नहीं, भोजन यही मामूली साग-भाजी, निरामिष।

यह वही अतीत है, वहीं मिस्टर 'श' की जड़ है। वही उन बिछड़े दिनों का आदमीपन धीरे-धीरे खुलता जा रहा है।

मिस्टर 'श' चौंक पड़े। बिलबिलाते से बोल उठे, "डैम, सेंटिमेंटल, रबिश। इडियट।" क्रूर भाव से होंठ तिरछा हो गया, आंखें टिमटिमा कर चिपक गयीं मानो किसी शत्रु पर, शत्रु, शत्रु दुनिया एक अविश्वासी शत्रु, कोई जहर देह में व्याप गया है, वह काम करते-करते घिस कर घुल कर मरना चाहता है, गांव की शांति उसे नहीं चाहिए।

पढ़ाई पूरी हुई, खुद दिग्गज पंडित हुए, इसके बाद विवाह, फिर नौकरी। सुंदर तन्वंगी—सुलेखा सब ठीक है, पर वह विद्या की कीमत नहीं जानती। नरम लाड़ चाहती है, पौरुष की गरिमा नहीं समझती, कठोर गृहस्थली में अपने को

तिल-तिल कर आहुति देना चाहती है। संगीत उसे अच्छा लगता है, कविता पढ़ती है, उसके सुसंस्कृत मन से उतरती लहरों को वह दूर तक चले जाने देती है, परायों को अपना बना लेती है। सौंदर्य में वह बिखराती है विशेष व्यक्तित्व का तेज। बेड़ी खोल देती है, स्वाधीन हो जाती है। वन का पंछी, सुंदर जरूर है,—पर मन मार कर पालतू नहीं हो सकता। मांसल बाहु को कस कर पकड़े तो मानो उसका व्यक्तित्व घृणा से थरथरा उठता है। खुला रहे तो वह जी खोल कर हंसती है।

इसके बाद संघर्ष का जीवन, ईर्ष्या, संदेह, हताशा की चेष्टा।

अविश्वास की दीवार ऊंची हो जाती है, सुलेखा की हंसी सूखती जाती है, क्रमश: वह क्षीण मुखर अग्नि खुद जला रही है अपने आप को, मेद-पृथुल पाशविकता मिस्टर 'श' का रक्षा कवच बन जाती है।

उस दिन से वही उपाय काम में लाया जाने लगा है।

सुलेखा मार खाती है।

सुलेखा को कष्ट देने पर मन में एक तीव्र उत्तेजना आती है।

एक तरह का निभृत आनंद मन के गहरे में जन्म लेता है।

वृष जातीय स्वामी तृप्ति के लिए सुलेखा को पीटता है।

कोई पड़ोसी, हितैषी बन कर पूछता तो सुलेखा नये-नये बहाने बना कर सफाई देती है, फूफी मर गयी,—मौसी मर गयी।

फूफी—मौसियों की संख्या खत्म होने पर भी सुलेखा की रुलायी थमती नहीं, किंतु वृष स्वामी को विजय नहीं मिलती, तिक्तता पाता है। पद वृद्धि उस तिक्तता में इंधन का काम करती है। बारबार सोचती है—काश ! और ही तरह का होता, काश ! हो सकता !

आज जीवन चेतना नहीं है, किंतु विभ्राट की स्मृतियां अगणित हैं, सुलेखा संतानवती है, ढेर सारी संतानों की ओट में रह हाड़-मांस की सुलेखा उम्र का बोझ टालती जाती है, आज उस का निःशेषित का जीवन है। मिस्टर 'श' ने आश्रय लिया है फाइलों के ढेर में, अपने आपको कार्य से लादे रखते हैं संघर्ष में उसके नीचे के सब लोग सुलेखा के ही प्रतीक हैं। आज दीनहीनों पर अत्याचार कर के अपनी कमजोर पड़ती यौवनक्षुधा का आखरी राह रूपांतर में आनंद पाता है, डिक्टेटर बन कर भी वह आत्मविश्वास खोजता है, जगत को भ्रकुटि दिखा कर तर्जनी से मसल अपने जीवन का प्रतिशोध लेता है।

घायल आदमी, संदेही, अशांत ।

एक आर्त्त हाहाकार के मूर्त्तिमंत रूप।

बाहर वह अति भयानक है, कंपनी के अधिकारियों के विचार में वह एकदम कार्यकुशल है, दुर्द्धर्ष, स्टीम रोलर,—वह सब कुछ कर सकता है।

भावना में पलीता लगने की तरह अचानक मिस्टर 'श' चंचल हो उठते हैं। एक बड़ी दायित्वपूर्ण समस्या याद आ जाती है। अब धूम्रपान होगा। मिस्टर 'श' बीड़ी के हिमायती हैं। घंटे भर में एक बंडल पूरा हो जायेगा, नीचे रखे बड़े बर्तन में बीड़ी के टुकड़े तैरते रहेंगे। दम शुरू हुई। पर्दे की दरार से देख कर किरानी लोग लौट गये। साहब को बीड़ी पीते समय टोकना कानून के खिलाफ है, क्योंकि सब जानते हैं कि बीड़ी के धुएं से ब्रह्मरंध्र स्वच्छ करते समय साहब दिमागी काम करते हैं, बड़ी-बड़ी समस्या का हल ढूंढ़ते हैं।

बाहर चपरासी के पास बलिदत्त ने अपने नाम लिखी पर्ची पेश की।

"प्रतीक्षा कीजिये, देखते नहीं, साहब बीड़ी पी रहे हैं, इस समय सोचने का काम चल रहा है, किसी का भी जाना मना है—"

चपरासी अपनी बेंच पर बैठा धूम्रपान में लगा है, अपनी पगड़ी अपना अधिकार दिखाने के लिए पास रख दी है। कभी-कभी अवज्ञा और अनादर से टहलते हुए बलिदत्त की ओर देख लेता है। बीच-बीच में कमरे के अंदर से किसी जंतु की तरह का गंभीर गर्जन सुनायी पड़ जाता है, दबा-दबा, फिर भी भयानक। तभी चपरासी चौंक उठता है, हड़बड़ी में पगड़ी आधे सिर पर लाद कर, पगड़ी की जगह मुंह की बीड़ी बेंच पर रख कर पर्दे के पास धंस जाता है, फिर बेंच के पास लौट आता है। बलिदत्त चपरासी की ओर ईर्ष्या से देख कर फिर बरामदे में टहलने लगता है, रहा भी नहीं जाता, जा भी नहीं पाता।

आधा घंटा, घंटा भर, डेढ़ घंटा हो गया, चक्कर काट रहा है नया अफसर। बार-बार हाथ पर से कमीज का कफ सरका कर घड़ी देखता है, हर बार का देखना मानो एक आविष्कार है। बहुत निविष्ट होकर देख-देख कर हृदयंगम कर चुका है

समय की दुर्निवार गति। देख चुका,—कालः गच्छति गच्छत्यायुः। खोये हुए क्षणों को लौटाना असंभव है।

उद्विग्न जरूर है, किंतु वह निराश नहीं है, प्रतीक्षा करना जानता है, नहीं तो सिद्धि पाना असंभव है। दर्शन करने के लिए और कोई साहबी पोषाक पहने सज्जन आ गये हैं। वे भी चपरासी को अपना नाम लिखा एक कागज पकड़ा देते हैं और सिर लटकाये नाप-नाप कर कदम खट-खट कर टहलने लगे हैं। बलिदत्त जिस ओर टहल रहा था उसके विपरीत दिशा की ओर।

ठीक है, दो आदमी दो तरफ मुंह किये खटाखट कर रहे हैं। चपरासी उस दृश्य का मजा ले रहा है। उसने अपना बटुआ खोल कर पान लगाना शुरू कर दिया। कभी-कभी दोनों सज्जनों की ओर देख लेता है। कोई पूछने की चेष्टा करे तो अपनी गांठ वाली हथेली उठा देता है, बरामदे में ट्रैफिक थम् से बंद हो जाता है। कोठरी के अंदर की ओर वह चुपचाप संकेत करता मानो ताला में फांक दिखाने की तरह। इतना ही यथेष्ट है, इसके बाद वह पान बनाने बैठता है, बाबू-भैयों के टहलने का मजा लेता हुआ।

टहलें वे लोग, पुराने जमाने के चपरासी की तरह इसमें उसकी इज्जत बढ़ती है। बूढ़ा आदमी है, पलकें सफेद हो आयी हैं, शीशे की तरह की आंखें, कटी हुई खड़े कांटों की तरह की सफेद मूंछें, सिर पर लदी विशाल पगड़ी—लाल-पीली-सफेद, देह पर नाटक-कंपनी वालों की तरह लंबा लाल कोट, उस पर तिरछी चौड़ी मोटी दुहरी पट्टी। उस पर पीतल की खूब बड़ी चकती, चमक रही है, कंपनी का नाम लिखा है। अंदर साहब, बाहर दर्शनों के प्रार्थी—बीच में वह चाहता है परिस्थिति में गांभीर्य।

बलिदत्त फिर उसके पास जाकर धीरे-धीरे अनुनय करता है,—"जरा जाओ।"

"हूं।"

"जाओ न, जरूरी है, उधर कंपनी का काम बिगड़ रहा है, मैं यहां प्रतीक्षा कर रहा हूं, साहब जानेंगे तो चिढ़ उठेंगे।"

चपरासी ने उस की अनभिज्ञता देख क्षण भर के लिए हंसना चाहा। होंठों का बांकापन फिर सीधा हो गया। वह अपना गांभीर्य नष्ट कर दुर्बलता को आश्रय नहीं देगा। गंभीर होकर सिर हिला कर बोला,—"जानते नहीं, वह बाघ हैं।"

बलिदत्त की छाती से खून सूख गया। हो सकता है आगंतुक की छाती से रक्त

और चेहरे का तेज सुखाने के लिए ही यह सारी व्यवस्था हो। अंदर घुसने तक घंटी बज उठती है, अंदर से धड़धड़ा कर गरज आती है, "को हैय ! को हैय !"

धड़धड़ा कर दौड़ गया चपरासी, अंदर से सुनायी दिया उसका गद्गद प्रत्युत्तर—

"हुजूर।"

बलिदत्त के हृदय पर दम् चोट पड़ी, सोचने लगा,—यही क्या समय है ! यही क्या समय है ! दिमाग में फैल जाता है वही भंवर का निनाद,—'को है !' 'कोई है' का साहबी रूपांतर, एवं 'हुजूर,'—उस 'हुजूर' का तुरंत प्रकाश, चटपट। चेहरा पसीना-पसीना हो गया, दीवार के सहारे ढुलक गया।

मन के अंदर से किसी अज्ञात चेतना का संदेश आ रहा है, अब उसका बुलावा आयेगा। लगा—भावना उलट-पलट हो रही है, एक अनजान भय देह को कंपकंपा जाता है। अंदर साहब,—उसकी गतिमुक्ति के अधिकारी, उसके दानापानी के व्यक्तित्व को कलम की एक चोट से खत्म कर सकते हैं, बचा सकते हैं। दानापानी ! ओह ! कितना दरिद्र है। वह दरिद्र है। दानापानी।—जैसे एक मांसभक्षी लता की काली गंठीली बाहें, नीचे से फंसा कर पसरती दबाती आ रही हों।

गर्दन दब रही है, गला सूखता जा रहा है। रुमाल निकाल कर चेहरा रगड़ा और पोंछ लिया, अपने को यथासाध्य प्रस्तुत कर रहा है। फिर भी वह प्रस्तुत है, बलि का पशु। सचमुच चपरासी लपक कर आता है और हाथ दिखाकर बताता है—आप का बुलावा।

तूफान में खींच लिए जाने की तरह पर्दा धकेल अंदर घुसा, दरवाजा लांघ कर दूर से देखते ही कमर झुका कर निवेदन किया।

"गुड—मार्निं—सार योर आनर—"

दूर से जवाब आया—"सीट डाउन, सीट डाउन—" बैठ जाओ। अवाक् हो दूर देखा। बैठने के लिए तो पास जाना पड़ेगा। जाऊं क्या ? साहब का मुंह झुक आया है, फाइल पर आंखें गड़ी हुई हैं।

"सीट डाउन—यू हिआ—"

आदेश की प्रचंडता जैसे उसके कंधे पर हाथ रख कर नीचे की ओर दबा देना चाहती है। कोट-पेंट पहने बलिदत्त दब कर वहीं फर्श पर बैठ गया है सीट डाउन

के तूफान तले ।

"इडियट—" गर्ज उठे साहेब—"खम् ह्या ।"

थरथराता आगे बढ़ गया बलि का पशु, कानों में मां-मां हो रही है । साहब ने उसका नाम लिखी पर्ची उठा कर कागजों में से उसके एक कागज उठा कर देखने के ढंग से उसकी ओर बारबार देखा, नीचे से ऊपर तक ।

कांप गया बलिदत्त, थर्रा गया । थरथरा कर व्याकरण भूल, गलत अंग्रेजी में गाता चला गया अपनी बात, वह आया है, आते न आते काम ज्वाइन किया है, वह जी-जान से परिश्रम करेगा, उसकी भूल होने पर साहेब उसे क्षमा देंगे, और कितनी ही बातें ।

पांच मिनट । साहेब सुनते गये । इस पर बोले, "येस ।"

'यस' का मतलब 'हां' तो वह जानता है, पर वह नहीं जानता कि साहब जब 'येस' कहें तो समझ लो चले जाओ । वह खड़ा रहा ।

गंभीर होकर साहब ने अंग्रेजी में पूछा—"कैसे आये थे ?"

"हुजूर के दर्शन करने ।"

"दर्शन तो हो गये, और कुछ ?"

"कुछ नहीं, सर ।"

"जा सकते हो, काम करो जाकर, बेवकूफ की तरह देख क्या रहे हो, जाओ ।" हठात् वह चंचल हो उठा, मुंह से निकल पड़ा, "हुजूर—"

"गेट आउट, येस !"

गेट आउट के धक्के से वह कूदता सा बाहर निकल आया, हावभाव से अपने व्यक्तित्व की चुटिया उन्हीं के चरणों तले छोड़ आया । बाहर चपरासी ने पकड़ा, "बक्सीस ?"

व्यक्तित्व नष्ट हुआ था, बाहर खुले में नयी हवा पीकर वह सब भूल जाता है, बारबार अपने आपको चेता देता है कि वह अफसर है, साधारण नहीं । उसमें प्रवणता है, विशिष्टता है । कतार में बैठे किरानी लोग काम कर रहे हैं, इतने

चेहरे, इतने वेश,— वह इनसे ऊंचा है, कब किस परिस्थिति में किस का दाना-पानी उसकी कलम की नोक के नीचे रहेगा, कब किस सुनहली घड़ी में वह किसी का भाग्य विधाता होगा।

वह—

सिर उठा कर वे लोग देख रहे हैं, कौतूहल भरी आंखें, वे उसकी ओर देख रहे हैं।

और घंटा भर ही तो, इसके बाद तो चारों ओर उसका नाम फैल जायेगा। केवल इस दफ्तर में ही नहीं, बाहर, शहर में आने वाले देहातियों की जबान से होता हुआ दूर दूरांतर तक। इस प्रांत में कंपनी पराक्रमी है, धन में, बल में, प्रतिपत्ति में, व्यवसाय और क्षमता में,—उसकी संज्ञा इतने उपादानों के बाहर नहीं है, इतने में ही सीमाबद्ध है।

एकांत कोठी में पर्दे की आड़ में घर्षण,—कंपनी कोठी के चौड़े बरामदे में जूते खटाखट करते हुए आगे चलते समय घर्षण की चेतना धीरे-धीरे दूर होती जा रही है, घटना पर विचार का दबाव आकर हृदय में समक्ष रखने वाली गुफा से उठकर वह आता है प्रशस्त मुक्त विचार से उन्मुक्त क्षेत्र में, वहां मन में अरमान नहीं, केवल कारणों की समष्टि से फल गणना चलती है, वह मन को स्पर्श नहीं करती।

उसी विचार के माप से घर्षण को नापकर बलिदत्त सोचता है, यह कुछ नहीं, कुछ नहीं हुआ, वैसे हुआ भी क्या है। किरानी जीवन में साहब के पीछे लगकर उसने ये सब तो बहुत देखे हैं। मोटे पर्दे की ओट में एकांत कोठी में कितने बड़े-लोगों का कितने प्रकार का सत्कार होता है, साहब की जबान पर गर्जना, हाकिम के चेहरे की भ्रकुटि, सीमाहीन, अकथनीय, अदृश्य—दुर्भाषा की तांडव लीला, वह सब कागज पर नहीं लिखा जाता, पर्दा लांघकर बाहर नहीं आता। अपमान, घर्षण सब कुछ पीकर हंस की तरह पंख झाड़कर बाहर आकर बड़े-बड़े लोग भी अम्लान मुंह से कह सकते हैं,—साहब ने खूब बातें कीं, सुख-दुख पूछा, कितना स्नेह, कितनी सहानुभूति।

लोग सुनकर प्रशंसा करते हैं, चुपचाप गाली हजम कर बाहर आकर प्रशंसा पाने की कहने पर औरों की दृष्टि में सम्मान पाते हैं, जिस तरह व्यापारी खाली हाथ होने पर भी मुंह से हजार-लाख रुपयों का नाम लेकर औरों में विश्वास पैदा कर उनसे रुपये जमा करता है। वही तो टैक्ट है—सफलता का नीति शास्त्र।

पराजय पाकर पराजय माने तो आदमी धीरे-धीरे नीचे ही दबता चला जाता है, और उसके जय की आशा नहीं रहती। परंतु पराजय को जय मानकर चलने पर, अपमान पाकर भी दस आदमियों को यह कहकर भोज दिया जा सकता है कि मान मिला है। वही तो होता है दुर्द्धर्ष। क्या वह वैसा नहीं कर सकेगा ? केवल वर्षा को छाता ही दिखाये, पीठ को पत्थर करना भी साफल्यवाद की अमोघ नीति है। और भी क्या ? ऊपर वाले साहब ही यदि गाली नहीं देंगे, तो गाली देने की शक्ति और किसमें है, फिर गाली और दे भी कौन सकता है ?

सोचते-सोचते बलिदत्त के चेहरे पर उसकी वह व्यावसायिक बांकी हंसी खिल उठी, हंसी चाहे न हो,—दिखती तो हंसी जैसी है।

और सर्वादौ बासुआ बैल बड़े बाबू के पास जाते-जाते उसे पूर्ण विश्वास हो आया,—वह अपनी नीति ठीक रखेगा, जल्दी ही नीति के बल पर सारंगी बजाकर वह भालू को नचा सकेगा, चाहे कितना ही बड़ा भालू क्यों न हो वह।

बड़े बाबू अफसरों की जमात में नहीं आते, किरानी समूह में हैं, चाहे ऊंचे तबके में ही क्यों न हों। अपनी जमात का न मानकर कंपनी के अनेक अफसर उन्हें ओछी नजरों से देखते हैं, उनके गुरुत्व पर हंसते हैं। उनकी दृष्टि में वे विजातीय हैं, वहां मेल-मिलाप करने पर अपने पद की मान-मर्यादा क्षुण्ण होगी। पर सफलताकामी बलिदत्त दास ने अपने अतीत जीवन से कुछ और ही ज्ञान संचित कर नये तथ्य खोजे हैं, उसने जाना है,—किरानी भी हंस सकता है, और बड़े बाबू की हंसी धारदार पैनी होती है, वह थोथी नहीं। किरानी ही कंपनी होता है। वही किसी भी अनुष्ठान का असल कारीगर होता है,—वही आधे पेट काम करने वाला जीर्ण-शीर्ण प्राणी है, परिश्रम की शिला पर घिसता रहता है सुबह से रात तक, फिर घर लौट कर फाइलों का अंबार लाकर टिमटिमाती लालटेन की रोशनी के पास चटाई पर झुका काम करता रहता है, जिसकी तनख्वाह पंद्रह दिन भी नहीं चलती, जिसकी निगाह फाइलों को पार कर बाहर जाने का अवसर कभी नहीं पाती, यह देखने के लिए भी नहीं कि घाटे की गृहस्थी की योजना में गृहिणी का कितना खून सूख गया है, कितनी उम्र झड़ गयी है, बच्चों ने किसमें महारत हासिल की है—पढ़ाई में या पतंग उड़ाने में। वही निरीह प्राणी,—जो जुआ उतारकर जब रख आता है तो जीवन भी अपनी परिचित टेबल पर रख आता है। फलस्वरूप बुढ़ापे में कंपनी से मुफ्त पेंशन खाने के लिए अधिक दिन नहीं

जीता। किरानी ही सारे काम का कर्ता है, लाल फीते का ब्रह्मा है, अफसर तो दस्तखत मारता है।

बड़े बाबू प्रसन्न रहें तो साहेब का प्रसाद पाना दूर नहीं रहता। प्रसन्न न होने पर, क्या से क्या हो जाता है, कितनी ही करामातें आफिस की टाइप मशीन पर फूटती हैं, जिस पर साहब का दस्तखत भी होता है।

अत:—"नमस्कार जी, कैसे, मजे में तो हैं ? मैं आज ही पहुंचा। सोचा चलूं आपसे मिल आऊं पहले···।"···हा···हा···बड़े बाबू उठ खड़े हुए···अरे "आप।··· आइये बैठिये, बैठिये। अरे कुर्सी लाना···आप बैठिये न, खड़े कैसे रह गये—"

"खड़े रहने में क्या है, यह तो घर की बात है,···ओह, इतनी फाइलें ! इतना काम ! इतना काम करते हैं आप लोग ! लीजिये"—पान बढ़ा दिया।

"काम की बात करते हैं, आप ! वह कौन देखता है। पूरे नौ डिपार्टमेंट हैं मेरे चार्ज में, साहब बारबार लिखते रहेंगे 'जरूरी-जरूरी' और मैं खुद जब तक नहीं लिखता और क्या होगा ? अच्छी तरह समझाने पर भी ये लोग भूल कर बैठते हैं, बिना देखे भेज दूं तो समझो आफत।"

"मैं जानता हूं बाबू, मुझे पता है, मैंने आपके बारे में भी सुना है। अकेले इतने बड़े उत्तरदायित्व का बोझ उठा रहे हैं। ऊपर वालों के तो बस खाली दस्तखत और क्या ?"

बसंत बाबू हंस पड़े, विनय दिखाकर बोले, "सो कैसे हो सकता है जी, कुछ भी हो आखिर हम किरानी ही ठहरे, अफसर जो कहेंगे वही तो होगा, हमारा अपना ऐसा क्या कृतित्व है, बुद्धि तो आप ही लोगों की है।"

"यह विनय देखकर ही पता चलता है आप कैसे जानकार आदमी हैं। पर मुझसे यह छिपा थोड़े ही है ? मैं भी तो किरानी था, मारे सिपाही, नाम सरदार का, यही तो होता है ? कौन देगा इस परिश्रम का मूल्य।"

कागज-पत्र उलट-उलट कर एक लिखावट उठायी—"यह नोट किसने लिखा है बसंत बाबू ? आपने ही तो ? बिलकुल, लिखने के ढंग से ही मालूम पड़ जाता है। आह, कितना चमत्कारी है। चमत्कारी। कितनी सुंदर भाषा। इधर से समझो तो भी अर्थ होगा 'हां' उधर से समझो तो 'नहीं'—तीन-तीन अर्थ। अंग्रेजी भाषा में वही तो बहादुरी। और कितना कंपेक्ट थोथा नहीं, फैक्ट्स एंड फिगर्स से भरपूर। साहब तो आंख मूंदकर दस्तखत कर देता होगा—क्यों, आपसे मुझे बहुत

कुछ सीखना है, यदि आप को दिक्कत न हो तो घंटे-घंटे भर आता रहूंगा, बैठकर देखूंगा कितनी अद्भुत नोटिंग है—"

बसंत बाबू मुस्करा देते हैं।

इस फाइल पर व्यवसायी चिट्ठी में रखी गयी उनकी शिल्प चातुरी को कितने समझते हैं ? कितने उसे पढ़ते हैं ? जाग्रत जीवन की सारी बुद्धि, सारी कल्पना से अपनी रचना गढ़ते हैं, चाहे वह चिट्ठी की नोटिंग ही क्यों न हो, कितने हिसाबों का विन्यास है। यह शिल्प है। उसकी अभिव्यक्ति के लिए बहुत साधना चाहिए। पुरानी फाइल ढूंढ़ कर कितनी प्राचीन लिखावटों के नमूने देखकर उन्होंने लिखने का कायदा हासिल किया था। नौकरी के काम में कितनी किताबें रटकर डिपार्टमेंट के कितने नियम-कानूनों का अर्थ शब्दकोश खोजकर कितनी-कितनी कापियों में लिखकर उन्होंने जरूरी ज्ञान अर्जित किया है। दफ्तर से छीनकर अपने हाथों गोंद लगाकर सामयिक संशोधन के कागजों को बही में चिपका-चिपका कर अपना नौकरी का ज्ञान रखा है, एकदम नव्य आधुनिक बनाया है। इसके बाद प्रत्येक नोट, प्रत्येक चिट्ठी लिखते समय कितनी गवेषणा करते हैं, वह केवल अनुभवी ही जान सकता है।

पर कौन समझे 'कागज, सिर्फ कागज', बस इतना ही।

अरसे बाद अब कोई मिला, जो समझेगा।

बसंत बाबू का मन अपने आप नरम पड़ गया, विनय से हंसते-हंसते कहने लगे,—"साहब मेरा लिखा सब पास कर देते हैं, कई बार उस पर मंतव्य भी लिखा है,—अच्छा, खूब अच्छा, धन्यवाद। दिखाऊं एक-आध आपको।"

"सच ऐसा लिखा। वास्तव में आप अद्भुत हैं—"

बसंत बाबू बोले,—"ये साहब काम पहचान सकते हैं।"

बलिदत्त दास प्रतीक्षा कर रहा था इसी की, साहेब की कुछ प्रशंसा सुनने को। प्रत्येक ऊपर वाले में कुछ उन्नत गुणों का आविष्कार कर उन्हें गाते फिरने को वह चतुर कर्मचारी का उन्नत गुण मानता है। तभी तो दस आदमी जानेंगे, वह ऊपरवाले का अपना आदमी है, सम्मान करेंगे, कहा-सुनी तो रही दूर, धीरे-धीरे ऊपर वाले के कानों में भी पड़ेगी,—मन हो तो कई बातें आविष्कार की जा सकती हैं, सुंदर चेहरा, सुंदर पोशाक, पढ़ायी, पढ़ायी के अभाव में चतुराई, इसी तरह की कई बातें।

पर आकार-प्रकार में जो एक काठ का खंभा है, भाषा में गड़गड़ाहट। उसके बारे में प्रशंसा की बात क्या हो सकती है ?

"यह साहब काम पहचान सकता है"—सीट डाउन से गेट आउट तक, दिख जाता है उस कमरे में। नहीं, अपने को वह दुर्बल नहीं होने देगा, जो एक बार भी भूल करे, उसे क्षमा नहीं। चेहरे पर एकदम आनंद की विह्वलता खिलाकर गद्गद होकर बलिदत्त ने कहा,—

"काम पहचान सकता है। आह, देवदुर्लभ गुण। मैं भी यही सोचता था,—याने पहली बार आज भेंट हुई। पहले कभी देखा नहीं। हठात् कितना सम्मान करते हैं। मैं और क्या कहूं।" केवल दो-चार शब्दों में बात कहता है, 'वाह ! बुद्धिमान है, अच्छा है, ऐसा ही आदमी तो चाहिए हमें। समझे, काम पहचान सकता है—'

बसंत बाबू मुंह खोले बैठे रह गये। वे स्तब्ध हैं।

यह आदमी पागल है क्या ? मिस्टर 'श' ने सम्मान किया।

किंतु बलिदत्त कहता जा रहा है, "कहो, मैं नया आदमी हूं। कई बातें समझने में देर हो सकती है। उसने क्या कहा जानते हैं ? बोला, 'जब कोई असुविधा हो, चले जाना हमारे बड़े बाबू बसंत बाबू के पास। एकदम पक्का आदमी है।' समझा, खाली काम परखना जानता है इतना ही नहीं, विचार भी अच्छे हैं, बहुत अच्छे हैं।"

अबकी बार बसंत बाबू का मुंह बंद हो गया। अब तक क्यों नहीं समझ सके। बलिदत्त दास ने उन्हें क्या समझा होगा ? इतना उल्लू। क्या वे नहीं बोल सकते ?

उन्होंने भी साहब की प्रशस्ति शुरू कर दी, "आप देखेंगे ऐसे साहब तो करोड़ों में भी नहीं मिलेंगे। जबान से जरा कड़े जरूर हैं। किंतु लोग ऐसे भी हैं जो मीठी बोली बोलते हैं, हाथ से नहीं भात से मारने वाले। हमारे साहब तो बिलकुल दया के अवतार ठहरे, दाना पानी में धूल नहीं देते। इतने ज्ञानी हैं। इतने विवेकी। इतने स्थिर। अद्भुत हैं, वे तो अद्भुत हैं।"

बात चल रही है।

कभी बलिदत्त और कभी बसंत बाबू कभी दोनों सम स्वर में,—ऊपर वाले की प्रशस्ति गाने में लगे हैं। अपने को क्षुद्र और उसे बड़ा सिद्ध करते हुए अति-मानव तक। पांच मिनट की चर्चा बढ़ गयी दस मिनट तक—वह ज्ञानी है, बुद्धि-

मान है, दयालु है, बलवान है, उनकी संतान मेधावी हैं, उनकी स्त्री गृहलक्ष्मी हैं, उनका कुत्ता तो बस कूकर श्रेष्ठ है, और उनकी गाय बस सुरभि है।

एक स्वर से प्रशस्ति की ध्वनि, मानो दोनों कोई भाट हों।

या दो सियार-पास-पास, मुंह सटाकर गा रहे हों।

यह प्रशस्ति,—भगवन्नाम की नहीं, न मातृभूमि की वंदना, प्रकृति-कवि का सौंदर्य विह्वल स्खलित काव्य वर्णन नहीं, नंगे साधू का खंजड़ी भंजन नहीं,—केवल ऊपर वाले की प्रशस्ति है। दोनों में प्रतियोगिता चल रही है, कौन अधिक प्वाइंट खोज पाता है, कौन अधिक प्रशस्ति गा सकता है।

ऐसा होता है।

मानो ऐतिहासिक, युग-युगों से होता आ रहा है।

दोपहर का समय। दूसरे के खेत में गायों का झुंड चर रहा है।

रास्ते पर बटोही, मजदूर, व्यवसायी जा रहे हैं।

सिर पर काली सी लंबी टोपी लगाये भेष बनाये बने-ठने नाचते हुए ढोल बजाते जोकर चल रहे हैं। सामने एक बड़े गत्ते पर एक विज्ञापन का चित्र है।

चारों ओर दानापानी का कलरव है।

वहां स्वप्न केवल भय आशंका का है, जड़ स्वार्थ का है।

बड़े बाबू के साथ बातचीत पूरी कर बलिदत्त ने सोच लिया, यहां एक बंधु बन गया है भविष्य में काम आयेगा।

उसके चले जाने के बाद बड़े बाबू मुस्करा पड़े, उनके एक प्रशंसक दीनू बाबू ने खिलखिलाकर पूछा, "जी, बात क्या है?"

"समझोगे धीरे-धीरे," बसंत ने कहा, "इसे पहचान लो। इसे, बहुत दूर जायेगा बहुत दूर की उड़ान है।" इसके अलावा अन्य बड़े कर्मचारी। कोई नया आये तो शिष्टाचारवश एक बार देख लेना काफी है। बलिदत्त घर की तरफ जा रहा है। खींच-तान का एक समताबोध लाने पर मन में बहुत आनंद आता है। ईर्ष्या होती है, पहले वह क्यों नहीं आया।

प्राचीन बरगदों की छाया में कंपनी का बड़ा दफ्तर है, काम में धां-धां करता है। कतार के कतार घर,—कोठरी पर कोठरियां, आदमी इतने,—थाली घुमाने पर वह भी चली जायेगी ऊपर ही ऊपर। वहां खाली बीजनेस,—अस्तव्यस्तता। बड़ी-बड़ी चिमनी, जिससे भस्-भस् धुआं उठता है,—प्रकांड-प्रकांड कल-कब्जे,

सचमुच ही कोई दामन की सृष्टि हो, हजार-हजार श्रमिक, जोकि कच्चा माल तैयार करते हैं,—जो कल-कब्जे चलाते हैं—वे सब बहुत दूर हैं इस दफ्तर के एरिया से। यहां खाली कर्तृत्व की कल है,—दफ्तर, कागज-पत्र का कारोबार। दिमाग का काम, फैसले, योजना, जगह-जगह इसी तरह के केंद्र इस सहस्रपद कंपनी के हृदय हैं।

आदमी यहां दानापानी ग्रहण करता है, दानापानी छीनता है, और फिर दानापानी किसी और को जुगाता है। चुपचाप भाव बढ़ जाते हैं या घट जाते हैं, बढ़े भावों में दूसरे का आहार छिन जाता है।—घर में वही भात की थाली सजी है, वैसे ही पानी का गिलास, एक आसन, अथच भाव कम होने पर लुप्त हो जाता है भात की थाली का बाहर आना। गृहस्थ आंख फाड़-फाड़ कर देखता रह जाता है भात की थाली से भात का चला जाना किसने लिये, कैसे लिये। खेत का किसान, फैक्टरी का मजदूर, दफ्तर का किरानी कमी का कारण नहीं जानता। जो कुछ हो उसका नाम,—जितने भी उपभोक्ता हैं,—केवल यही जानते हैं, भाव बढ़ गये हैं। उनका श्रम वही है, कम नहीं हुआ किंतु जितने परिश्रम के पसीने से कभी आठ बोरी पाता था, आज डेढ़ बोरी चावल पाता है। सिर झुका, हाथ जोड़कर वह भगवान को याद करता है, बार-बार भगवान को पुकारता है, कब कटेगा यह समय।

उसी अर्थनीति के अंधेरे अभाव का कुछ अंश गढ़ा जाता है इस दफ्तर में,—और कुछ और कहीं पर।

मूल के उपादान एक ही हैं।

रणोन्मत्त कलिंग को युद्धवेश। सम्राज्यवादी जातीयवादी जनता की समर सज्जा। फिर अहिंसा धर्म निबद्ध जाति, अशोक के शिला लेख, चैतन्य का संकीर्तन।

बरगद बढ़ता जा रहा है।

आज वह देख रहा है कंपनी का दफ्तर, व्यवसाय के लिए जीवन-धारण, दाना पानी के लिए समाज की भित्ति। जीवन के अर्थ का माप सेर तराजू में।

बरगद बलिदत्त दास को देख रहा है। आकार में वह छोटा है, चार फुट नौ इंच। वह नहीं चाहता धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। उसे नहीं चाहिए निर्वाण, वह न समाधियोग खोजता है और न परलोक।

बलिदत्त दास केवल प्रमोशन चाहता है, धन चाहता है, प्रतिपत्ति चाहता है।

आज की गति की भांति ऊपर वालों से अधस्तन काम करने वालों से। इसी उद्देश्य से जीना उसे जिस सीमा तक सहायक होगा, वही होगा उसका जीवन, सुंदर जीवन।

आशा,—कैसी आशा है उसकी। पुराने बरगद के नीचे चला जा रहा है वह अपनी श्रेणी का कर्मचारी खोजता। उस समय सरोजिनी की याद नहीं, घर का उसे कुछ भी खयाल नहीं है। यह जनसमुद्र मानो अंधेरा वन है, जिसमें वह अपने को एकमात्र टिमटिमाता जुगनू देखता है, ऊपर उड़ता जा रहा है।

सामने कतार में दर्पण सजे हैं, कुछ बिलकुल पास, कुछ बहुत दूर। दूरी मानो उम्र की नाप हो। किंतु गति पर सिर्फ समय का ही अधिकार नहीं होता, मन की भी गति होती है। गति के साथ-साथ परिवर्तन होता है। विभिन्न दूरियों से मन का परिवर्तन सूचित करने लिए दर्पण की बनावट में असमताएं हैं। अतः प्रतिबिंबि में वैषम्य पैदा हो जाता है। कंपनी के दफ्तर में समश्रेणी के विभिन्न कर्मचारी माना दर्पण के अलावा अलग चित्र हैं। बलिदत्त ने एक के बाद दूसरे को देखा। सारे चित्र उसी के हैं, वे सब उसी के भविष्य हैं, उसकी ही विभिन्न अवस्थाएं हैं। याद आता है बचपन में एक बार छह पैसे की टिकट खरीद कर वह मैजिक देखने गया था। टट्टी का घेरा देकर मैजिक का आंगन बना था, उसके अंदर छोटा-सा मैजिक का कमरा। जिधर देखो, सिर्फ अपने ही चित्र। पर वे क्या अपने हैं ? मानो किसी अद्भुत तरीके से अपने विभिन्न अवयवों को छोटा-बड़ा कर दिया गया है। अपनी देह का प्रकाश दर्पण में प्रतिबिंबित होकर फिर अपने पास लौट आता है। अनेक-अनेक प्रकार का विकृत अपना रूप दिखा रहा है। कौतूहलवश वह भी घुस गया था। देखकर डर लगा। लौटते समय चेहरा गुम-सुम था।

आज निभृत में मन को धकेल कर वही खोयी स्मृति सिर टेकती है। यद्यपि परिस्थिति भिन्न है, इन सब घरों में कंपनी के अफसर हैं, कोई साल-भर से तो कोई बीस साल से। नव प्रवेश के समता ज्ञान से वह उनमें अपने को ही देखता

नहीं बिठा पाता। बलिदत्त को एक बेताल की-सी अनुभूति हो रही है, वह विह्वल हो जाता है।

इसके बाद होती है छान-बीन, आत्म विश्वास लौट आता है। किसका कितना अंश वह काट देता है। किसी को हटाकर आगे गढ़ता है। यही इतने प्रकार का वर्णन-प्रकर्ष है—यह सब उसके साथ भी भविष्य में हो सकता है, किंतु इन सबकी उसे अभिलाषा नहीं। विभिन्न रूपों में से कुछ को वह आदर्श मान सकता है, कुछ के कुछ गुण लेना ही काफी होगा। और कितने लोग,—भाग्य चक्र से अफसर हो गये। उन्हें वह अपने हिसाब की पोथी में साग की तरह गिनता ही नहीं। कोई चाहे जो हो, जो जितना भी ऊपर हो,—बलिदत्त सोचता है—मूर्खता सब जगह है। जीवन के प्रत्येक स्तर में और भी ऊपर उठने की सुविधा—सुयोग होने पर भी अनेक ऐसे रह जायेंगे, जो अपनी मूर्खता के कारण और ऊपर उठने के बजाये नीचे की ओर खिसकेंगे।

वे उसकी सफलता योजना में ऊपर उठने के लिए सीढ़ी पर पैर रखने के लिए पीढ़ी की तरह हैं। उन्हें रौंदता-दबाता वह चढ़ता ही चला जायेगा। पीछे मुड़कर नहीं देखेगा।

किंतु सिर पर पैर रखने से पूर्व कंधे पर हाथ रखना बहुत जरूरी है, अतः मन में जितनी भी उच्चाशा हो, जबान से वह एकदम साधारण है। केवल बातों में ही नहीं, भंगिमा में भी वशीकरण आवश्यक है। सब जगह वह शिष्यत्व ही करेगा। मार्जार ने जरद्गव का शिष्यत्व ही तो किया था। प्राचीन बरगदों के नीचे से होकर इस कोठी से उस कोठी तक गुजरते समय उसे हितोपदेश वाला बूढ़ा सेमल का पेड़ याद आ जाता है। वह कहानी याद आती है। आचार व्यवहार के बल से उन्नति पाने का सूत्र केवल अंग्रेजी किताबों में ही नहीं है। बलिदत्त सोच रहा था,—बिलकुल सरल चाणक्य के पाठ में, हितोपदेश की कथा में, देहाती कहावतों में भी है युग-युगों के संसारी लोगों के अनुभव का सार,—सफलता की इच्छा रखने वालों के लिए अमोघ नीति यही है, संसार में इतने लोग हैं, फिर भी कुछ काठ हैं और कुछ आग, कुछ गीदड़ और कुछ बबेरे, कुछ मरपच कर कमाते हैं और कुछ मौज से पल्थी मारकर खाते हैं। वे बाहुबल का ढोंग नहीं करते। दम नहीं भरते। वे बुद्धिजीवी ठहरे। किंतु उनमें कई नीति के प्रति सचेत नहीं हैं। कारण समझे बिना कर बैठते हैं। अतः जितना लाभ मिला वह सब खाली घोंघा

बनाते-बनाते अक्षर बनने जैसा ही मिला। उनकी अग्रमति केवल अनिश्चित भाग्य के अधीन है, उसकी नहीं, क्योंकि वे सोचते नहीं, वह सोचता है।

वहीं वह अपनी प्रतिभा को देखता है लाखों लोगों से अलग, क्योंकि वह खुद को समझ सकता है।

उसमें कोई दुविधा नहीं है। दुविधा में फंसने पर दोनों पंख दो ओर विपरीत दिशाओं में गति करेंगे, फल कुछ नहीं होगा। वह सोचता है उद्देश्य को याद रखने पर उपाय के भले-बुरे को भूलना पड़ेगा। उपाय ! हंसी आती है ! जो मांस खाता है वह जंतु को मारने में पीछे क्यों हटेगा ? लोग पसंद करते हैं अच्छा भोजन, अच्छे कपड़े, कीमती वाहन, जमीन-जायदाद, पर उसे कमाने के उपाय देखकर पीछे हट जाते हैं। दूसरों को देख हाय-हाय करते दिन काटते हैं, और इसी हाय-हाय करने वालों के दल कभी-कभी एकजुट होकर दुनिया की हवा बदलने की ठान लेते हैं। उनके प्रति उसे सहानुभूति नहीं है। पेट में भूख, मुंह पर लाज की नीति उसे पसंद नहीं। आदमी कभी-न-कभी तो अपनी इच्छा, अपना उद्देश्य समझने को मजबूर होगा। जितनी जल्दी पहचान कर अपना रास्ता ठीक कर लेगा, उतना ही ठीक है। उद्देश्य हासिल करने के लिए जैसे भी जल्दी मिले वही सबसे अच्छा उपाय है। उसमें शुद्धाशुद्ध सोच हाय-हाय करते फिरते हो, खोजते हो, किताब लिखते हो, उससे क्या होता है। वह बलिदत्त दास है, जन्मा है भोग करने के लिए, नौकरी की है अर्जन करने के लिए, कोई कुछ सोचता है तो सोचे,—

और ध्यान से देखने पर बड़े स्तर पर भी यही दर्शन। उपाय की बात सोचने पर कंपनी कंपनी नहीं होती। राजनीति में उतनी बुद्धि नहीं लगती।

उपाय के बारे में धर्म भाव केवल लोक-दिखावे के लिए आत्मरक्षा का प्रचार कार्य है। आज इतने प्रकार के अफसरों के बीच वह खुद को एकदम स्पष्ट रूप से देख पाता है। जीभ पर शिष्यत्व और आचरण में दास्य भाव का प्राचुर्य दिखाने पर भी मन में ऐश्वर्य का अनुभव कर पाता है। आंखों के आगे अतीत का दैन्य आता है, उसे वह सुधारेगा।

बलिदत्त दास चला जा रहा है। यह जगत बाबू की कोठरी है, "जी, नमस्कार, मेरा नाम बलिदत्त दास—" अपना परिचय दिया। "आज ज्वाइन किया है, आपके दर्शनों के लिए चला आया।" बूढ़ा अफसर जगत बाबू, दो सीढ़ी उठे हैं।

इसके बाद बस खड़े-खड़े ताक रहे हैं।

"और क्या, आप आये हैं, मैं जाने की तैयारी में हूं।" जगत बाबू ने कहा, "अगले महीने ही पेंशन हो रही है। तीस वर्ष नौकरी की। विल्सन साहब के जमाने की है मेरी नौकरी। उन्होंने ही रंग का कारखाना बैठाया था। आप तो बच्चे हैं, मेरे पोते की उमर के। अब तो हमारी दयालु कंपनी के हाथ से पेंशन और कुछ बोनस की आशा है। ओह ! कितनी जल्दी पानी की तरह दिन बह गये। देखने से कल की-सी बात लगती है ! इसी बीच इतना समय गुजर गया। क्या कर सका। क्या रख सका ! बाप-दादों का घर तोड़ा। खेत उजाड़ा। नौकरी के शुरू के कुछ महीनों में,—तब वह सस्ता जमाना था। शहर में दो बीघे जमीन और एक घर बना डाला था, अब तो बीस गुना दाम होंगे। बस यही जमा पूंजी समझो। हें हें हें हें—"

खोखले मुंह से जगत बाबू हंस पड़े,—हें हें हें हें—सरल बालक की तरह। उस हंसी पर मुग्ध न होने का चारा नहीं बलिदत्त के पास। खास कर यहां तो कोई विवाद नहीं है।

बलिदत्त ने देखा,—विशालकाय बूढ़ा आदमी, चौड़े हाड़ों वाला। अब भी सबल है। आंखों पर चश्मा, चौड़ा माथा, चेहरे पर शांति विराज रही है। बाल सारे पके नहीं हैं। कमर भी नहीं टूटी। वार्द्धक्य मानो यहां तारुण्य का नया भेष लिए है।

गोल चेहरे वाला, बूढ़ा, निहायत लंबी-लंबी मूंछ वाला एक किरानी बाबू है। नाक की नोक पर चश्में के रास्ते दृष्टि दौड़ा कर बोले, "संचय क्यों नहीं किया जी, आपने तो धर्म बल का संचय किया है। कुटुंब शांति से है, बेटियां भला घर भला वर पा गयी हैं, बेटे सब एक से एक बढ़कर लायक निकले, दस आदमी प्रशंसा करते हैं। धर्म ही तो महानता का प्रतीक है।"

जगत बाबू हंस पड़े, बोले, "इतना धार्मिक-धार्मिक कहकर स्वर्ग में न बैठाओ। हम कौन से साधु महात्मा हैं। काम करते रहे हैं। नौकरी में जब आये तो जीभ पर भगवान का नाम लेकर आये थे। आज सब कुछ रखकर उन्हींका नाम लेते हुए लौट जाता हूं। वे ही विचार करेंगे।"

बलिदत्त ने कहा, "जी, आपको कौन नहीं जानता। लोग केवल नौकरी में रहने तक ही बड़े कहलाते हैं। आपकी नौकरी से जाने पर भी जै-जैकार, धर्म

बल, पुण्य-बल वह कहां जाता है,—"

"तो क्या तुम इस कच्ची उमर में ही धर्म-कर्म करोगे। कुछ बुरा न मानना। 'तुम' कह दिया इसलिए—"

"जी, 'तुम' क्या 'तू' कहते तो मैं और भी खुश होता—हें-हें-हें-हें।"

बलिदत्त की पीठ थपथपा कर जगत बाबू बोले, "दीर्घायु करे भगवान तुम्हें। योग्य लड़के हो, तुम्हीं उठोगे। इतनी छोटी उमर में जो सीखे हो, मैं बूढ़ा होने पर भी नहीं सीख सका। समझे बाबू, मुझसे तो बिलकुल नहीं हो सका।"

बूढ़ा किरानी मुस्कराने लगा। बलिदत्त अवाक् होकर देखने लगा, "क्या ?"

"कह देने पर बात का मतलब खुल जायेगा, रहने दो। पर तुम और इस थोथे धर्म-बल का नाम कभी न लेना। कमजोर पड़ोगे। धर्म-धर्म करके तो लोग गांजा पी जाते हैं। गांजे के नशे में स्वप्नों में डूब जाते हैं।"

"ऐसा सोचते हैं आप ?"

"होगा नहीं ? जरूर होगा, जायेगा कहां। जिसकी जैसी साधना, उसके लिए वैसा फल रखा है, जायेगा कहां ?"

फिर याद आती है—जरद्गव-मार्जार की बात,—"सर, मुझे कुछ उपदेश नहीं देंगे ? कुछ हिंट्स, कुछ टिप्स, तीस साल का कीमती अनुभव—"

"मैं तो आशीर्वाद दूंगा। यही कहूंगा कि मैं जो न हो सका, तुम वह बनो।"

बूढ़े के प्रति उसका मन झुक जाता है,—टूटा हुआ बूढ़ा, क्या सोचता है ? अफसोस कर रहा है या दिवास्वप्न ?

"सुनो बाबू, रंगीला जीवन। पिछड़ी बातें बहुत सुंदर दिखती हैं। सूर्यास्त हो रहा है न ! हें हें हें हें। तो तुम मुझसे क्या सुनने की आशा करते हो ? जिसके हिंट्स उसके ही काम आते हैं। जिसके टिप्स उसके ही काम आयेंगे। जिसका बंदर वही उसे नचाना जानता है। तुम्हारे क्या काम आयेंगे यह सब ? काम करने के लिए नौकरी में आया। काम कर गया। भला-बुरा मैं नहीं जानता। काम के नशे में मैंने बाहर की बातों का खयाल नहीं किया। और तुम्हें टिप्स क्या दूं ? पर हां, याद आ रहा है, नौकरी के शुरू-शुरू में मन में खयाल था मार-धाड़ कर फांद जाऊंगा। कुछ दिन दौड़-धूप भी खूब की है। किंतु क्रमशः मन उलट गया एक छोटी-सी घटना के कारण। स्मार्ट होने के लिए घुड़सवारी सीख रहा था, एक

घोड़ी मिली थी। एक बार एक साहब के साथ टूर पर जाने के लिए निकला, साहेब घोड़े पर चढ़े। रास्ते में साहब का घोड़ा हिनहिना कर अगले पैर टेक कर मेरी ओर दौड़ा। घोड़ी को संभालना कठिन हो गया। फलतः जो होता है हुआ। सोचने पर लगता है भगवान तुम परम दयालु हो—"

जगत बाबू हो-हो करके हंस पड़े।

"इसी तरह की एक-एक छोटी-छोटी बात है। वह याद करा देती है कि हम बहुत आगे बढ़ गये हैं। कान खींच कर हम अपनी जगह लौट आते हैं। वही हुई मेरे स्मार्टपन पर जोरदार थप्पड़। इसके बाद और कई बातें सीखने को मिलीं। सीखा कि जिसके लिए भी दौड़ो, जो जिसे खोजता है, उसके लिए उसे वैसा त्याग भी करना पड़ता है, और नौकरी,—उसमें पहले अपना आत्म-सम्मान त्याग करना पड़ता है। एक बार कोई हालैंड के साहब बातों ही बातों में बिगड़ कर कह उठे 'सूअर का बच्चा।' मैंने दबोच ली उसकी गर्दन, क्या किया सो तो अभी याद नहीं, होश आने पर सुना कि वह चिल्ला रहा है बचाओ-बचाओ। भविष्य में प्रमोशन पर तो एक काला पर्दा पड़ ही गया। फिर भी गनीमत थी कि नौकरी नहीं गयी। जाती तो खैर अच्छा ही होता। हें-हें-हें-हें—क्या उपदेश लोगे मुझ-से ? देखो,—दूसरों से तुम यदि सहायता की आशा करते हो तो दूसरे के मन को छूने की जरूरत है। उसकी प्रवृत्ति के मार्ग से। प्रवृत्ति फिर क्या है ? पहले उसकी काम वृत्ति,—इसके बाद उसका क्रोध; अर्थात् उसके शत्रुओं के विरुद्ध उसकी मदद करना। चुगली जुगाने से लड़ने तक। इसके बाद उसका लोभ,—उसे कुछ देना पड़ेगा। फिर उसका मोह,—जिस भ्रांति को लेकर वह अपने जीवन का अस्तित्व समझता है, वही भ्रांति है। वे ही वेल्यूज अपने मानकर उसे उत्साहित करना। फिर उसका मद मत्सर्य,—अर्थात् सोलह आने खुशामद करना। इसके बाद सेवा, देने का फल, फिर उसका स्मरण, उसका गुण कीर्तन, आदि। सबके अंत में उसके हिताहित का ज्ञान जहां कर्त्तव्यनिष्ठा आदि का मूल्य तोला जाता है।—अंत में उसके इस विचार को अपील करने का उपाय, यही आखिरी बात है। यही चाकरी धर्म की समरी है बाबू ! पर मुझसे इसमें कुछ भी हासिल नहीं हो सका, किस दुःसाहस से मैं तुम्हें उपदेश दूं बताओ ? मैं तो खुद कर नहीं सका। हें-हें-हें-हें—। जाओ तुम्हारा कीमती समय नष्ट हो गया। ठीक है, ठीक है। आशीर्वाद देता हूं, जीवन में तुम्हें शांति मिले।" जगत बाबू काम में लग गये।

रहने दो उसका वह पीला बुढ़ापा। बलिदत्त ने आकर चैन का अनुभव किया। ओह! इस कमरे में तो कागज भी मानो पुराने होकर चूरा-चूरा झड़ रहे हैं। धूल, सब ओर धूल भरी है। नाक में मुंह में घुसी जाती है। सांस घुट जाती है। अंतरात्मा सिहर उठती है। गर्दन मोड़ नीचे देख बूढ़े की बात को नकारने पर लगता है जैसे छाती में कोई बिल्ली छिप कर घुस गयी है, उसका अपना व्यक्तित्व छोटे चूहे की तरह उसके शिकंजे में छटपटा रहा है।

ओह ! वह अनुभूति पिछड़ गयी। आशावाद जाग उठता है। उसके बाद, रणजीत बाबू। सुंदर सूट, साफ चेहरा, बाल संवारने में आर्ट टपकती है, मानो किसी विज्ञापन का चित्र हो। बाहर जा रहे हैं, दरवाजे पर मुलाकात और परिचय।

"चल पड़ें जी !"

"बिलकुल, देखते नहीं साढ़े चार बज रहे हैं। और आध घंटे में तो छुट्टी हो ही रही है कौन देखता है यहां ? काम भी तो खूब किया है। जाइये, किसी भी साहब से पूछिये। काम में एफिसिएंसी का प्रमाण है अपनी एफिसिएंसी। उसे बनाये रखने के लिए गधों की-सी मेहनत जरूरी नहीं है। जरूरत पड़े तो अपनी देह की ओर निगाह डालो, दूसरों के सेंटीमेंट की ओर भी। काम करते-करते जब ऊपर वाले अधिकारी पागल जैसे हो जाते हैं, तब उनके पास जाकर दो मीठी बात कहने पर खुश हो जायेंगे, वरना उनकी छाया से भी दूर रहने और अपनी कोठरी में सिर झुकाये कागजों में डूबे रहने से वे खुश थोड़े ही होंगे ? आप ही सोचें। अतः काम में नाम कमाने का सीक्रेट यही है—डोंट वर्क, याने, नॉट लाइक ए बैल। भेंट करना, घर-घर घूमकर दोस्ती करना, उनके फोटो खींचकर उन्हें भेंट देना, उनके साथ टेनिस खेलना, इसके बाद उन्हें चाय-पान से संतुष्ट करना,—किसे क्या चाहिए इसका पता लगाना, मेल-जोल बढ़ाना,—बाबा रे, यह सब सुपर वर्क। इसके लिए चाहिए बुद्धि। इंवेस्टमेंट भी कम नहीं चाहिए। मेरी बात मानो, स्योर सक्सेस, यही देखिए टेनिस का समय हो गया। कम ऑन, बी ए स्पीर्ट क्यों, क्या कहते हैं ?"

"मुझे जरा काम है,—"

"फिर काम !" रणजीत बाबू हंस पड़े,—"अच्छा, बाय, बाय।"

और चल दिये तेज कदमों से।

कुछ सोचे बिना बलिदत्त उनकी ओर चल पड़ा। पर उन्होंने तो साइकल संभाल ली है। चेहरे का एक भाग दिख रहा है, उस पर टेढ़ी सिगरेट जल रही है।

पार्शिंग सो।

उड़ता दृश्य। उड़ रहा है, उड़ा जा रहा है सामने-सामने।

अपने ऊपर बिना मतलब गुस्सा आ रहा है, लगता है वह तो एक कछुआ है, एक चिंताशील कछुआ। फिर याद आता है विभाजन, दोनों ओर दो दिशाएं, पूर्व और पश्चिम, सूर्योदय सूर्यास्त। सफलता के विज्ञापन पर लिखा है—आओ, मेरा आश्रय लो, मामेकं शरणं व्रज—लेट बी युवर फादर।

मुग्ध बलिदत्त बेवकूफ की तरह देख रहा है।

अचानक काम खत्म होने की घंटी बज उठी, ठं ठं ठं ठं। कंपनी के दफ्तर से टिड्डी दल निकल पड़ा है। होश आया, पीछे उसका कोट और टोपी लिए काख में फाइल दबाये उसका चपरासी निताई खड़ा है। गर्दन झुका चेहरा फड़फड़ा एकदम दास्य भाव दिखा कर कहता है—

"हुजूर क्या पैदल जायेंगे या गाड़ी बुला दूं,—गाड़ी बुला देता हूं। थक जायेंगे।"

"छोड़ो कौन-सा दूर है जो गाड़ी बुलाओगे, निताय चलो, हवा खाते-खाते ही पहुंच जायेंगे।"

"हवा,—बहुत धूल है हुजूर, अच्छा, ठीक है ठीक है पधारिये।"

घर के पास पहुंचने तक एक छोकरा टोकरी कंधे पर रखे अहाते के अंदर जा रहा है, उसकी पीठ दिखती है, पतली खुली देह पर झूलते लंबे बाल, जगह-जगह से फटी धोती के टुकड़े की लांग बंधी है। पीछे से निताई ने पुकारा, "अरे, हर्ष, शा—"

हर्ष ने मुड़कर प्रणाम किया।

एकदम कच्चा चेहरा, दृष्टि में एक तरह की सहज निराश्रयता भरी है, जो कि अपना बना लेती है। छोटी-छोटी निर्जीव हथेलियां अंगुली का एक नख

लाल,—शायद पक गया है।

अनजान की तरह बलिदत्त ने पूछा, "यह कौन है, निताय ?"

"यह हर्ष है हुजूर, आपका बॉय, जो हुक्म करेंगे, यह करेगा, बहुत काम का छोकरा है, पहले एक पुलिस सब इस्पेक्टर के पास था, उनके साथ बहुत दौरे किये हैं,—आप देखेंगे कितना काम का है—"

"हूं, हर्ष, क्यों हर्ष,—घोड़ा, हैं ? अरे हर्ष आ इधर आ तो,—"

"आ रे हर्ष आ, हुजूर सवार होंगे, कैसे सवार हैं तू जानेगा बाद में, जरा काम ढीला करोगे तो खींचेंगे तेरी चोटी," निता फें-फें हंस पड़ा। बलिदत्त को अपूर्व कौतुक लग रहा है, वह भी हंस रहा है, बोला, "नाखून कैसे पका रे ? दिखा तो अंगुली—" उसकी हथेली के बीच में अंगुली डाल कर धीरे-धीरे दबा देता है। हर्ष लाज से कुम्हला जाता है कुई की तरह, होंठ काट कर नीचा सिर किये ही देख लेता है, बलिदत्त उसका हाथ मरोड़ता है, गर्दन पर थपथपाता है, कहता है, "आह, शौकीन छोकरा है, नाखून बढ़ाये हैं, वाह सिर पर घने केश, और बेसर पहनता नहीं ?"

निता ने कहा, "हुजूर वह कुछ दिन 'गोटिपुण' बनकर नाचता रहा है।"

"ठीक है, फिर नाचेगा, काम न किया तो ऐसा नचाऊंगा कि पता चल जायेगा," उसके धोती के टुकड़े के छेद होकर चिकोटी काट ली। हर्ष हंसते-हंसते कूद पड़ा। बलिदत्त दास ने कहा, "यह सब क्या होता है ? तू धोती का टुकड़ा पहने है या टुकड़ा तुझे पहने है, बता तो, क्या इसे ही बांधे काम करेगा ?"

"गरीब बच्चा है, हुजूर,—" निता ने कहा "उसका है भी कौन ? हुजूर नहीं देंगे क्या ?"

हर्ष झूमता-झूमता टोकरी काख में दबाये अंदर चला गया, बलिदत्त उसे देखता धीरे-धीरे आगे बढ़ा।

अनजाने देह में एक तरह की ऊषा छा जाती है, मन भी कुछ हलका-हलका हो रहा है, नये आये 'बॉय' छोकरे के साथ मन में प्रबल उत्साह भी आ गया है। यह एक नया व्यक्तित्व है, जो उसकी देह में उलटकर तुच-मुड़ गया था, उपयुक्त परिस्थिति पाकर फिर से चिहुंक उठा है। अतीत की क्रिया की प्रतिक्रिया, जिस सूत्र से हिंसा का शिकार जमीन चाटता हुआ बाद में हिंस्र होने के लिए पड़ा रहता है। चोट खाया हुआ चोट करता है। जीवन भर उसके व्यक्तित्व को लोगों

ने आलंब बनाकर नचाया है, सब मौज उसी पर, उसी के खर्च पर,—क्योंकि वह बौना है, वह दुर्बल है। वह सब जब याद आता है तो मन जल उठता है, आतंकित हो जाता है, आज बदला लेने का मौका मिला है। उत्साह और उन्माद रोके नहीं रुकता। एक देह में लाखों जख्म, लाखों प्रवृत्ति के विकार, चुभते रहते हैं। नाना जाति के रोग के जीवाणुओं की तरह किस रोग का जीवाणु किस ऋतु में, आर्द्रता में, उत्ताप और अवसर पाकर हठात् सक्रिय हो उठता है, उसी तरह नया खयाल सतर्क हो उठा है, इसी छोकरे हर्ष की देह को वह तोड़-मरोड़कर चूर-चूर कर देना चाहता है, सोचने पर देह कांपती है।

सरोजिनी प्रतीक्षा कर रही है।

पर उसके चेहरे की ओर नहीं देख पाता, नये खयाल का अनकहा अंतरा मन ही मन गुनगुना रहा है। अंदर जाकर देखा घर—सजा-संवारा है,—टेबुल, कुर्सी, खाट, बिस्तर चीजें अच्छी तरह व्यवस्थित हैं। 'कुर्सी पर बैठकर जोर से बोला, "ए, बाय, जूते खोलो।"

हर्ष जूते खोलने के लिए बैठ गया। उसकी गोद में दोनों पैर रखकर बलिदत्त बोला, "जूते खोल, मोजे खोल।"

अचानक याद आया मन में, तन-बदन दुख रहा है, मालिश के मोठे परस की आवश्यकता महसूस होती है। सरोजिनी कपड़े लिये खड़ी है, बलिदत्त ने कहा, "बहुत थकावट लग रही है, शरीर में दर्द हो रहा है, ओह बहुत काम है।"

सरोजिनी का चेहरा सूख गया। माथे पर हाथ रखकर देखा, "देखें, तपती तो नहीं!—नहीं। डाक्टर को बुला लाओ निताई।"

"नहीं, नहीं, वैसा क्या सोचती है? वह सब कुछ नहीं है। यहां काम बहुत ज्यादा है। सिर पर अधिक दायित्व का बोझ जो आ गया। मामूली सा दर्द, तुम जाओ, चाय लाओ, ऐ हर्ष जरा बदन तो दबा दे,—छोड़, तू नहीं दबा सकेगा। अच्छा जरा मालिश कर दे। तुम खाना बनाओ।" धोती बदलकर बलिदत्त आराम से लेट गया। हर्ष ने मालिश करना शुरू किया,—पहले डरते-डरते संभल-संभल कर, फिर साहस इकट्ठा कर जोर-जोर से। इसके बाद तो उसका कोमल हाथ बेपरवाही से चलने लगा, मानो कीचड़ मसल रहा हो। बलिदत्त पसरा पड़ा है, बीच-बीच में कह रहा है,—"जरा-जरा, हां, उधर-उधर, जरा जोर। ऊंहूं, हुआ नहीं, और जरा कस कर। और थोड़ा ऊपर, हां वहां, ओह, सच कैसे टूट

रहा है।" मुंह झुकाये पसीने से लथपथ बेचारा हर्ष हाथ चला रहा है, माथे पर पसीना उभर आता है, उसकी भी देह गरम हो जाती है, किंतु वह चुप है।

बलिदत्त का इस प्रकार मालिश करवाने का नया अनुभव है। अच्छा लगता है, इस घड़ी तो मानो यही जीवन का स्वाद है। वह कितना बड़ा है। कितनी दिशाएं, कितनी ओर मुंह ! जीवन भोग के लिए है। जितना चाहे ऊंचा उड़े। जो नहीं कर सकते वे ही वर्जनाएं गढ़ते हैं और उन वर्जनाओं को वे ही मानते हैं जिनके पास साधन नहीं हैं। किंतु जो बलवान है, जिसे दूसरों की कोई परवाह नहीं,—जैसे वह खुद, अफसर,—उसके लिए ये वर्जनाएं नहीं हैं, उसके लिए आराम है,—इस तरह का आराम। ये नवाब, बादशाह उनकी शान लोगों के लिए अप्राप्य थी, उनकी सुरा साधारण के लिए गरल थी। आज भी उनके वंशधर भिन्न-भिन्न वेश में, भिन्न वृत्ति में, किंतु उसी तरह साधारण के हाथों की पहुंच से बाहर हैं। वे भोगी हैं। दुनिया उन्हें नीचे से देखती है। वे अपनी इच्छा से अपने लिए कई तरह की प्यास गढ़ते हैं। नाना उपाय निकालकर वह प्यास मिटाते हैं। कुत्ते भूंकते रहते हैं, हाथी चलता रहता है। वे डरते नहीं। छोटे लोग आपस में कहते हैं—फलां आदमी घोर कामुक है, सामाजिक आचरण भी नहीं जानता। इत्मीनान से अपनी प्रेमिका को बहन या बेटी बताकर चला लेता है। अमुक, छिः, सचमुच वह तो अवारा कुत्ता है, हाल ही उसकी पत्नी ने उसे अपमानित कर उसके मुंह में गोबर-गोमूत्र डाला है, अमुक्,—उसकी चर्चा तो बाजार में हो रही है, उसके मन की प्रवृत्ति कितनी अप्राकृतिक है, सब विश्वामित्र ने ही गढ़ा है। पर कौन ध्यान देता है उनकी बातों पर।

जिन्हें मिलता नहीं, वे ही भूंकते-फिरते हैं।

किंतु जीवन ! फूंक मार मलाई उठा सके तो उसमें नाना स्वाद हैं। वाह ! अच्छा मालिश करता है यह छोकरा, कोमल अंगुली, मन में एक नया आनंद जगा देती है।

अधमुंदी आंखों से बलिदत्त नये सुख का स्वाद ले रहा है, चेतना भावों का स्पंदन, कही, अनकही, अधकही, चुपचाप मन ही मन कही गयी भावनाएं,—कई अपने मन के कानों को सुनायी दे जाती हैं, कई सुनायी नहीं पड़तीं, खाली अनुभव करता है। स्तर-स्तर पर भाव सुषुप्त मन के ऊपर उठ आते हैं। कुछ दिन पहले वह इस तरह सोचने की कल्पना भी नहीं कर सकता था। हंसी उड़ाता कोई कहता

कि सड़कों पर घूमने वाला फतुरा भिखमंगा का मन टटोला जाय तो उसके अंदर दिखायी पड़ सकता है किसी परांगपुष्ट धनी के अत्याचारी मनोभाव, जिसे बढ़ने की सुविधा मिली नहीं है। अभाव में सड़ कर पृथ्वी में समता स्थापित करने के लिए, चिल्लाते दरिद्र आदमी के मन में भी खोजने पर कहीं न कहीं व्याघ्र-मनुष्य, आदर्शवादी मेकियावेली दार्शनिक की तीव्र आकांक्षा मिल सकती है। केवल परिस्थिति के दबाव से नीचे दबकर दूसरे रास्ते चली गयी है। अधर्म की बात उसके आगे कोई बखानता तो वह कहता—शक्ति पाकर साधारण आदमी का आदमीपन नष्ट हो जाता है, भयभीत और असंभव की रोक हटाकर अपना निहित स्वेच्छाचारी गुण खुद प्रकट करता है। आवारा गाय की तरह समाज के सामने दो पैर उठाकर दूसरे का छप्पर खींचकर खाने में उसे संकोच नहीं होता। योगी-भोगी बन जाता है। अतीत के त्याग के घाव की बड़ाई कर वह रक्त-मांस खाकर जल्दी मांसल होने का ढिंढोरा पीटकर उद्यम में लग जाता है।

किंतु दर्शनशास्त्र बलिदत्त की दुर्बलता नहीं है, उसका शास्त्र तो सफल व्यक्ति का शास्त्र है। मन में वह ब्राह्मण नहीं है। अतः उसने अपने आपको सुविधा और सुयोग की चलती लहरों पर छोड़ दिया है। वह चाहता है लहर आगे बढ़े, लहर से मिलकर बालू में मार खाकर लौटने से वह बचपन से घृणा करता है।

वह स्पंदन से स्पंदित है। "मालिश करते रहो, हर्ष, हाथ दुखते हों तो खाली हाथ फिराते रहो।" सरोजिनी कबसे चाय दे गयी, रसोईघर से निताई की आवाज सुनायी दे रही है।

हर्ष उठकर खड़ा हुआ। "ऐः, कितने छोटे-छोटे हैं रे तेरे हाथ-पांव! मोटा नहीं होता? खा-पीकर मोटा हो।" उसी कोमल देह को दबाकर अपनी ताकत आजमाने में कितना आनंद है। वह इस कोमलता से जीवन चूस लेना चाहता है।

हर्ष चोर की तरह इधर-उधर देखता है, "आह, बांह टूट जायेगी बाबू,—"

"हें-हें-हें-हें,—देखता है, मुझमें ताकत है।"

"बहुत ताकत, बहुत जोर है बाबू, ओह! छोड़ दो, छोड़ दो।"

"ऐसे जंगली की तरह क्यों होता है? अच्छा, तू तमाशों में नाचता था ना, क्या-क्या बनता था तू?"

"रानी बनता था, बाबू—"

"वाह वाह! रानी, गुरु ने किस तरह आंख मारना सिखाया था, जरा

दिखायेगा नहीं ? हा हा—"

हर्ष हंस पड़ा, बलिदत्त ने कहा, "अच्छी तरह काम करना। तू मेरे पास रहेगा। गरमी के दिनों में पंखा खींचने का काम शुरू होने पर मैं तुझे अपने पास रख लूंगा, बड़े होने पर चपरासी बनना, नहीं तो कंपनी के डिपो में कारपटदार बनवा दूंगा।"

"अच्छा होगा, बाबू !"

हर्षा फिर हंस पड़ा। अब वह पराया नहीं, अनजान नहीं, समझता है कि उसकी भी परिस्थिति बदली है। इसी सुविधा में उसने भी अपना दानापानी का थाल आगे रखते हुए कहा, "ये देखें बाबू, कैसे फट गयी है,—कोई पुराना-धुराना गमछा हो तो—"

"मिलेगा, मिलेगा, सब मिलेगा।"

"और आज खाने के लिए घर पर कुछ नहीं, दो आने—"

"ठीक है, ठीक है, ले लेना",—उठकर कमीज की जेब से दुवन्नी हर्ष की हथेली पर रखकर पीठ थपथपा दी। "ले, ले मुंह मांगा दे रहा हूं। फिर कल जरा पैर दबा देना, हैं।"

हर्ष काम पर चला गया। बलिदत्त का मन खुला है, यह उसका पहला उदार दान है, एक ही बार में दुवन्नी, बहुत आत्मसंतोष होता है। अंदर जाकर सरोजिनी को कहा, "छोकरा बहुत अच्छा मालिश करना जानता है। चलो, देह में कुछ फुर्ती आयी, लाओ, कपड़े दो, जरा घूम आया जाय।"

देह पर थकान है। बलिदत्त ने कहा, "नहीं, रहने दो आज, तुम्हें अकेला लगेगा। मैं फिर लेट जाता हूं।"

सरोजिनी ने कुछ नहीं कहा। वास्तव में उसे एकदम सूना-सूना, अकेला-अकेला लग रहा था, जैसे कभी-कभी लगा करता था।

काम, काम।

और काम की आड़ में रोज खाली बहाने ढूंढ़ना, किस उपाय से वह धीरे-धीरे

आगे बढ़ सकेगा। उपाय सोचकर काम, फिर काम।

कई साधारण बातें उसके अभ्यास में आ गयी हैं। वह ज्यादा कहीं नहीं जाता। यदि जाता है तो कोई खास उद्देश्य लेकर और आफिस या कंपनी से संबद्ध किसी को देखते ही स्वतः उसके मुंह से निकल जाता है,—"ओह ! इतना काम। पसीना पोंछने को भी फुरसत नहीं।" तुरंत वह अपने किये हुए काम का एक कल्पित नमूना रख देता है। लोग सुनते हैं, किंतु सुनकर दिमाग में लेने से पहले सच-झूठ छांटना साधारण मन की प्रक्रिया के बाहर की चीज है, इसी मनोविज्ञान का सहारा लेकर बलिदत्त पांच को पंद्रह बढ़ाकर कहता है। किसने कैसा उपदेश दिया था, उसे याद आता है,—उस शास्त्र का नाम है, ब्लफोलोजी। रास्ते में वह तेज चलता है, जैसे बहुत व्यस्त हो। पूछने पर कहता है—"काम का बहुत बोझ है, खड़े रहने तक को फुरसत नहीं।" और कभी कोई उसके घर घूमने आये, बाहर से आवाज सुनते ही घर तैयार हो जाता है,—टेबल पर कागज अस्त-व्यस्त, फाइलों के ढेर, दवात का ढक्कन खुला है, कलम की निब गीली है। धीरे से पर्दा हटाकर आगंतुक का स्वागत करता हुआ कहता, "काम करते-करते कमर दुख रही है। यह कुछ ही दिन तो हुए आये, पर उनके मन को पता नहीं कैसे भा गया हूं, कि जितने भी बड़े-बड़े उत्तरदायित्व के काम हैं, सब लाद देते हैं मेरे ही ऊपर। क्या करूं ? करना तो होगा ही। कंपनी का स्वार्थ तो देखना ही होगा, लाखों रुपयों की बात है। नियत की तरफ से सतर्क न रहें तो तनख्वाह हजम कैसे होगी ? कंपनी ठहरी हमारी अन्नदाता।" ब्लफोलोजी। गंभीर होकर ठीक भंगिमा से कहा जा सका तो सुनने वाले के मन में उसके प्रति गहरे सम्मान की भावना जागती है, पर वह देखता है,—वह अकेला ही भावुक नहीं।

पहली वाली नौकरी में साथी किरानियों के बीच रहते समय उसने सोचा था,—उसकी तरह सफलता को विज्ञान मानकर कार्य करने वाले लोगों की संख्या अधिक नहीं है। जो थे भी, उनकी योजना में विलक्षण सूक्ष्मता न थी।

किंतु यहां देखता है, कंपनी के अफसर श्रेणी के कुछ को छोड़ कर बहुत मेधावी हैं। अकेले रणजीत बाबू ही नहीं, और कई हैं। कई तरह के उनके उपाय हैं,—ध्यान देकर खाते में नोट रखने की तरह। नाना चेष्टाएं,—स्थूल से सूक्ष्म तक। बलिदत्त विह्वल हो उठता है। जहां इतनी बड़ी-बड़ी तोप-बंदूकें छूट रही हैं,—वहां वह तो छोटा-सा छर्रे का पटाखा है। कभी-कभी भविष्य की आशा छोड़

देता है । फिर लग जाता है कोशिश में । वही उपाय खोजता है जो उसकी आकृति, स्वास्थ्य, कुल, घर आदि की पूंजी से चल सकेगा ।

उस दिन की बात है,—मझले साहब को बुखार चढ़ा हुआ था । ऊपर वाला यदि बीमार होता है, तो सफलता के इच्छुक अधीनस्थ के लिए यह एक परम सुअवसर है । रणजीत बाबू, अंगूर, बेदाना, सेव, संतरा आदि एक टोकरी दे गये, पर अर्थकारी योजना, बलिदत्त के लिए असाध्य है । नौकर से छीनकर पंखा कर दिया है, यद्यपि मझले साहब तब आंख मूंदे थे ।

डाक्टर को बुलाने दो-तीन बार गया है । पर यहां स्थूल योजना की जरूरत थी, जो कि उमेश बाबू कर सकते हैं । उमेश बाबू डील-डोल में विराट हैं, मानो पूरे असुर हों । भोजन, भूख और प्रवृत्ति में भी वे निर्लज्ज आसुरी हैं, बलिदत्त सोचता है । किंतु जितनी ईर्ष्या में जले, उसे सहना पड़ा कि—ज्वर पीड़ित मझले साहब के बिस्तर के पास उमेश बाबू की प्रतिपत्ति ही अधिक है । क्योंकि सबके सामने दोनों सबल बाहु फैलाकर मझले साहब के तलवे और जांघ मल सकते हैं, डरते-डरते बलिदत्त ने भी अपनी दुर्बल छोटी बाहु बढ़ा दी थी । किंतु उमेश बाबू अन्यमनस्क भाव से उसकी हथेली सहित मालिश कर गये । बलिदत्त की आंख से पानी निकल आया । उसने और दूसरी बार चेष्टा नहीं की । इसके बाद,—एक बार जब बुखार में तपते हुए मझले साहब की आंखें लाल हो गयीं, सिर तवे-सा तपने लगा, बार-बार होंठों पर जीभ फिराकर दांत किटकिटाने लगे, हाथ-पांव पटकने लगे, बावले हो गर्जने लगे, "फाइल,—फाइल लाओ," और डाक्टर ने कहा उनका सिर नीचा कर पानी डालना पड़ेगा,—वह काम भी उमेश बाबू ने ही किया, इसलिए कि सबसे ताकतवर वे ही थे । तब उनकी भंगिमा से लगता था, मानो वे ज्वर के साथ कुश्ती कर रहे हैं । वे जो भी करें वह उनके खिलाड़ी मन की उदारता के रूप में सहज ही चल जाता है । इसमें आश्चर्य क्या, वे मझले साहब के प्रियपात्र होंगे ।

इसके बाद, वे ही उमेश बाबू,—खुद बड़े आदमी के लड़के होने पर भी, बेकार में ऊपर वालों के पास जाकर जिद करते हैं,—"सर, बहुत भूख लगी है, लाइये न कुछ ।" हंसते-हंसते चने, उबले मोठ, पकौड़ी, बैंगनी आदि मुंह में डालते हैं । और आगे बढ़ जाते हैं, किसी को धर्म पिता, किसी को धर्म भाई बना डालते हैं । हंसते-हंसते ऊपरवालों की छोड़ी हुई पोशाक, पुरानी चीज की ओर हाथ बढ़ा कर

कहते, "दे दीजिये न इधर, आपके पास तो बहुत है।"

उमेश बाबू के मुंह से लाड़ भरी बातें मीठी लगती हैं। वह,—बलिदत्त देखता है और गहरी सांस छोड़ता है, यह उसके लिए साध्यातीत है।

निराकार बाबू हैं,—लड़कियों के लिए वर खोजने में सिद्धहस्त, इस उपकार के लिए ऊपर वालों में उनकी विशेष खातिरदारी होती है, पर सब जानते हैं, वे जरा आलसी किसम के हैं, काम जरा कम करते हैं। किंतु जरा-सा मौका पाते ही पात्रों के बारे में बातें करने लग जाते हैं, जेब से कई चिट्ठियां निकालकर उलटाते-उलटाते कहते जाते हैं,—"देखो, राम लिखता है, एम. एस-सी. में पढ़ता है। लिखा है काका, मेरा सादर प्रणाम स्वीकार करेंगे। आ हा हा हा कितना अच्छा लड़का है।" उसके मुंह से फूल झरते हैं, तारुण्य की आलोचना, वही उनकी कला है,—वहां भी बलिदत्त के लिए टक्कर देना असंभव है।

और भी असंभव उम्मीदवारों के साथ प्रतियोगिता करना दुराशा मात्र होगा, जहां वैवाहिक संबंधों पर पदोन्नति निर्भर करती है, वह क्षेत्र भी उसके लिए निषिद्ध है। उस क्षेत्र में ऐसा होना है भी स्वाभाविक, खास संबंध के कारण खास आसन,—क्योंकि मुट्ठी में रखने और पकड़ रखने की तो आदमी की सहजात वृत्ति है। कंपनी डिपो से लेकर द्वीप-द्वीपांतर तक सब जगह शासन की लहर में दिखते हैं सुसर-जंवाई, साले-बहनोई,संबंधी-संबंधी, ससुर-जंवाई-संबंधी-सालों की भंवर। इसके बाद भाषाई दल, जातीय दल, सब जगह बस 'मामकाः'। इस तरह दल गढ़कर जगह-जगह क्षमता की पोखरी खोदकर आराम से लोग छिपकर मछली मारते हैं। बलिदत्त का वहां प्रवेश नहीं। वह केवल देखता है,—कंपनी के कर्मचारियों के स्थानांतर के बारे में कभी-कभी जो आदेशपत्रिका छप कर ऊपर से आती है, उसके स्थानांतर मानो पंचांग की विवाहादि तिथियों के साथ संबंध रखती है।

दानापानी के संघर्ष में यह सब रोज-मर्रे की घटना है,—बलिदत्त गंभीर होकर सोचता है, यहां प्रतिद्वंद्विता करना असंभव है, क्योंकि सदा सब युगों में यही कई बातें रहती हैं, जहां सिर्फ अपनी कार्यक्षमता से ही काम नहीं चलता।

किंतु इसके अलावा भी कई रास्ते हैं, उन रास्ते के बटोहियों को अपनी ओर देख-देखकर वह अपनी योजना बनाता है।

ये हरिहर बाबू को ही लो,—ऊपर वालों के हाथ वारसी हैं। ऊपर वालों के चपरासियों से संबंध रखते हैं उन्हें पूछकर किस चीज की कहां जरूरत है, और वह कैसे जुटायी जा सकती है। जिसके पास काम करते हैं, क्रमशः हाथ-पैर फैलाकर उसी पर लुढ़क पड़ते हैं, मानो अंधी लहर हैं। हाथ में चाक लेकर वे सारे काम करा सकते हैं, ऊपरवालों से अपने लिए सिफारिशें लिखवा सकते हैं, एकदम जड़ से शुरू होकर पेड़ के आधे तक तो चढ़ भी गये। सदा हंसमुख चेहरा, पर दिखते हैं हरदम कार्यव्यस्त। उनके घर के सामने तीन बड़े-बड़े तख्तपोश पड़े रहते हैं, ठीक रास्ते के पास। जब उन तख्तपोशों पर पत्थरों से फाइलें दबी पड़ी रहती हैं, हुक्का पकड़े काम का बहाना किये बैठे रहते हैं। कहीं गप्पें मारते समय तर्क के साथ-साथ कोई गुप्त बात न निकल जाय, इसलिए वे औरों से संबंध बचाकर ही चलते हैं, कोई जिकर कर ही बैठता है तो एकदम साधारण पर अकाट्य युक्ति दिखाकर बचाव करते हैं—

"मैं चलता हूं, जी, मुझे हाजत हो रही है।"

और ठीक उनके उलटे हैं धनेश बाबू। सोने की छड़ी सी देह याने वे गोरे हैं और स्वास्थ्यहीन, सीना जैसे कुछ पतली-पतली हड्डियां, डांडी-सी छाती, किंतु सिर बड़ा और चेहरा भरा-भरा। खरगोश के से कान खड़े ही रहते हैं यद्यपि कुछ ऊंचा सुनते हैं। कोई कुछ पूछे तो पहले 'आय—ऐं' कहने की आदत हो गयी है। लंबे मुंह पर साधारण सी भंगिमा होते हुए भी मुंह हल्का टेढ़ा-सा खुला रहता है और आंखों में कौतूहल, जो मोटे चश्मे से होकर स्पष्ट झलक आता है। उमर यही कोई तीस-बत्तीस के आस-पास, पर कानों के ऊपर कुछ चमकते सफेद बाल और माथे पर की उभरी हुई नसों में गांठ सी पड़ गयी है।—स्वास्थ्य अच्छा न हुआ तो क्या देह में फुरती तो है। एक तरह से स्फूर्ति के अवतार हैं। अपटुडेट वेश देखते ही सिगरेट का टिन पेश करेंगे। बातों में खरीद लेंगे, मीठी हंसी, मानो आंखों में सम्मोहन हो। शाम को टेनिस जरूर खेलेंगे, ठीक से खेलना आता नहीं, फिर भी रात में अड्डा जमाकर ब्रिज पीटी जायेगी, यद्यपि खूब हारते हैं। संगीत, साहित्य, इतिहास, दर्शन, अर्थनीति, राजनीति—प्रत्येक विषय में उच्चकोटि की सांस्कृतिक आलोचना शुरू कर देंगे, किंतु अंत में हारकर शिष्यत्व स्वीकार कर लेंगे। इसके बाद विजेता के गुणों का विश्लेषण शुरू कर उसके दो-चार अच्छे गुण दिखा देंगे, चाय-सिगरेट पिलाकर छोड़ेंगे, मानो विजेता दौड़ेगा और एक बार,

कम से कम एक बार और जीतने का सुख पाने के लिए। उनका एक बड़ा गुण यह है कि दूसरे को उकसा कर आक्रमण करने का आभास देकर उससे हार सकते हैं। ऐसा करने से ऊपरवाले को बारबार धनेश्वर बाबू के संस्पर्श से एक प्रकार की मानसिक तुष्टि मिलती है, और वह उनमें मानसिक उत्कर्ष का अनुभव कर अपने अहंकार में उदार हो उसका शुभाकांक्षी बन जाता है। कोई उन्हें टेनिस सिखाने की चेष्टा करता है। तो कोई इन्हें आफिस का काम सिखाने की चेष्टा करता है। सबके परिश्रम से उपकृत होने की तरह प्रतिदिन उन्नति दिखाते हैं,—वे कितनी जल्दी कोई बात समझ सके। इसी बात की चर्चा करते समय ऊपर वाले उनकी बुद्धि की प्रशंसा करते हैं। सब अपने को उनका अभिभावक मानकर उन्हें आगे धकेलने की चेष्टा करते हैं। मनुष्य के जड़ से ही उसके गठन में यथेष्ट मात्रा में नेगेटिव गुण न हों तो इस तरह का उत्कर्ष पाना असंभव है। धनेश्वर बाबू को वह मिला है, उसके साथ सबके आगे बिलकुल निरीहपन का भेष। उसी की आड़ में वे कंपनी के प्रभाव को बेच खाकर कई तरह का फायदा उठाने का व्यवसाय चला सकते हैं। परिवार गांव में है। अतः आतिथेयता की पराकाष्ठा दिखाने के लिए अपना घर खाली पड़ा है, और परिवार देखने जाने की फिक्र में लब्ध धन यथास्थान पहुंचाने के लिए कंपनी से काफी छुट्टी भी पा जाते हैं।

यह सब बुद्धि का खेल है, वह उपाय पकड़ने में भी बलिदत्त पिछड़ जाता है और कई आशावादी लोग कमर कसकर लगे हैं दैवी शक्ति के आह्वान में। देवेंद्र बाबू हैं ना,—बार-बार उनके घर ब्राह्मण भोजन, सत्यनारायण कथा, त्रिनाथ मेला, होम, यज्ञ, प्रसाद, देवपूजा होती रहती है। एक दढ़ियल बाबाजी प्रायः उनके घर में दिखायी पड़ते हैं। सारा उद्यम पदोन्नति के लिए, और पदोन्नति हुई भी है। चंद्रकांत बाबू कुंडली के फल और भाग्य में विश्वास करते हैं। उनके घर में कई तरह के भविष्यवक्ताओं का समागम होता है। कोई कर्ण पिशाची साध रहा है। कोई घड़ी देखकर प्रश्न का उत्तर देते हैं। कोई चेहरा देखकर भविष्य बता देते हैं, कोई हाथ देखकर, तो कोई कुंडली। अनेक गणनाकारों द्वारा दशा-शोधन कार्य हुआ है, किसी की गणना किसी से मेल नहीं खाती। फिर भी जब वे जिस अरिष्ट-शांति के लिए करते हैं, वही करते हैं, और नये गणनाकार की खोज में उनका चित्त सदा जाग्रत है। त्रिगुणा कवच, दैवी कवच, अष्ट धातु की दैवीय अंगूठी, वशीकरण रुमाल आदि अनेक संपद उन्होंने संग्रह कर रखे हैं। पदोन्नति

के लिए इसी तरह का उनका मार्ग है।

बहुत अर्थसाध्य, फिर अनिश्चित—बलिदत्त इस राह से दूर हट जाता है।

तो उपाय।

बलिदत्त चिंता में फंस जाता है, पर आशा नहीं छोड़ता।

बार-बार औरों को देखता है, विभिन्न उपायों को तोलता है, मन को मारकर लौट आता है, फिर भी परिश्रम में ढील नहीं पड़ती।

सफलता शास्त्र की आदिम-नीति के अनुसार वह रोज सोने से पहले दिन भर की बात सोचता है। आज उसने उन्नति के लिए क्या किया है। और वह क्या कुछ कर सकता है।

यद्यपि उपाय की दिशा में मोटा-मोटी कुछ बातों का अभ्यास करते कई लोगों को उसने देखा है, उस ओर ही वह केवल नाक सूंघता है। अगले दिन दफ्तर में देखा —गुरु बाबू ने अचानक दाढ़ी साफ करा ली है, दाढ़ी बढ़ाकर दो-चार सौ उधार लिये हुए की तरह जो मुंह लटकाये रहते हैं, उनके चेहरे से हंसी उतरती नहीं, चमकदार कवरवाली अंग्रेजी में सफलता शास्त्र की प्रति जेब से निकाल बढ़ाते हुए बोले, "सर, बहुत अच्छी किताब है।" लाल पेंसिल से लकीर दी गयी है पहले ही सूत्र के नीचे—'सर्वदा हंसना' बेचारे गुरु बाबू। कंपनी में नौकरी करते बारह वर्ष हो गये, जहां शुरू की थी वहीं पड़े हैं, बस परिवार बढ़ा है। दानापानी की चिंता में बारह वर्ष पड़े रहे, फटी दीवार पर गोबर लीपने की तरह। वे बाकी के सारे वर्ष हंस सकते हैं पर अवस्था नहीं सुधरेगी।

और व्यर्थ ही खुशामद कर सकते हैं जो लोग, रटें मन ही मन, उनकी इच्छा, विशेष कुछ उपकार होने वाला नहीं।

क्योंकि यहां बहुत तेज प्रतिद्वंद्विता अति जटिल उपाय की खींचतान और जोड़-तोड़ हैं। बुद्धि का खेल ठहरा।

बलिदत्त सोचता है, सिर दर्द करने तक सोचता है। फिर एक नयी पढ़ी हुई आत्मोन्नति की पद्धति का अनुसरण कर अपने आप को ऑटो सजेशन करता है, सोचता है उसकी उन्नति हुई है। खुले आकाश के नीचे बैठकर देह को सम अवस्था में रखने की चेष्टा करता है और एक विख्यात उपाय का अवलंबन ले मन ही मन कहता है—

विश्व को परिपूर्ण किये हैं प्राण।

वही शक्ति मैं सांस से ले रहा हूं।

मेरी देह में प्राण भर रहे हैं, भरते जा रहे है।

मैं प्राणों से प्राणवंत हूं।

मैं इच्छा करता हूं, नौकरी में मेरी उन्नति होगी, जरूर।

मैं आदेश देता हूं, मेरे पास धन हो, नौकरी में उन्नति हो।

सोचते-सोचते भावना हिल जाती है, ध्यान रख नहीं पाता है। अभ्यास करता है, रोज रात में सोने से पहले।

कंपनी की कर्मचारी मंडली में वह सबको सफलता के प्रति सचेत नहीं पाता। कई ऐसे भी लोग हैं जिनकी कार्यपद्धति उसके सफलता शास्त्र में नहीं है, फिर भी थोड़ी-बहुत सफलता देर से हो या सबेर से, उनके भाग्य में भी पड़ी है।

दिवाकर बाबू हैं, विश्वविद्यालय के एक मेधावी छात्र थे। राजनीतिक स्वाधीनता आंदोलन में भाग लिया, अतः सरकारी नौकरी न कर कंपनी की नौकरी में चले आये। घर में खद्दर पहनते हैं, कभी-कभी भावुकता में डूबे रहते हैं, तो कच्छा खुलकर जमीन पर लोटता रहता है। खड़ाऊं पहनते हैं, कुछ लोगों का कहना है कि वे एकांत में योग साधना करते हैं, फिर भी अपनी जबान से कभी धर्म का प्रोपागंडा नहीं करते। धीरे-धीरे बात कहते हैं, मन देखकर बात गूंथने की सूक्ष्म कला में तो उनकी बुद्धि माहिर है। कड़े आदमी हैं। लोग उन्हें कड़ा अफसर कहते हैं। कोई नहीं कह सकता कि अपने रास्ते से हटकर उन्होंने कभी किसी का मन खुश किया है। शाम को गप्प-बाजी के लिए कभी बाहर नहीं निकलते। कभी किसी झुंड में शामिल नहीं होते। फिर भी लोगों की जबान पर उनकी प्रशंसा उच्छ्वसित है और वे धीरे-धीरे उठते जा रहे हैं तथा कंपनी के दायित्वपूर्ण अफसर कहलाते हैं।

हां, गतीश्वर बाबू, जोरदार तार्किक। अंदर कोई बात ढक कर रखने की चेष्टा तो दूर, उलटे बात-बात में चिल्लाते, मार काट सी मचाते चलेंगे। तर्क और ज्ञान के बल से जो भी मुंह खोलता है उसे चुप कर देते हैं। खड्ड-खाई तो जानते ही नहीं। जिनका नाम लेकर सफलता कामी सौ बार प्रणाम करता है,उनके बारे में तो इतनी कड़ी बात कहते हैं, कि "चोर, डाकू, खुशामदी टट्टू कहीं का।" उनका गोरा-चिट्टा चेहरा उनकी बात में जोर लगाता है। चांद बनता जा रहा सिर विश्वास पैदा कर देता है। जमीन पर मानो मोटे-सोंटे को पटकते हुए बात

पर जोर दे रहे हैं। वे भी विलास-व्यसन हीन हैं, उनके जीवन का एकमात्र भोग है रोज पेट भर पेड़े खरीदकर खाना।

पर उनका कुछ बिगड़ता नहीं, सीढ़ी पर वे ऊंची जगह हैं।

इनके अलावा और भी कई हैं। जो लोग बस उत्पादन जानते हैं, दुकानदारी नहीं। सिर-जबान झुकाये खटते रहते हैं, खटते जाते हैं। उन्नति के लिए इन लोगों की कोई घरेलू योजना नहीं। फिर भी इनमें से कई ऊपर उठते हैं, शायद कभी सोचते नहीं कि वे उठें या गिरें। एक अंतर्यामी बाबू हैं, सोलह साल पड़े रहने के बाद हाल ही में उन्हें एक पदोन्नति मिली है, और कंपनी से कुछ प्रशंसा। फिर भी वे सदाबहार गोल-मटोल, हरदम हंसते-गाते, मधुरभाषी, पांच मिनट में दूसरों का झगड़ा खत्म करने में धुरंधर। उनका कहना है मैं आशावादी हूं, मैं फुटबाल हूं, मुझे जितना पीटोगे, मैं उतना ही ऊपर उठूंगा।

बलिदत्त इनकी बात सोचता है फिर भी अपने सफलता शास्त्र से उसका विश्वास टूटता नहीं। एक युक्ति से वह इन सब को उखाड़-पछाड़ एक ओर फेंक सकता है। भाग्य ? —हो सकता है ये लोग भाग्यवान हैं।

पर वह भाग्य की प्रतीक्षा में नहीं पड़ा रहना चाहता। वह छटपटाता है।

फिर भी विश्वास है कि इस तरह सोचते-सोचते, टटोलते-टटोलते जरूर एक दिन अंधेरे में उसे रोशनी दिखेगी, सुविधा मिलेगी।

किंतु कब। कितने दिन और हैं। अधीर होकर बलिदत्त सोचता है। भावना चुकती नहीं।

कंपनी की दुनिया में अफसर की गृहिणी होना धीरे-धीरे सरोजिनी को रास आ गया। दूर आने पर भी उसे अपने समाज में ही घूमना पड़ेगा। शुरू में नया-नया लगता है, बाद में अपना हो जाता है,—मानो वह शुरू से वैसा ही था। इतनी बड़ी दुनिया में इतने लोग, नाना जाति और नाना बोली के, किंतु जाति के क्रम से वह अपना संस्कारगत अर्थ फेंक कर उसका उत्पत्तिगत अर्थ लेती है—वृत्तिभेद से जाति भेद—ब्राह्मण क्षत्रिय आदि जाति नहीं, जाति के नये भेद

हैं— मजदूर जाति, मालिक जाति, किरानी जाति, अफसर जाति, फिर किसी कंपनी के कर्मचारी जाति, दूसरी कंपनी के कर्मचारी जाति, सरकारी कर्मचारी जाति, वकील जाति, प्रोफेसर जाति, पत्रकार जाति।

बाहर के जाति भेद के बारे में सिर खपाने की सरोजिनी को सुविधा नहीं। वह कभी-कभी अपने जाति-राज्य में घूमती है, देखती है, सोचती है, अपनी गृहस्थली में फिर लौट आती है जहां वह सिर्फ नारी जाति है।

घर भर रहा है, निताई की कर सकने की क्षमता धीरे-धीरे अनुभव कर रही है। सांझ घिर आने के बाद पिछवाड़े बाड़ी में कुछ अनजान लोग कभी-कभी निताई के साथ आते हैं, रात के अंधेरे में ही बलिदत्त के साथ फैसला होता है,—घर-गृहस्थी के इस नये रास्ते के साथ बलिदत्त को सहमत होना पड़ता है, भले बुरे की बात या विवेक को धक्का मारकर गड्ढे में केवल इसलिए गाड़ देते हैं कि "आदमी जिंदा रहेगा।"

अतः घर भरता जा रहा है। बोझ के बोझ केले, बोरे के बोरे चावल, धान, धन। दोनों गृह संचय योजना में जुट गये हैं। किसी दिन एक बार शुरू कर दिया तो बस फिर पाने का मोह उन्हें छोड़ता नहीं, झोंके जा रहे हैं काम में।

क्षुद्र बलिदत्त, अपने-आपको काफी समझदार समझकर स्त्री के आगे अपना दर्शनशास्त्र बखाना करता है—"खुद जो कर सके उसी का नाम तो कर सकना है, दूसरा करे तो उसका नाम है चोरी, किंतु बड़े से छोटे तक देखो,—सब लगे हैं; जो न लगे वह मूर्ख है, बेवकूफ। चींटी से कोई पूछता है किसका दाना लिए जा रही है। उसी तरह कंपनी फिर क्या चीज है। लूटने की कल तो है? अतः यदि—। यही देखो न, मिस्टर एडवर्ड ने दो लाख, मिस्टर राधारमण ने एक बार में तीन लाख, मिस्टर वैद्यनाथ मेनन ने बेटी के विवाह में कंट्राक्टरों से सिर्फ साठ हजार के उपहार लिए हैं। ऐसे ही ढेरों उदाहरण पड़े हैं। ये सब दक्ष आदमी हैं और हम लोग तो आधे बेवकूफ हैं। करते रहो बेटे आधी लंगोटी बांधे न्याय विचार, पहले स्वर्ग जाएंगे। आजकल की दुनिया ये बाबा, सहज नहीं है; करो, नहीं तो मरो। क्या कहते हैं सब लोग? अकाल के दिन हैं, जोड़ लो, जोड़ लो कुछ, कुछ पैदा कर लो। कहां से जुड़ेगा, कहां से पैदा होगा? इसी से तो?"

कहते-कहते आंख मारकर फें-फें हंस पड़ता है। अजीब दिखायी पड़ती है उसकी भंगिमा। चेहरा गोल-गाल हो आया है, देह पर मांस लगने लगा है, स्वच्छंदता

और सफलता की चर्बी का पुट लगा देता है।

एक 'सक्षम' का उदाहरण दिया करता है, "कंपनी की कहीं एक लोहे की संदूक थी। बुद्धिमान बड़े बाबू की उस पर आंखें हुई थीं। पहले वह खाते में लिखी गयी खाली 'संदूक'। पांच वर्ष बाद लिख दिया गया, 'संदूक को दीमक चाट गयी'। चाट जाने की बात, बहुत पुरानी संदूक को चाट सकती थी। सक्षम व्यक्ति लोहे की संदूक को दीमकों से चटवा सकता है। वह क्या कम आदमी है ? वैसे—

किंतु बलिदत्त जितनी दूर आगे देखकर हंस सकता है, सरोजिनी उतना नहीं हंस सकती। घृणा से मन तिलमिला जाता है। कटास की तरह देखती है बलिदत्त की ओर। वह नारी जो ठहरी, उसे दो रोटी मिली हैं, कपड़े मिले हैं, गहने मिले हैं।

वही क्या सब कुछ है ?

कभी-कभी उदास होकर दूर देखती रह जाती है।

लगता है···चिड़िया उड़ गयी हैं।

पत्ते सूख-सूखकर झरते जा रहे हैं।

नदी भर गयी है।

और वह खुद,—अपने आपको एक उपहास सी लगती है, यह उपहास एक कीमती साड़ी पहनता है, जूड़ा बनाता है, गहने पहनता है, शृंगार करता है, खाली देखता है।

खाली देखता रहता है।

कभी नींद के बहाने, कभी जागते सोये रहने पर अचानक कानों से दूर की लहरों का छलछलाता जीवन टकराता है, जिसकी असंख्य प्रवणता दूर से तैर कर आयी। भीगी हवा, चौंककर भरा हुआ मन जाग उठता है।

चौंककर देखती है। सच, क्या वह प्रतीक्षा कर रही है ?

उसकी प्रतीक्षा का अंत नहीं।

असंयत हो बाहर दरवाजे पर अन्यमनस्क भाव से बाहर देखते समय उस दिन अचानक सिगरेट का धुआं छोड़ते हुए हाथ में टेनिस का रैकेट लेकर एक सुंदर

पुरुष पतिपरमेश्वर बलिदत्त के आगे-आगे आते देखती है। देखते ही सरोजिनी अंदर भाग जाती है।

स्वभाव में वह असंयत नहीं, गंभीर और मौन है। गुप्त मन का अकेलापन गहरी सांस छोड़ने के लिए सदा के अभ्यास के अनुसार दूर के मर्मांतक सूर्यास्त को देखते समय घर की ओर बढ़ते हुए दो जनों को देखकर शायद उसके गहन मन के अंदर कोई लुप्त तरंग सी प्रवाहित हो गयी होगी। और शायद उसी की कोई लहर अनजाने ही उसके अवयवों पर दौड़ गयी होगी। और वही लहर उसके पहनावे को असंयत कर गयी होगी। इसका उसे पता नहीं। उसे अपने पर गुस्सा आता है—छि: क्या है वह सचमुच ! बहुत सज्जन, जिसे लोग बलिदत्त दास कहते हैं उनकी है ? छि: क्या सोचा होगा लोगों ने ? छि: क्या सोचा होगा ! इसी तरह सोचते-सोचते उसके अनजान मन में विचारों की तरंगें खिल जाती हैं, अब वह स्वच्छंद लहरों तक जा सकती है,—जिसके लिए नारी सृष्टि में रानी है, लता सृष्टि की श्री, मानव का मन हमेशा से प्रकृति पर आश्रित है; न्याय-तराजू भले-बुरे के विचार से परे है। मन में सोचते-सोचते उसका चेहरा लाल हो जाता है। बाल खुलकर फैल जाते हैं। माथे पर पसीना। झरोखे के पास सूर्यास्त में दूर देखते-देखते नासा फूल उठती है मानो झुरमुट की ओट में छुपे आगंतुक की पदचाप सुनकर वन जंतु कुनमुना रहा है।

"यह गरीब की झोपड़ी है, रणजीत बाबू, और आपके जैसे रईस के बेटे, प्रसिद्ध आदमी के जंवाई तो नहीं हैं। आप तो बड़े आदमी हैं। आप खुद चलकर आये हैं अहोभाग्य मेरा।"

"ठीक है, बलिदत्त बाबू, दे दीजिए चाहे जितनी गालियां। वास्तव में आपको आये इतने दिन हो गये, मैं आ ही न सका, असल में मेरी भूल है। पर आप भी तो कभी बुलाते नहीं, क्यों, खाना देना पड़ेगा इसलिए ?"

"हां, खिलाना पड़ेगा इसीलिए तो ! विदुर के घर साग-पात है और क्या ! पहले आपको बैठाने के लिए ही जगह नहीं है और—"

"हें-हें-हें-हें—क्या कहना ! अच्छा, आपके यहां इतनी जगह है,—झरोखे के सामने, किंतु जरा दूर है, है कितनी सुंदर, छोटा सा बगीचा भी हो सकता था, यहां गुलाब, डहलिया, क्रिसैंथिमम, उस ओर किनारे-किनारे कैन, लिली, जूही, मैग्नोलिया,—आह कितना सुंदर होता।"

क्या झरोखे की ओर देखकर लिया ? लगा उसी ओर देख रहे हैं, किंतु दूर दरवाजे की ओर देख रहे हैं, बलिदत्त कह रहा है,—"यह खाली बंजर देखते-देखते आपको फूलों की याद आ गयी ? वरन् मैं तो सोचता था यदि हो सकता तो कुछ अधिक अनाज पैदा करता, पोई, पालक, बथुआ, बैंगन, भिंडी, प्याज, पेठा,—"

फांय से सरोजिनी हंस पड़ी, फिर रोक ली, वे भी हंसते हैं,—सुंदर पास-पास सटे हुए चमकीले दांत, ऐसा भी हो सकता है ? हंस रहे हैं रणजीत बाबू, अंग्रेजी में उन्होंने क्या कहा वह कुछ समझ न सकी, पर ओड़िआ तो अवश्य समझती है,—"आपकी तो जबर्दस्त प्रैक्टिकल इनसाइट है बलि बाबू ! आर्गानाईजिंग एबिलिटी बहुत ज्यादा है, मुझे तो अनाज अधिक पैदा करने वाली बात स्ट्राइक ही नहीं कर सकी। पर बात क्या है जानते हैं, किसी जगह खड़े होने पर वहां की मिट्टी से निकल-कर अपने आपही जगह से मेल खाता हुआ आइडिया आदमी के मन में घुसता है। आपके यहां खड़े होकर जब आपके घर को देखता हूं, मन में केवल फूलों की बगिया की बात ही उठती है, खूब फबती है।"

ओह कैसा आदमी ! शिकारी आदमी। सरोजिनी सोचती है। इस तरह मिठाई के अंदर पूर भरने की तरह बात के अंदर बात का अर्थ रखकर उन्हें कहना आता है।

किंतु सरोजिनी नहीं जानती। आदमी की प्रथम प्रवृत्ति, आदिम प्रवृत्ति है शिकार। बेवकूफ की तरह बैठी देख रही है। बलिदत्त की बातें संगीत में काठ के ढाबल मरम्मत करने की तरह बेसुरी सुनायी पड़ रही हैं। बलिदत्त कह रहा है, "आप अभिजात हैं, अभिजात मात्र ही स्वभाव से कवि होते हैं। अतः आपको याद आया फूलों का पौधा, पर आप तो जानते हैं, अवस्था देखकर हमारी चिंता तो बस दानापानी की ओर है। बजार में पोई का टुकड़ा दो पैसा, बैंगन एक दो पैसा, बथुआ छह आना सेर,—आठाना, पोई—"

"खूब हिसाबी बात की।" बात काट कर रणजीत बाबू बोले, "लगाइये साग-सब्जी, बहुत अच्छा होगा। दूध भी बहुत महंगा है और बगीचे के लिए अच्छी खाद भी ज्यादा नहीं मिल सकेगी, तब आप एक काम कर सकते हैं। घर के आगे टट्टी लगाकर गोठ कर सकते हैं। दो गाय रख लें। आराम से गायें भी झरोखे के पास सीधी निगाह में रहेंगी। गोबर और गोमूत्र बगीचे के लिए खाद भी जुटा

देगा। गायों के लिए इसके अंदर खाद सड़ा देंगे। और सड़ी खाद बैंगन के लिए बड़ी फर्स्टक्लास खाद होगी। हां, जरा गंध जरूर होगी, कुछ मच्छर-मक्खी भी बढ़ सकते हैं। पर इससे क्या होता है। गृहस्थ के घर में गंध होना तो स्वाभाविक है। और मच्छर-मक्खी के लिए आप म्युनिसिपैलिटी से थोड़ी-बहुत डी. डी. टी. लाकर डाल सकते हैं, मांगने पर वे दे देंगे—"

रणजीत बाबू ने सिगरेट केस खोलकर एक खुद ली और केस बलिदत्त की तरफ बढ़ा दिया। सिगरेट फूंकते-फूंकते रणजीत बाबू की तरह पैर फैला बांहें उठाकर धुआं ऊपर छोड़ते हुए बलिदत्त बोला, "अरे बाप रे,—कितनी महंगी सिगरेट है। एक का ही दाम छह पैसे होगा, हे भगवान! हम लोग यदि इस तरह सिगरेट पीयेंगे तो पांच ही दिन में महीने भर की तनख्वाह तो सिगरेट ही पी जाएगी,—"

"आप बहुत बुद्धिमान हैं, मुझे तो इसकी लत पड़ गयी है।"

"क्यों पीते हैं ? सिगरेट पीने से तो लोग कहते हैं खांसी होती है, बाल झड़ जाते हैं, सिर चकरा जाता—"

"हें-हें-हें-हें—कुछ नहीं होता बलिदत्त बाबू, कुछ नहीं होता, मैं तो यह सब आज करीब पंद्रह साल की उमर से कर रहा हूं। वरन् यह न हो तो चलता नहीं, यह तो इंस्पिरेशन देती है"

"लोग जो कहते हैं—"

"वैसा जलनेवाले कहते हैं। लोग कई बातें कहते हैं, पर सच-झूठ तो अनुभवी ही समझता है। आप तो बहुत निकट-भविष्य में बड़े अफसर होंगे—अपना अनुभव बढ़ेगा तो देखेंगे लोगों की ईर्ष्यालु आंखों में दूसरे का सुख सुहाता नहीं। लोग जो बखानते हैं वह न्याय, नीति, मौरलस,—उसमें से ज्यादातर दल बांधकर ईर्ष्या की बातें कही जाती हैं, आप खुद ही डिस्कार्ड करेंगे उन बातों को,—"

"मैं बड़ा अफसर बनूंगा आपसे पहले ?—"

"आह! मेरी बात छोड़िए, मैं तो बस दिन काटना चाहता हूं, सौंदर्य की पूजा करना चाहता हूं ताजगी पसंद हूं, आनंद ही मेरा देवता है, प्रमोशन के बारे में बिलकुल इंटरेस्टेड नहीं—"

"ऐसा कैसे चलेगा ? तो फिर नाव कौन चलायेगा ? आप ही बनेंगे, आप जरूर बनेंगे—"

"हो-हो—बहुत-बहुत धन्यवाद, वास्तव में आपके साथ तो बातें करके बहुत

आनंद मिलता है। कैसा ब्रेन है, ऐसी बुद्धि बहुत कम लोगों को नसीब होती है—"

"अरे, अभी तक आपको बिठाया ही नहीं। यही-यही तो मेरा ब्रेन है खेलते-खेलते आप आये हैं, पसीना बहा जा रहा है।—अरे हर्षा, जरा आकर हवा कर देना,—ठहरिए मैं जरा चाय के लिए कहकर आता हूं—अरे दो पान तो लगा देना, क्यों आपका सादा या जर्दा ?—"

"अरे, आप तो, चिंता में पड़ गये बलिदत्त बाबू, क्या घर में कोई वर आया है ?—" हो-हो करते हुए बलिदत्त बाबू हंस पड़े—"देखिए, व्यर्थ ही आप मेरे लिए परेशान हो रहे हैं, पान तो मैं खाता नहीं, अरे छोकरे तूने तो सचमुच पंखा करना शुरू कर दिया—जा जा—"

"अच्छा, जा रे हर्षा जा—आप जरा बैठें मैं अभी आया—"

"हर्षा—हर्ष—जा घोड़ा जा पानी के पास—हो हो—"

नेपथ्य में सब सुन रही थी सरोजिनी। सुन रही थी, सोच भी रही थी। दुनिया में ऐसे भी लोग होते हैं, जो हंसी-खेल में ऊफते जा रहे हैं।

तो।

बाहर सुनायी दे रही है गुनगुनाती गीतध्वनि।

फिर वही···जैसे मन की गहराई में उसकी लहरें उठ रही हैं···बाहर की रागिनी की प्रतिध्वनि की तरह।

इस उदास सांझ में अपनी बात भी याद आ जाती है। बचपन से जिस घर में वह बढ़ी थी, वहां इस जाति के लोग ज्यादा न थे। न्यारा ही था वह जीवन, मानो चारों ओर ऊंची दीवार से घिरा था। ज्यादा से ज्यादा दु:साहस किया तो दीवार के ऊपर से उचक कर देखा जा सकता था, उससे अधिक कुछ नहीं। इसके बाद गांठ बंधी, पराया जीवन, क्या मेंढक चूहे का गठजोड़ किया गया है। रास्ते पर चलने पर मानो कदम-कदम पर डग टकराता है, झमर-झमर झम। खाली परि-स्थिति को चेता देता है, बता देता है सीमा का परिसर। फिर भी कितनी बार उसने मन ही मन सोचा—दुनिया में जाति-जाति के आदमी भरे हैं। आदमी प्राणवंत है, आदमी सुंदर है। पर आज की तरह इतने जोर से, इतने तीक्ष्ण भाव से कभी सोचा है ? सोचना अच्छा लगता है, यद्यपि सोचने पर देह काठ हो जाती है, मानो वह बाहर प्रतिमा ही है, कोई होता तो उसे मन माफिक सजा लेता—परिचित रास्ते से नहीं, अनजान रास्ते से—जिस अबाट पर गहरे मन का परिचय है, सोचने

पर स्वप्न हाथ की पहुंच तक आ जाता है।

रोंदती जाती, बनती-बिगड़ती चलती, दायित्व न होता इतना जरा-सा भी। इस तरह की भावना में उसके व्यक्तित्व को मिल जाता है अनागत पुनर्जन्म। बलिदत्त फुसफुसाकर कह गया—

"एँ ?—खड़ी क्यों रह गयी; उठो ना, चाय-नाश्ता तो लाओ। जानती हो ये कौन आये हैं,—बहुत बड़े हैं, इन्हें हुक करना होगा।"

"एँ, क्या हुक या फुक, मैं नहीं कर सकूंगी, बाप रे—"

"अरे हुक,—मतलब समझी नहीं ? चारा डाल कर बड़ी मछली नहीं पकड़ते क्या ? वैसे ही यह एक मच्छ है मच्छ—"

कह तो दी बात, पर तुरंत दांतों बीच जीभ काट ली। बलिदत्त अपनी योजना की व्यस्तता के बीच बात नहीं पकड़ सका। समझाने लगा,—"ये एक बड़े आदमी हैं, ऊपर वालों पर इनका बहुत इंफ्लुएंस है, याने प्रभाव है, खुद बहुत बड़े घर के हैं न, इसीलिए। आज कैसा मौका आया है, वह खुद हमारे घर आये हैं, उनके साथ अच्छी बातें करनी होंगी, तब जाकर,—एक सुयोग पकड़ कर, छलांग पर छलांग ऊपर ही ऊपर,—"

छलांग मारने की बात कह कर बलिदत्त ने उसकी दोनों बांहें पकड़कर झटक दीं। सरोजिनी चल पड़ी, कहती हुई, "तुम्हारे मित्र तो बहुत पेटू हैं, क्यों हैं ना ?"

कुछ समय बाद।—चाय-नाश्ता चल रहा है। रणजीत बाबू बोले, "अकेले-अकेले आपकी पत्नी को बड़ी तकलीफ होती होगी, फिर हमारी ओर अरे, वहां तो एकदम महिलाओं का मानो क्लब ही समझिये। जाने पर ही आप समझेंगे। मानव समाज में रह कर यदि हम समाज में न मिलें तो जीने का सुख ही कहां रहा, बताइये ? और ऐसी नौकरी, किसी भी जीवन की वृत्ति है, वह तो सब की होती ही है, फिर सभी तो सभ्य होते नहीं। लाइफ में फन है। फन से सभ्यता आती है। इसीलिए सभ्य बनना ही पड़ेगा हरेक को। खाली शिक्षा-दीक्षा, नीति से नहीं, खूब मेल-जोल बढ़ाकर—"

खूब जोर से, जरा जोर से,—

बलिदत्त को लगा गर्दन के पास कोट का कालर मानो दबा जा रहा है। कहा, "हम लोगों का दोष क्या होता है, जानते हैं,—हम लोग, याने हम लोगों के घर

की स्त्रियां विशेष फारवर्ड नहीं हैं।" 'विशेष' उसने जोड़ा था शायद अपने आत्म-सम्मान, अपने आत्मविश्वास की पूंछ जोड़ने के लिए, किंतु रणजीत बाबू उलटा कर बोले, "जिसे लोग फारवार्ड कहते हैं, मैं वह सब पसंद नहीं करता, बिलकुल नहीं। फारवार्ड फारवार्ड चिल्लाकर लोगों ने उसका एक गलत अर्थ बना लिया है। जैसे कई लोग गलती से कहते हैं, 'स्किन एंड स्किन नो सिन'—मान लीजिये कोई स्त्री है, उसका किसी पुरुष से कोई काम नहीं, फिर भी फारवार्ड कहलाने के नाम पर आगे बढ़कर उससे बातचीत करे, उसके साथ घूमे-फिरे, उसे क्या कहेंगे? वह तो संस्कारों का अत्याचार है—"

"हियर हियर—" बलिदत्त ने कहा, "मैंने सोचा था मैं ही कंजरवेटिव हूं। लकीर का फकीर—वाह-वाह—"

इसके बाद उसने कप में मुंह लगा कर सुड़का।

रणजीत बाबू बोले, "लकीर का फकीर कहना गलत बात होगी,—ट्रेडीशनल, ट्रेडीशन एक जाति की मज्जा होती है, उसे छोड़ देने पर जाति का अस्तित्व कहां रह जाता है—"

आश्चर्य युक्त प्रशंसा भरी आंखों से देखता रहा बलिदत्त, और उसके मन में संदेह नहीं है। रणजीत बाबू कहते चले गये, "ट्रेडीशनल होना आभिजात्य का लक्षण है। यही देखिये, मामूली टेनिस में—"

"मामूली नहीं, आप तो चैंपियन हैं चैंपियन," बलिदत्त ने ठहाका मार कर कहा, किंतु रणजीत बाबू उत्फुल्ल होकर बोले, "चैंपियन तो शायद इसलिए हो सका, क्योंकि यहां अरंडोपि द्रुमायते—किंतु जितना ब्रिलियंट भी खेलो असल में आदमी की ट्रेडीशनल स्टाइल—प्लेशिंग होने पर लोग अवाक् होकर देखते हैं, किंतु उससे सेट नहीं जीता जा सकता—"

"चमत्कार।"

"बिलकुल नहीं, छोड़िये। किंतु फारवार्ड या बैकवर्ड होने के बीच भी एक बात रह जाती है। वह है शिक्षित होने का हाव-भाव, रुचि, बात-चीत, चाल-चलन मानो विदेशी हमें यह न कहें कि खुदा के चिड़ियाखाने में हम एक जानवर हैं।"

"हाः हाः हाः—"

"ओह! वह भी हासिल होती है मिल-जुलकर लोगों को देखने पर, बिना देखे मन से पैदा नहीं होता, कल्चर बढ़ती है सामाजिकता से और हमारी औरतों में

उसकी विशेष जरूरत है, क्योंकि उन पर ही हमारी भविष्य की बहुत सारी उन्नति निर्भर करती है—"

"बिलकुल ठीक," बलिदत्त ने कहा, "देयर यू आर—"

"कभी आइये, हमारे घर की ओर," रणजीत बाबू कहकर चले गये। "मिसेज दास को भी साथ लाइये।"

बलिदत्त ने सहमति प्रकट की।

और दूसरे दिन।

कंपनी के वफादार कर्मचारी बलिदत्त दास ने दफ्तर जाने से पहले भोजन करते समय थाली के पास बैठी अपनी पत्नी को रोज की आदत के मुताबिक लेक्चर दिया, "देखो, सरोज, अब तुम्हें बदलने की बहुत जरूरत है, जिस समाज में हम हैं, उसके साथ ताल मिलाकर गौरव प्राप्त कर ऊपर उठने की इच्छा है, तो मेरा अकेले का परिश्रम ही यथेष्ट नहीं होगा, तुम्हें भी परिश्रम करना पड़ेगा। ज्यादा नहीं। यही दो अक्षर अंग्रेजी के पढ़ना, आधुनिक ढंग के कुछ मामूली कायदों का ज्ञान होना, फिर हम इनमें घुल-मिल जाएंगे, नहीं तो लोग हम पर हंसेंगे।" वह बहुत गंभीर होकर ये बातें करता है, सरोजिनी तर्क करती है, बलिदत्त उत्तेजित होकर भाषण देता है, फिर घड़ी देखकर भाषण स्थगित रख दौड़-धूप करता-सा सीधे दफ्तर की ओर भागता है, यही रोज का नियम है।

पर आज सरोजिनी ने प्रतिवाद नहीं किया।

बदलती नहीं, सो बात नहीं है। सामने घर में पशु डाक्टर बाबू रहा करते हैं, उनकी स्त्री के साथ जान-पहचान बढ़ा ली है। वे क्रिस्तान हैं। उनसे कुछ बुनाई सीखी है। अभी गला बुना है। उसके बाद गर्व के साथ वह उसके नीचे अपना नाम भी बुन देगी,—'सरोजिनी'।

यह उसकी गोपन पांडुलिपि है। हठात् एक दिन बलिदत्त को अपने इस कार्य से चकित कर देगी।

मन ही मन वह खुद अनुभव भी करती है कि समाज अच्छी चीज है, वह समाज

में मिलना चाहती है।

"अंग्रेजी किताब लाऊं इस बार, क्या कहती हो ?"

"माई रे, अंग्रेजी। कोई बता रहा था किसी घर की बहू दो अक्षर अंग्रेजी सीख गयी, बस फिर क्या था, सबको दिखा-दिखाकर पुकारती, 'देआरार···शूज—' वैसे ही तमाशा बनाओगे मुझे ?"

"सच दिल्लगी नहीं, ला दूं किताब—।"

"अच्छा लाओ—"

"रट जाएगी एकदम जल्दी-जल्दी—"

"हूं, और क्या ? तुम तो बहुत जल्दी-जल्दी रट गये थे ? ठीक है, कहते ही हो तो फिर ला दो एक,—देखूंगी। हां, तुम तो कहते थे न कि किसी के घर जायेंगे ?"

"जरूर जाएंगे, पहले रणजीत बाबू के घर।"

"आज तो शनिवार है, फिर अमावस की रात।"

"ठीक है, आज चलेंगे—"

"तुम जल्दी आओ तब न ?"

"मैं जल्दी आ जाऊंगा।"

दोपहर ढल गयी। छाया घिर आयी। इसके बाद वह तैयार हुई। कुछ अधिक पान के बीड़े लगाये, मानो परदेश जा रही हो, बहुत देर तक प्रसाधन करती रही। सचमुच बचपन याद आ जाता है। बलिदत्त के लौटने की बेताबी से प्रतीक्षा करती रही। बलिदत्त ने भी आकृष्ट होकर देखा, सरोजिनी ने अपने पुराने व्यक्तित्व को विल दिया।

सरोजिनी बदल गयी है—बलिदत्त देख रहा है ताजा खिला पद्म फूल क्यारियों में लहराती हंसी की फुहार, बातों में पुट लगाकर मजाक करती है। झूम उठता है ताजा खिला पद्म फूल, कांपते पानी में अपनी छाया देखकर खुद फूलता जा रहा है। और खुद वह,—डूबती-उतराती नाव में चढ़ कमल चुनने वाला,

जितनी बार नाव धकेल हाथ बढ़ाता है, उतना ही हाथ की पहुंच से थोड़ी दूर रहकर कमल सिर हिला रहा है।

उस दिन की बात याद आ जाती है—नयी-नयी शादी हुई थी।

धुंधले अंधेरे में चमकता छोटा-सा छप्पर का घर, जिसके छोटे से आंगन में बर्तनों का पानी, हंडियों के पानी और जूठन के साथ एक हो बिखरा रहता। मच्छरों की भों-भों से सनसनाती रहती उसी वातावरण में शादी के शुरू के कुछ महीने नये जीवन का जादू देखा है। वह सरोजिनी एक और ही तरह की थी। उसे भाषा में गढ़ना या भावना में आंकना तो संभव नहीं है।

दरिद्र घर की गृहस्थी के हजार फटे लीरों में से छलकता उसका मूर्त्तिमंत आनंदमय व्यक्तित्व। हंसी-खुशी की छटा बिखेर कर वह अपरूप माया का जाल बनाये रखती, दिखायी देना और—पकड़ाई में न आने की अदा से परिहास कर उसकी मर्दानगी को उकसाती है। चेता देती है कि उसे जीतना ही उसके लिए आदर्श है। बंधन में स्वाधीनता की मिठास और आत्मविश्वास का आनंद। वह तब की सरोजिनी थी।

मिट्टी के फर्श पर सतरंजी पर नये जीवन की मधुशय्या रचकर अलसाया-सा देखते-देखते तब बलिदत्त अपने स्पंदन के साथ साथ आनंद की चेतना में लालायित होकर चुपचाप जीवन की पूर्णता का अनुभव कर रहा था, नहीं सो जाता खर्राटे-दार नींद में, चैन की नींद,—अशांत आकांक्षा में नहीं।

तब उसकी न तो बड़े आदमी बनने की आशा या आकांक्षा थी और न ही दिमाग में तीन-पांच की चिंता।

सिर्फ वह और सरोजिनी।

नौकरी तब एक वृत्ति भर थी, जीवन नहीं।

उसी अनदेखे आनंद की रोम-रोम में भर जाने वाली निगूढ़ अनुभूति में शांति से हाथ-पैर पसार कर पड़े रहते समय मन में घूमती थी त्याग की इच्छा, किसी भी उपाय से अपनी पत्नी के लिए सब कुछ उड़ेल कर उसे और अधिक खुश करने की चाह, वही था उसका सुख।

अपने आप को वह जगा देता था,—जब अपने दारिद्र्य के लिए विवाह से बिलकुल इंकार कर दिया था। एक बार उसके बूढ़े बाप ने कहा था,—"क्या समझाऊं तुझे उल्लू। कितनी बेशर्म बात है,—ब्याह-शादी धन-रतन के लिए नहीं

होती है, और, दो पेट में उतना अंतर नहीं पड़ता, असल बात,—घर करने की है। स्त्री चाहती है पुरुष, पुरुष चाहता है स्त्री, और फिर कौन सी बात रह गयी ?—मन मिल गया तो एक ही थाली में दो मुट्ठी भात, दो टूक कपड़े, 'धान में चावल' यही तो है ब्रह्मज्ञान। और तुम खुद क्या धन नहीं हो ? धन नहीं कमा रहे हो ? तुम्हारी सरीखी बुद्धि यदि और सभी में होती, तो तुम्हारा भी कोई पता नहीं लगता, दुनिया में कोई किसी से ब्याह नहीं करता, कोई कभी घर नहीं बसाता, युग-युग से लोगों का यह 'नहीं नहीं' ही तो लगा है। हां तो कुछ ही लोग कहते हैं।"

तब सरोजिनी की माया चौंका देती थी बीच-बीच में बूढ़े बाप की वही सीख, गरीब रहकर उसने विवाह किया है, पछताया नहीं ?

अंधेरे में से उठकर खड़ा हो जाता था अतीत। रणजीत बाबू के घर घूमने जाते-जाते अतीत की उस सरोजिनी के वे ही छिलके दिख जाते हैं।

फिर आज के योजनावादी बलिदत्त को अतीत के वे रूठने मनाने के दिन याद आ जाते हैं। चारों ओर अंधेरे में वह पातालपुरी, गहरी सांसों में बार-बार याद आता है,—अभाव की वह दरार जुड़ी नही, बंधी नहीं, जीवन यदि उसके पास धन, बल होता तो जीवन और ही ढंग का होता।

मन ही मन वह तुलना करता,—विशाल प्रसाद में जो प्रेम है, क्या झोपड़ी में वही प्रेम मिला है ? बड़ी कोठी के बगीचे में फूलों के बीच लताओं की रस्सी के पीछे आंख-मिचौली का वह आनंद क्या कीड़े खाये बांस की खपच्चियों से बने बाड़े के अंदर तोरई की लता में है ? बाड़ी में कीड़ों के काटे साग के पौधों, भिंडी के पौधों के बीच में ? असंभव—बलिदत्त सोचता है, आधा जीवन तो अभाव में सूख सिमट कर झर गया है, नहीं तो वह और ही प्रकार का होता। पक्का मकान, बाड़ी-बगीचा,—धन की प्रचुरता,—एक कार,—जो चाहा खरीदा, काश उसका विवाहित जीवन ऐसा होता।

और भी दिन बाकी हैं, जब तक सांस तब तक आस, जीवन को वह मन-मुताबिक कर सकता है। उसके लिए दानापानी के युद्ध में सांढ़ का बल, सियार की चतुराई, सबका वह प्रयोग करेगा। आदमी का हृदय और आदमी का विवेक वह उनके लिए छोड़ देगा, जिन्हें उन्नति की चिंता नहीं रहती। वह दुर्बलता उसमें नहीं है, खाली उद्देश्य समझकर उपाय करना है।

दानापानी का युद्ध,—नौकरी उसका कुरुक्षेत्र, उसका धर्म क्षेत्र,—रणजीत

बाबू से किस तरह फायदा उठाया जा सकता है ?

रोज का चिंतन, नौकरी, फंदा। सोचने पर आदमी बड़ा बनता है। बलिदत्त हिसाब लगाकर देख रहा था, सरोजिनी का अस्तित्व भूल गया था, बस अपनी नौकरी, नौकरी।

सरोजिनी आगे चल रही है। विवाह से पूर्व वाले दिन की तरह। सच क्या वह हमेशा मुक्ति चाहने वाली है। संकेत उठ रहा है मन के गहरे कोने में, रास्ता दिखा रहा है दैव, हवा में बिजली की सुवास भरी है। रक्त में उसकी उत्प्रेक्षा है।

जीवन में, उसे लाख तरीके से लाख अनुभूतियां मिली हैं, आज क्या हो गया है ?

उसकी कहानी—

आदमी की है।

वह खाली अवयवों का नहीं, पूर्वजों की वास्तव देह पर श्रीयुक्त मेंडल के तथ्यों की सार्थकता है। फिल्म के लिए उसका चेहरा नहीं, न काव्य के लिए है। साधारण भोजन से गढ़ी अपुष्ट मामूली देह। इसमें गर्व करने को कुछ नहीं, न कुछ लाज करने को।

कहानी उसके गहरे मन की ही नहीं। अंधेरे में भूत-प्रेत अनेक हैं। प्रकाश के रास्ते में असंख्य लट्ठाधारी पहरेदार हैं। एकांत क्षण कम ही आते हैं। उसके जीवन में,—तब कोई न कोई पहरेदार घूमने चला जाता है। कोई ले लेता है अफीम का गोला, और सब सो जाते हैं। पर कितने क्षण ? अकेले जीवन के कितने भग्नांश। खाली पहरेदार, स्वतंत्र मन भय से पंगु है, क्षति का भय, समाज का भय, दारिद्रय और मृत्यु का भय, निराशा का भय। केवल भय ही भय। खाली संभावित प्रवणता का इतिवृत्त, उसकी कहानी नहीं।

उसकी कहानी,—वह केवल मानव समूह में उसका विकास नहीं। उसका विकास नहीं, वह तो मामूली चींटी है, मामूली-सी।

न ही वह उसके सफल-असफलतापूर्ण सांसारिक घटनाओं का वर्णन है। इसके

बाद एक,—चलती-फिरती समस्याओं का संघर्ष, तीन-पांच का हिसाब। घटना नहीं,—आज की घटना कल नानी की भूली हुई कहानी बन जाती है। ग्राफ में देखने पर समान न होने पर भी कुछ मामूली से उतार-चढ़ाव।

उसकी कहानी प्रकृति के संपर्क में उसकी अवस्थिति का परिचय भी नहीं है। प्रकृति,—वह तो नित्य है,—इतना बड़ा आकाश, उसमें कोटि-कोटि विश्व ब्रह्मांड, नाना वर्ण, नाना भाव। नीचे गड्ढा, खाई, पहाड़, समतल, असंख्य दृश्य भरे हैं। प्रकृति, पेड़-पौधे, अनाज, गाय-भैंस, पशु-पक्षी, 'ऐलजी' तक, कहां किसके नीचे खो जाता है बलिदत्त, मामूली सा बलिदत्त, खोकर बाहर की तरफ अपनी विशेष चेतना गंवा बैठता है। पानी की मछली,—वह पानी को दूर से भी नहीं देख पाता। इस स्रोत की गति, स्रोत का जोर संभालने की सुविधा उसके पास नहीं है। उधर उसकी निगाह नहीं,—आकाश में कब चांद उगता है, कब तारे खिलते हैं। दूर क्षितिज पर कब कौन-सा भाव अंकित हो जाता है, कब कौन सा दृश्य। बचपन में रात का आकाश उसने देखा था।

दरवाजे पर गुदड़ी में लेटा चांद और बादलों की भाग-दौड़ का खेल देखा करता था। अब नहीं। अब तो आकाश के बदले यदि उस पर सिले बोरे का चंदोवा झूलता, तो भी वह तब तक उधर नहीं देखता जब तक उसका काम न अटकता। पेड़ उसने बहुत देखे हैं पर उसी तरह जैसे पैरों तले रौंदी गयी घास। सोचा नहीं, सिर्फ अनुभव पाया है प्रवृत्ति में।

उसकी कहानी अनंत समय के संपर्क में तैरती भावराशि की नहीं। सारा यथार्थ, सारा जड़पना लोप होकर केवल महाशून्य में स्थित है,—आगा नहीं, पीछा नहीं, बीच नहीं, अरस्तू रचित काव्य सूत्र की नीतियां नहीं हैं, विषमता नहीं है, केवल रसाल अनुभूति, एक-एक स्पंदन में जिसका इतिहास भरा है, माला के एक-एक सटे हुए मनकों की तरह, समय की डोर से गुंथे पड़े हैं। जिधर से भी माला फिराओ, जीवन का नाम,—सहस्रनाम या लक्षनाम में वही जीवन, —पवित्र भगवत नाम। वह भी उसकी कहानी नहीं है,—बेचारा बलिदत्त,—समय का अर्थ समझता घड़ी की दो सूइयों के बीच का स्थान, जो गोलाकार चकती के अंदर है। सब स्थानों पर भी वह रुक कर नहीं देखता,—सुबह नित्यकर्म का समय और रोज दस से पांच,—दफ्तर, इतना ही, बस ! समय नहीं,—समय-तालिका का सूचक। वह भी नहीं है उसकी कहानी।

कुल मिला कर—आदमी की उपस्थिति की ये छह दिशाएं, छह डायमेंशंस—इनमें एक-एक के नाना लास्य, नाना छटायें,—फिर इनमें क्रिया-प्रतिक्रिया जनित समाश्रित संबंधों से हजार-हजार रूप। अदृश्य जौहरी के हाथों से तराशे गये एक ही हीरे के असंख्य चेहरे,—नगण्य बलिदत्त दास कोहिनूर की तरह प्रकाश झलकाता, आलोक समेटता,—यही उसकी कहानी है,—नीरव और भाषामय।

वह चल रहा है, चला आया है। अतीत की युद्ध कुहेलिका में खोये कितनें हजार वर्ष पीछे के आदि पूर्वजों के दिन से,—कभी कहीं अनुप्रास पड़ा है चेतना में, शक्तिपात के अनुप्रास में पैदा हुए हैं देवता और आदर्श, आज शायद उसकी दानापानी की चेतना में गढ़े देवता,—देवताओं की पूजा कर रहा है, नाम नहीं दिया।

फिर भी चल रहा है।

अहाते के फाटक के उस ओर तीन मोटर कार, दो-एक टमटम। सब स्थिर।

रास्ता सो गया है, कभी-कभी एकमुहां होकर, दूर हटते जूतों के खसखसाहट के शब्द, इसके बाद शांति। अंधेरे के ढेर के नीचे दबे बगीचे के उस ओर वाले घर से तेज रोशनी छिटकी आ रही है। कभी-कभी सामूहिक खिलखिलाहट के साथ। उसमें जंतु प्राणों का उल्लास या आर्त्तनाद का स्वर चौंका देता है।

"यही रणजीत बाबू का घर है"—बलिदत्त ने कहा।

"यही।"···सरोजिनी ने गौर से देखा, एक शब्द 'यही' में उसका सारा अनुमान,—बड़ा फाटक, लंबा-चौड़ा बगीचा, बड़ा पक्का मकान,—कुल मिला कर बड़ा घर,—छाती पर चढ़ बैठता-सा लगता है। इतने खुले में भी आदमी रहते हैं! यह भी जीवन है।

ईर्ष्या की एक गहरी सांस खींच कर छोड़ती है।

"उई रे, इतना बड़ा घर और फाटक पर उजाला भी नहीं। देखो, संभल कर चलना, ठोकर न लगे—" सरोजिनी कह रही थी।

अंधेरा रास्ता, लंबा रास्ता,—फिर दोनों ओर अंधेरे की लहरें दौड़ जाती हैं ताजा फूलों की भीनी-भीनी महक चौंका जाती है। घने-घने झुरमुट मानो अंधेरे की ओट से गहन मन की नीरव प्रवणता का संकेत देते हैं,—सरोजिनी सोचे बिना नहीं रह पाती।

बलिदत्त सोचने की चेष्टा करता है कौन-कौन आये होंगे उन मोटरों में, उस गाड़ी में,—इनसे वह किस तरह लाभ उठा सकेगा अपनी नौकरी की बढ़ोत्तरी में। वह हंसी के स्वर को ध्यान से सुनता है, मन ही मन मुस्कराता चल रहा है, आशावादी।

"कितना अच्छा बगीचा है।" सरोजिनी ने कहा।

"ठहरो, जरा आवाज दे लूं," बलिदत्त ने उत्तर दिया,—"कोई है वहां? रणजीत बाबू हैं? कौन, भीमा?" भीमा चपरासी। "जा कहना बलिदत्त आये हैं—"

अधिक देर तक इंतजार नहीं करना पड़ा। रणजीत बाबू ने खट् से स्विच दबा कर दरवाजे पर प्रकाश कर दिया और हंसते-हंसते हाथ बढ़ा कर खड़े हो गये।

ढीला डोरिया का पाजामा, ढीला चोला, गठीला शरीर दिख रहा है, हंसमुख चेहरे में अनोखी सुंदरता है। अचानक आंख झपकते ही प्रकाश में बगीचे में फूल-पत्तों की लहर पर लहर जाग उठी, बाहर वाले कमरे की साज सज्जा, छवि निखर उठी। सरोजिनी आंख फाड़े दरवाजे पर खड़े रणजीत बाबू को देखती रह गयी।

"हैलो मिस्टर दास! नमस्कार, नमस्कार, आइये। वाह वाह! अहो भाग्य, पधारिये,—" जल्दबाजी में मुड़ कर अंदर चले जाते हैं,—मानो एक-एक डग में देह को खींच कर लिए जा रहे हैं, कसरती बदन सुंदर आदमी की देह में कई विशेष भंगिमाएं होती हैं,—चलने का मतलब कदम-कदम पर हल्का-सा ठहराव। "आइये—आइये—मां, मिलि, नीली—बिंदू,—कहां गये सब।"

"सब" में कई हैं, अचानक एक बार में कैटलाग पढ़ा नहीं जा सकता।

उस ओर से सुनायी पड़ती है, एक गुंजन, बढ़ती-बढ़ती पास आ रही है।

बेचारा बलिदत्त इधर-उधर देख रहा है, सरोजिनी के कदम थम से गये,—आ गये वे लोग,—स्वागत समिति के सदस्यगण।

"मिस्टर बलिदत्त दास, मेरे सहकर्मी अफसर, ये हाल ही में बदली होकर आये हैं—मिसेज दास—"

"नमस्कार—नमस्कार—नमस्कार—"

"अच्छा, आप ही हैं मिस्टर दास! आपका नाम सुनकर लगता था मानो

आपको पहचान गयी हूं। ओह ! बड़े भाग्य—"

"ये मेरी सिस्टर मिली, बलिदत्त बाबू, जरा होशियार।"

"अरे—दादा जो भी कहें—"

"और यह नीली, वा-ह वा-ह ये दोनों बहनें नहीं हैं ये तो दो-दो गर्ज हैं। आज के युग में वर पाना कितना मुश्किल है।"

"अरे !—"

"आप भाग्यशाली हैं रणजीत बाबू—"

"और यह बिंदु—याने मिसेज—"

हो हो हो हो।

"लजा गयी बिंदु, दादा का इंट्रोडक्शन, एलबम, यू नाटी बाय—" मिली दादा की ठुड्डी में अंगुली ठूंस रही है। बिंदु सरोजिनी को बांहों में भर अंदर ले गयी। मिली, नीली दोनों बलिदत्त के पास दोनों ओर बाडीगार्ड की तरह, दोनों उससे लगभग छह इंच ऊंची।

जुलूस आगे बढ़ रहा है।

किंतु बलिदत्त को होश नहीं है। होश लौटता है,—तब वह नाक के पास कोई विदेशी तीखी गंध पाता है जो उसके व्यक्तित्व को तरल होने के स्वर तक चंचल कर देती है, उग्र कर देती है, अति उग्र, बहुत गरमा देती है और ऊंचे उठा देती है। इसके बाद वह पिघल जाता है, भाप बन जाता है, होश नहीं रहता, गति अपने आप आ जाती है। फिर होश लौटता है, देखता है मिली, नीली और बिंदु तीनों को मिलाकर एक अपरिचित दुनिया।

खाली गंध,—और रक्ताभ होंठ। बर्फीली भोर की तरह का चेहरा, और मिली की खुली बांह, झीनी-झीनी, एकदम झीनी, ऊपर का दुपट्टा, ढंकने का बहाना-सा करता लगता है, वह नील परी है। नीली की वेश-भूषा भी बिलकुल उसी तरह, किंतु वह गुलाबी परी है। दोनों की लटें गंगा-जमुना दो धार होकर छाती के उत्तुंग शिखर को वेष्टित करती नीचे की ढालू जमीन की ओर बह रही हैं, जैसे कंपास के संकेत की दो नोंक, या काले सांप की पूंछ हो। दोनों के दुपट्टे बीच में गुनिया के 'वी' की तरह मुड़े हैं, 'वी' के परिसर में एकदम सफेद वर्तुलाकार दो-दो इंची उभार दिख रहे हैं, बीच की गहरी उपत्यका, उसी पर शोभा पा रहा है एक रंगीन पत्थर जड़ा, उसका निचला भाग तराजू के फलक्रम लगे कांटे

जैसा है। सुंदर 'वी' आकृति--दिग्विजयी 'वी' आकृति--कहीं देखी है। ठीक—हां, ठीक, गत महायुद्ध में,···'वी' चिह्न विजय का संकेत, 'वी' फार विक्ट्री,—'वी' फा···

तब चक्र-शक्तियां कांपी थीं, आज कांपता है छुद्र बलिदत्त। होश खो बैठता है,—वह भाप बन कर भाप में मिला जा रहा है, फिर चेतना लौट आती है,—नारी रूप कितना श्रीयुक्त है। सच, वस्त्र कोई वल्कल नहीं हैं,—बस केवल ओढ़ो,—आदमी को तोड़-मरोड़ कर बिस्तर बना दे—इसके नीचे दो पैर, टखने के नीचे से। वस्त्र रूप का आभरण होते हैं, छिपाने के लिए नहीं, वरन् दिखाने के लिए। कितना सुंदर ! कितना दृढ़ ! कितना ललित। आदमी की देह के उतार-चढ़ाव लहरों की तरह संकेत—रेखायें हैं, चाल में लहरें फैल जाती हैं।

और सामने बिंदु। साड़ी पहने, वह भी आवरण नहीं आभरण ही हैं। ब्लाउज! वहां भी वही 'वी' आकार। ऊपर साड़ी का एक छोर झूल रहा है,—कंधे पर सुंदर फूल के आकार की गांठ। सब कुछ रक्ताभ। मानो एक गुलाबी कुहासा इस सुंदर देह को घेरे हुए है। सोचने पर फिर होश डूबने लगता है।

उसके पास चल रही है सरोजिनी। काठ की मूर्ति मोटा कपड़ा लपेटे ठक-ठक करती चली जा रही है।

नयी दुनिया के पहले ही हिलोरे में अपने खाली छि: छि: ! कहां है उसकी सभ्यता ? सभ्यता सुंदरता से होती है ? सहज गति, सुंदर रूप, सुंदर वस्त्र पहने उसकी कल्पना में सुंदरता है। और वह ! न शिक्षा, न संस्कृति और न मन में वह आभिजात्य। भावना की डोर उलझ गयी है। इस दृष्टि से तो उसने कभी सोचा भी न था। अपनी नौकरी,—अपनी कंपनी का काम,—अपना दफ्तर—वहां उसके अहंकार भरे कदम। यहां उसके कदम जमीन से उठ जाते हैं,—यह धरती पैरों से छूते हुए भी उसे हीनता-सी लगती है,—और विचार ही नहीं पाता। यंत्रवत चल रहा है। याद आता है,—हर्षा। वह थक गया है, घर लौटकर हर्षा के हाथों से मालिश करवा लेगा। परिस्थिति उसे घेर रही है धीरे-धीरे।

सचेत मन से देखता है टेबल पर तीन और लोग बैठे हैं,—एक थुल-थुल प्रौढ़ा उठकर आ रही हैं।

"मां,—" रणजीत बाबू कहते हैं,—"मिस्टर और मिसेज बलिदत्त दास।"

"नमस्कार—नमस्कार—नमस्कार—नमस्कार।"

"और परिचय करा दूं—मिस्टर सक्लतवाला, प्रसिद्ध कंट्राक्टर,—यहां कंपनी के कागजातों में आप बराबर इनका ही नाम सुनेंगे,—मिस्टर त्रिपाठी,—स्वनामधन्य नेता, मिस्टर व्रतचारी, हमारी कंपनी के सहकारी बड़े साहब, शायद कभी मिले नहीं आप इनसे; क्योंकि आप ज्यादातर टूर में ही रहते हैं,—मिस्टर बी. डी. दास—याने बलिदत्त दास···"

परिचय—परिचय—अकारण ही बनू का घर याद आ जाता है,—वहां भी बस खाली इस तरह परिचय,—परिचय—

किंतु वहां संटू दा की बातों के नीचे जरा-सी बात तो थी,—परिचय के बाद उसी क्षण घसमस, कोई किसी को जानता नहीं।

सक्लतवाला सरोजिनी की ओर मुंह कर बैठे। मिस्टर व्रतचारी गंभीर हो नीचा सिर किये बैठे हैं। बस दोनों आंखें कभी-कभी ऊपर उठकर परिस्थिति का निरीक्षण कर लेती हैं। मिस्टर त्रिपाठी ने हंस-हंस कर अनुकंपा से कृतकृत्य करते हुए बलिदत्त के साथ बातें शुरू कर दीं, यद्यपि आंखें कभी-कभी दूसरी ओर घूम जाती हैं।

नमस्कार और परिचय के गरम वाणों से झुलसी सरोजिनी पल्लू में मुंह दबाये बैठी थी। बिंदु उसके साथ बातचीत की चेष्टा कर रही है। सरोजिनी पसीने-पसीने एक-दो बात कहती है, बलिदत्त जोर से सांस ले रहा है, पता नहीं क्या-क्या कहता है। इतना ही समझता है कि बेवकूफी भरी बातें ही कर रहा है। सोचता कुछ है और कहता उसके ठीक उलटे। मुंह से कुछ का कुछ निकल जाता है। सब हंसते हैं, वह भी हंस पड़ता है।

वही शुरू हुआ। सरोजिनी सोचती है।—कितनी ही पागल रातें।

स्मृति में वह रात बिजली-सी चमक जाती है—मन ही मन अविश्वास भर आता है—इतना था उसके पास—पर—

शायद आदमी अपने-आपको पहचानता नहीं है—तब तक—जब तक कि वह दूसरों के मुंह से सुन नहीं लेता है कि वह क्या है। दूसरों के मुंह से प्रशंसा मीठी

लगती है ।—सचमुच कितनी मीठी—हर बात दुहरा-दुहरा कर सुनने से थकावट आ जाती है सिवाय प्रशंसा सुनने के ।

सरोजिनी सोचती है कि उसने अविश्वास में ही सोचना सीखा है, इसलिए उसने धीरे-धीरे अपने में कितनी बुद्धि, कितनी चालाकी और हिम्मत का आविष्कार किया है ।

—फिर कितनी रुचि, मंतव्य, विश्वास, ज्ञान और प्रवणता वह जान गयी है—

उसे पहले से पता नहीं था कि कमर की दायीं ओर आंचल का पल्ला खोंस कर दोनों बांहों को खुली रखने से खूबसूरती बढ़ती है—सिंगार फबता है।नाखूनों में पालिश हो तो जानवरों के पंजे जैसे लगते हैं। ये बहुत-सी बातें हैं, जिसका उपदेश वह नवागताओं में बांटती रहती है; व्यवहार से विचार तक—छोटी से बड़ी बात तक—। एक छोटी-सी बात; सभ्य और असभ्य में सरल-सा भेद। पहनावे और आचार-व्यवहार में सभ्यता का विशिष्ट भेद है, जो कई आजमाइशों से फायदेमंद साबित होकर निश्चित किये गये हैं—जैसे जूता—जूते न पहने जायें तो पैरों को तकलीफ होगी; इस पर किसे शक है ? अपने को खुश रखे बिना—दुनिया को खुश किया नहीं जा सकता। इसलिए जो अपने को सुखा-सुखा कर मारते हैं वे ही अंत में ठगे जाते हैं। वह सोचती है कि दुनिया में जो जहां जिस स्थिति में है, वह उसकी अपनी मेहनत और योग्यता का फल है। आदमी खुद ही अपनी तकदीर बनाने-बिगाड़ने वाला है। बलिदत्त आज इस स्थिति में है, क्योंकि वह उसी का अधिकारी है और जो एक मजदूरी करता है वह भी उसी के किये का फल है। दुनिया में बड़ा-छोटा, ऊंच-नीच, अमीर-गरीब का भेद एक तरह से नियम-सा हो गया है और इस नियम को लांघ जाना आसान नहीं है। सरोजिनी सोचती है कि मूल्य का तत्त्व भी परिश्रम से मिलता है, पर उन तत्त्वों को काम में लगाने के अपने अलग कायदे हैं। इसी विश्वास के अनुसार दूसरों के दुखों में दुखी होना या सहानुभूति प्रकट करना उसे बेतुका लगता है। जिसके पास जो कुछ है वह उसी की मेहनत का फल है या मेहनत में कमी का फल है। तब उसके प्रति सहानुभूति बेवकूफी के सिवाय और कुछ नहीं हो सकती। इसके बजाय उतना समय अपने लिए खरचने से ही कुछ फायदा होगा।

ये सारी धारणाएं उसकी नयी ईजाद हैं—इनके अलावा उसका ज्ञान भी काफी

बढ़ गया है ।सरोजिनी अब छपी हुई चीजें पढ़ने लगी है। वह सोचती है कि पढ़े-लिखे लोग जिस तरह पढ़ रहे हैं, वह भी वैसे ही पढ़ती है । पहले अखबार, उसमें देश-विदेश की खबरें छपती हैं । अगर कोई कहे कि खबरों पर चर्चा करने के लिए देश का ज्ञान जरूरी है तो सरोजिनी मिलि की भाषा की नकल करके आसानी से कह सकती है—"मैं आपके हां में हां नही मिला सकती। वाल स्ट्रीट टूट रहा है, हाय टूट रहा है।" बहुत ही मजेदार बात। 'वाल स्ट्रीट' कैसा एक अटपटा नाम-सा सुनायी देता है ओड़िआ मुंह में। अखबार अगर लिखते हैं कि वह टूट रहा है, तो यह सही है कि वह टूटने लायक कोई चीज है। इसलिए चाय का प्याला लेकर, पैर पर पैर रखे मजे से उस पर आलोचना की जा सकती है। आपको पता है वाल स्ट्रीट क्या है ? अखबार देखियेगा, वह टूट रहा है । हाय, कैसी बद-किस्मती है ! अखबारों ने लिखा है उससे कइयों को चोट पहुंचेगी। कैसे नहीं पहुंचेगी ? वाल स्ट्रीट, छोटी-सी बात तो नहीं है ? जो कहते हैं, ऊपर जितना है नीचे भी उतना ही । कितने कठिन समय में हम जी रहे हैं—सुबह उठो, अखबार देखो तो कुछ न कुछ जरूर टूटने लगा है या टूट चुका है; सब ओर विध्वंस, कितने मर रहे हैं—इस मनुष्य जाति पर कैसी आफत टूट पड़ी है ।

छपी हुई बात, बात करने की खुराक जुटाती है। सोचकर समझना हो सकता है आसान न हो, पर सुनकर दुहरा देने में क्या देर लगती है ? सरोजिनी में आत्म-विश्वास है,—उसे पता है कि यह युग नारों का है, लोग इकट्ठे होकर एक साथ नारे लगाते हुए सड़कों पर चलते हैं। एक साथ मिल कर एक ही बात को गरजते हुए कहने में मजा है । समझ जाओ तो मजा ही किरकिरा हो जाता है, इसलिए जरूरी नहीं है कि सब समझो । सिर्फ चिल्लाना है। मुंह खोल कर गरजना है, दूसरों पर कीचड़ उछालना; उसी को व्यक्तित्व कहते हैं। जो बेकार है, जिसका कोई स्लोगन ही नहीं है। स्लोगन का मतलब वही पूछने आ सकता है । वह किसी भी पार्टी का नहीं है इसलिए हेय है । जो मनमाना सवाल कर सकता है, वह आदमी भूल करता है, दूसरा जवाब देने को बाध्य नहीं है। बाध्य न होना, कहते

हैं, स्वाधीनता का लक्षण है ! तब ? सरोजिनी बिना आपत्ति के दूसरों पर अपना नया ज्ञान बखानकर उछाल सकती है, पर समझाने को बाध्य नहीं है।

इसके अलावा मतलब से किसे क्या मिलेगा ? अर्थ अनर्थ का मूल है। आजकल संस्कृति के प्रधान परिचय के रूप में वह देखती है कि एक ही बात के दस भिन्न-भिन्न अर्थ निकलते हैं। जो कोई नया मतलब नहीं निकाल सकता, समझा जाता है कि उसका कुछ विचार ही नहीं है। बात अगर समझ में आ गयी तो वह साधारण-सी बात हुई, निहायत बेकार। बहादुरी तो उसमें है जो बात समझ में न आये—उसे ही ज्ञान कहते हैं, छायावाद, मिस्टिसिज्म और कितना कुछ कहते हैं। नारी की प्रकृति तो अपने-आपमें एक पहेली है। वह समझ में न आने वाला रहस्यवाद पसंद करती है, इसलिए आश्चर्यचकित करने वाली बातें कहने की उसमें जन्मजात प्रवृत्ति है। इधर-उधर से, छपी हुई किताबों से ज्ञान के नारे समेट कर उसे उलट-पलट कर कहने से बात की इज्जत भी बढ़ती है। अखबार से उसे सहायता मिली है, उसके बाद कई किताबें, मनस्तत्व, आर्य दर्शन, साहित्य दर्पण आदि समझना जरूरी नहीं है। इनमें से एक-दो पंक्तियां अगर याद कर लो तो कहीं भी बेशक पढ़े-लिखे लोगों के बीच एक कप चाय में सांझ बिताना आसान हो जाता है।

इसके अलावा वह खुद भी सवाल करना चाहती है। थोड़ा-सा परखने पर वह जान गयी है कि उसके सवालों का जवाब देने के लिए पुरुषों में होड़-सी लग जाती है। छोटा-सा सवाल—'अच्छा, आजकल की खाद्य समस्या पर आपकी क्या राय है ?' या 'समकालीन साहित्य के संबंध में आप क्या कुछ सोच रहे हैं ?' नहीं तो 'पचास वर्षों में फिल्म का भविष्य क्या होगा ?' आदि पूछ लेना बहुत ही आसान है।

उसका उत्तर होगा—धीरज अगर है, तो इसमें से भी कई बातें सीखी जा सकती हैं।

पांच आदमी एक जगह हों, कुछ पूछा जाये, उस पर बहसें हों, तो सुनने को और आड़ में मुस्कराने को उसमें से काफी कुछ मिल जाता है। विशेष कर उस समय जब थोड़ी-सी गहरी नजर से देखने पर पता चलता है कि वे जानकार नहीं हैं, मूर्ख हैं। फिर भी अपना स्लोगन दूसरों के सामने चिल्लाने को सब व्यग्र हैं, बावले हैं।

उसके बाद उसके अपने विचार। उस पर वह खुद भी नहीं सोचती। पर उसमें जीवन के प्रति कृतज्ञता है, जो मिल जाता है उसके लिए उसकी आभारी है। उसे जो मिलता है वह समेट लेती है और बाद में उसे भूल जाने की कोशिश करती है। अपनी जानकारी के जरिये वह जानती है कि जिसके चेहरे पर पाप की मुहर लगी हो वह पापी है, जो स्वीकारता फिरता कि उसने चोरी की है वही चोर है, जो नुकसानों के लिए पछताता है वही हारा हुआ है। और जो मुंह पोंछ लेता है सब कुछ भुलाने के लिए, जटिलता में भी बच्चों जैसी हंसी बिखेर सकता है, सोचता नहीं है, पीछे मुड़ कर देखता नहीं है, वह चिर हरित, श्यामल और काम्य बना रहता है।

इसलिए तो सफेद दाढ़ी की ओट में कई अकथ्य बातें छिपी मिलती हैं, सफेद टोपी के नीचे अत्यंत स्वच्छंद रूप से काला बाजार फलता-फूलता है, अत्यंत चहेती पोशाकों के अंदर भयानक आरण्यक प्रवृत्तियां छिपी पायी जाती हैं।

सरोजिनी—

वह बंधन में नहीं है, उसके संतान नहीं है, वह देख सकती है, सीख सकती है।

पर वह आदमी कब से बन गयी, यही बात सोचकर वह खुद चौंक जाती है। इतने कम दिनों की पढ़ाई से क्या वह बदल गयी है? उसे अब नाखुश होना, शक करना आ गया है। अगर कोई कहता, उसका कुछ भी तो नहीं बदला, सिर्फ उसने परिस्थितियों की बातों को अपने में दुहराना भर सीखा है तो शायद वह स्वीकारती ही नहीं। अपनी चेतना के साथ-साथ पीछे हट कर अपने को वह बंदर नहीं बता सकती, फिर भी आश्चर्य की बात तो यह है कि वह सोचती है कि वह अब भी वही पुरानी है और अब एक नयी दुनिया में पहुंच गयी है। सब नया है।

उसका बांध टूट गया। एक बार टूटने से धारा अपने आप उछलती कूदती चली जाती है···

वही, उस पहली रात रणजीत बाबू के घर में, उसके बाद और कई जगह, उसका सभा में बैठने का मन किया है, बात करने की इच्छा हुई है, घूमने-फिरने को, अनजाने लोगों को आमने-सामने देखने को उसका दिल चाहा है, यह दुनिया सिर्फ दिल का खेल है। वह सोचती है कि जो सक्षम है वही भोग करता जाता है

और जो सक्षम नहीं है वह दूसरों की निंदा करता है ।

सरोजिनी में देहातीपन अब नहीं रहा । बलिदत्त चाहता था कि सरोजिनी बदल जाय, और वह तो बदली भी पर बलिदत्त ताल मिला न सका । मन ही मन हो सकता है खिन्न हुआ हो हलका-सा, कभी कहना चाहा हो—"सरोज, आज न जाओ तो क्या हुआ ?"

पर "जैसे तुम्हारी मर्जी" कहके वह मुरझा जाती है वैसे ही वह कहता है,"ठीक है जाओ, वे लोग तुम्हारी इंतजार करते होंगे ।" और अपने को गर्वित अनुभव करने की कोशिश करता है । अपने को विश्वास दिलाने के लिए मन ही मन कहने लगता है—'यह तो मेरा ही किया हुआ काम है—इसकी जड़ में मैं ही हूं ।' देखता है कि उसकी पत्नी आधुनिक रुचि से झिलमिलाती-सी लग रही है । सिर्फ लिपस्टिक, पालिश, क्रीम, पाउडर, सिंदूर महावर और हाइहिल्ड शू ही नहीं, सरोजिनी में आधुनिक रुचि के साथ-साथ आधुनिक ज्ञान भी है । वह कुछ-कुछ अंग्रेजी बोलना तक सीख गयी है, बहुत जल्दी । वही उसकी संपत्ति है ।

बलिदत्त दास के पास निमंत्रण आते रहते हैं—मिस्टर और मिसेज दास । वह सभ्य लोगों में सरोजिनी की प्रशंसा सुनता है ।

खुद आगे बढ़ जाता है ।

दानापानी की लड़ाई में वह अगुआ है । उसकी ख्याति और प्रतिपत्ति काफी है । उसकी नौकरी में एक के बाद एक उन्नति होती गयी है ।

फिर भी वह सोचता है काश! ये उन्नतियां झटपट होतीं । उसका बांध भी टूटा हुआ है । मन में असहिष्णु भूख है और वह सफलता की योजनाओं में अधिक उतावला रहता है । दूसरों की आलोचना कर उन्हें छोटा दिखाने लगा है । एक दिन रात को खाना खाते समय कहने लगा, "समझीं सरोज, अब प्रतिभा की कोई कीमत नहीं रह गयी । हमारे मझले साहब मिस्टर जेना को देखा, साक्षात् उल्लू हैं, अंदर कुछ भी नहीं हैं पर कैसे पैर बढ़ाते हुए ऊपर उठ रहे हैं । यह सब कैसे हुआ जानती हो ? कान में सुनो । उनकी एक लड़की है, शुभ्रांगिनी । अच्छा नाचती है । कंपनी के एक बड़े खरीददार मिस्टर कारकारे बंबई से आये हुए थे । उम्र में पक्के हैं, पर बंबई के नकली दांत वाले और नाच-गाने के अधिक शौकीन हैं । उनका असाधारण स्वागत किया गया । सभा में शुभ्रांगिनी नाची थी । तबला किसने बजाया था जानती हो, खुद जेना ने । जो एक दिन भी नौकरी और काम

में हंसा नहीं था सिर्फ खिट्-खिट् खपा, खिट्-खिट् खपा कर बुढ़ापे में तबला बजा रहा था और शुभ्रांगिनी नाच रही थी। उसके बाद कारकारे पुरी गये—कोणार्क गये—छोड़ो, मिस्टर जेना मझले साहब बन गये, भेजे में कुछ भी नहीं है। मैं फाइलों का अंबार लेकर घर आता हूं और रात-रात बैठ कर काम कर रहा हूं। तुम तो देख रही हो।···छोड़ो भी किससे कहें।"

सरोजिनी चुपचाप हंस देती है।

वही काफी है।

बलिदत्त स्वप्न देखता है।

शाम।

निताई ने इधर-उधर देखा।

मुंह पर दोनों हथेलियां फैला कर दबे गले से जोर से पुकारा—"हर्षा, ए हर्षा।"

जैसे बांस की नली से फूंक मारता हो।

हर्षा पास आया। जोर से उसका कंधा पकड़ कर निताई उसे बाहर वाले कमरे में ले आया।

दोनों अंधेरे में चुपचाप समा गये। जैसे दो षड्यंत्र करने वाले—अत्यंत गोपन।

हर्षा कुछ कहना चाहता था। निताई उसके मुंह पर हाथ रख कर रुक गया और कान लगाये कुछ सुनने की कोशिश करने लगा। अंधेरे में हर्षा चौंका।

निताई ने दियासलाई जलायी। अंधेरे में से एक काली कलूटी टूटी लालटेन ढूंढ़ निकाली। जलायी। निताई ने कपड़े उतारे, सारा दिन उन्हीं कपड़ों में बीता है। बोला—"बैठता क्यों नहीं ?"

हर्षा हंसा। बैठने का मतलब वह जानता है।

समूचा कमरा बिखरा पड़ा है। निताई का दिन भर का आहरण छोटी-छोटी पोटलियां। हर्षा उसमें से एक खोलने लगा तो निताई बाघ की तरह झपट पड़ा,

तब तक हर्षा उसे खोल चुका था। कुछ मुनगे, (सब्जी) चार बैंगन, तीन अधगले केले, हर्षा का मन केलों पर जमा था।

"खा-खाकर तेरा पेट फटने लगा है, फिर भी तू छीन कर खाना चाहता है, कंगाल कहीं का—"

हर्षा हंसते हुए केला खाने में मशगूल है। निताई बकता जा रहा है। निताई ने चिलम लगायी। हर्षा ने केले खाकर निताई के मैले कपड़े से हाथ पोंछ कर हाथ बढ़ाया।

"नहीं-नहीं"—निताई बोला—"यह तेरे बस की बात नहीं है। मैंने मना किया है न! मेंढक के पेट में कहीं घी पचता है। बीड़ी पी, देख वहां उस टीन में है।" हर्षा ने बीड़ी निकाल कर लगायी और दोनों दोस्त आमने-सामने बैठ गये।

वैसे एकांत क्षणों में दिल खोल कर बातें होती हैं, निताई ने पूछा—"और क्या खबर है।"

"बाबू बम् बनता जा रहा है।"

निताई हंस दिया, बोला—"अरे बाबू नहीं, साहब कह, साहब। अब जो करना है कर ले। फिर कहां वक्त मिलेगा।"

"क्या करूंगा। देता क्या है? काम कराते-कराते तो खाल छीलता जा रहा है।"

"अरे देखता हूं तेरी आंखें भी बढ़ गयी हैं।"

हंसा हर्षा—"नहीं—नहीं।"

"अरे मुझे सब कुछ पता है। बोल मत, करता जा। सब वही नियति—मेरा। अब देख बाबू का घर कैसा चमक रहा है, बाबू साहब हैं, मां मेम, कंगाल बड़ा आदमी, आह, मक्खी तक फिसल जाती है देह से—ए? क्या मांगता है मांग, दे दूंगा!"

"मेरे लिए एक टार्च लाइट का इंतजाम कर दे।"

"हूं, तो हाथ में खुजली होने लगी है। मूंछ तो उगी नहीं—ठीक है ठीक है हो जायेगा। अपना हर्षा अब बाबू बनेगा।"

"अब कौन-सा व्यापार चलाया है निता भाई।"

"तुझे उससे क्या मिलेगा? अदरक का व्यापारी जहाज का मोल-तोल करने लगा। व्यापार तो अपनी मुट्ठी में है। साहब के लिए काम—उस सब में निता

की जरूरत है। उस पर मेम का काम—'रुपये उधार लादो, चीनी बेच दो, सब्जी बिकाओ—कितना कुछ बिकवाओ, बस रुपये लाओ।' ये सब बड़ी-बड़ी बातें हैं बेचने-खरीदने की, तू समझेगा नहीं, अभी बच्चा है। सिर्फ इतना भर देखता हूं—कि कंगाल का पेट भरता नहीं है ठीक तेरी तरह। जितना पाये और और···"

ए—बम—बम—मां बुला रही है।

चाव—राशि—एइ—एइ—सब किधर चल दिये।

निता ने उतारे हुए कपड़े झटपट पहन लिए। हड़बड़ी में आधी खुली पगड़ी उठा ली। उसके बाद दोनों बाहर निकल पड़े। किवाड़ पर कुंडी चढ़ा कर हर्षा को दूसरी ओर धकेल कर निता बोला—"अरे बुद्धू—तू उस ओर से—हम दोनों को एक ही जगह एक साथ देखते ही बाबू थप्पड़ उठायेगा मेरी ओर, पता है?"

बलिदत्त का दिल धक-धक करता है। जैसे कंपनी का एक बड़ा-सा इंजन हो।

दो बजा है, उसके दफ्तर की घड़ी में। फाइल पर से आंख उठा कर सिगरेट जला कर उसने पुकारा है—"निताय—,—चाय—।"

निताई टिफिन कैरियर खोल रहा है, और उसकी खट-खट आवाज आ रही है—निताई लंबे से लाल फ्लास्क से चाय उंडेल रहा है।—सिगरेट जलती जा रही है—बलिदत्त सूनी नजर से देख रहा है—मन में एक ग्रामोफोन रेकार्ड की तरह बज रही है—

क्या सरोजिनी घर पर होगी?

जलती जा रही है सिगरेट। हां, इस बीच उसे सिगरेट पीने की आदत हो गयी है। गरम पानी, गरम धुआं, यह न हों तो काम बनता नहीं। फिर अब वह गरीब भी तो नहीं रहा।

गरीबी के लिए उसमें थोड़ी सी भी सहानुभूति नहीं। वह बढ़ता जा रहा है। गरीबी से बदला लेता-सा वह जान बूझकर खर्च बढ़ाता जा रहा है—अपने खर्च—पोशाक आदि में—जब कि उसमें से कई बातें रुचती नहीं। कीमती सूट, यद्यपि उनका रंग अपने देह के रंग के साथ फबता नहीं। घर सजाने के लिए कीमती चीजें

हैं, पर बैठक नाई की सैलून की तरह लगती है या थियेटर का स्टेज सा बन जाता है। सरोजिनी कुछ-कुछ सुधार लेती है, पर बलिदत्त उस ओर सोचता ही नहीं।

नजर उसकी वर्दी पहने, पगड़ी बांधे निता चपरासी पर अटक गयी है। उसके नाश्ते का प्लेट, चाय रखने के कायदे में जैसे उसी का रोब फूट पड़ रहा है। रंग-बिरंगी पोशाक, चमकता पीतल का तमगा, मोटा साफा—देखने से बलिदत्त की दृष्टि शीतल हो जाती है—यह उसका एक पहलू है—

पर दूसरा—क्या सरोजिनी घर पर होगी—

गहरी सांस—गहरी सांस—सिगरेट जलती जा रही है।

उस मौन अनमने पन में लहरें बनाते से साधारण मनुष्य के कई सवाल उठ रहे हैं। आदमी क्या चाहता है? सुख क्या है? जीवन क्या है? किसी भी विषय पर अगर टेबल पीटकर पूछा जाय 'क्यों' तो उस क्यों का क्या जवाब है? कई सवाल कोई जम्हाई लेकर समझता है, कोई गहरी सांसों में तो कोई सिर्फ देखता रहता है और जवाब मिल जाता है। टेलीग्राफ तार में पत्थर बजने की तरह उसका दिल झनझना उठता है यद्यपि भाषा से वह सवाल प्रकाशित नहीं होते।

बलिदत्त ने सारा ध्यान चाय नाश्ते पर लगा लिया, सुख के लिए नहीं, डिस-पोजल के लिए। ढेर सारी फाइलें देखने पर, डिसपोजल जब तक हो नहीं जाती तब तक शांति नहीं मिलती। दिमाग में घूम रही है फाइलों के अंबार की बात। फिर भी वह एक ही विषय पर सोच रहा है—सरोजिनी। सोचते हुए एक ही पलड़े में आनुसंगिक कई चिंता से तकड़ी भरती जा रही है···सुख क्या है? संसार में सुख कैसे मिल सकता है? स्वाधीनता क्या है? क्या करने से आदमी स्वाधीन होता है?

बड़े व्यापारी मारवाड़ी हरिनारायण से लेकर देश महांति मिश्र तक—व्यापार बढ़कर विराट् बांबी की तरह उठता है। व्यापारी व्यापार का खरीदा हुआ गुलाम है। निजत्व खोकर व्यापार का जयध्वज उड़ाते हुए खतरे को दूर रखने के लिए कितना परिश्रम करना पड़ता है, उसके लिए कितनी यातनाएं भोगनी पड़ती हैं। कीमती मोटर में बैठकर गुजरते हुए कितनों से सलाम मिलते रहते हैं, दायें-बायें गाड़ी के अंदर मुड़-मुड़कर उन सलामों को ग्रहण करते हुए यदि कोई पहुंच वाला आदमी मिल जाये तो उसकी मर्जी के मुताबिक बंदर नाच शुरू हो जाता है। खाने-पीने

का ठिकाना नहीं, घर कटे हुए बच्चों की खबर लेने के लिए फुरसत नहीं—सिर्फ बिजनेस···व्यस्तता···। आधी रात सर तकिये पर रखे उसी विभीषिका का सपना देखना, भय, चालाकी, दुश्चिंता, आया···आया ··गया···गया की सोच में डूबा रहना···आदमी को खाकर बांबी बढ़ती है···बैंक में जोड़ बढ़ता···बेचारा पूंजीपति।

ऊंची नौकरी वाले···मोटी तनख्वाह पाने वाले कंपनी के अफसरों के दिन फाइल या मशीनी कलपुर्जों की दुनिया में कटते हैं। नाम के सात घंटों के नौकर हैं फिर भी चौबीसों घंटे सर बेचे हुए हैं, सुबह से लेकर आधी रात तक दूसरों का काम, दूसरों की चिंता, दूसरों के लिए उलझे रहना। समय की कोई निश्चित सीमा नहीं। आधी रात गये खाना खाकर अभी नींद ही आयी हो तो भी बड़े साहब का चपरासी आकर बिछौने से उठाकर कागज पेश करने का हक रखता है—"देखो शायद वहां उस डिपो में मजदूर मिलकर झमेला करने वाले हैं—तुम जल्दी जाओ, वहां रातों रात पहुंचो।" स्त्री बीमार है, बच्चे आवारा होते जा रहे हैं, गांव में खेती उजड़ती जा रही है उस पर अगर एतराज है तो फौरन एक लाल कागज मिल जायेगा—"सुबह मिलो" उसके बाद एक मिनट का लेक्चर—"असुविधा है तो इस्तीफा दे दो, तुम जैसे बहानेबाजों के लिए कंपनी में जगह नहीं है।" इसके अलावा अवसर पड़ने पर ऊपरवाले अफसरों के साथ संपर्क जोड़ने के कई सूक्ष्म और स्थूल तरीके हैं और उसकी कई प्रतिक्रियाएं भी हैं—दूसरों की हंसी के साथ ताल मिलाकर हंसना, अपनी पीठ पर दूसरों का भूत सवार कर चलना,—और उसी का हुक्म मानते रहना—बैठो यहां, उठो, थोड़ा हंसो, रोओ—मारो—रखो···

उपाय मानकर आदमी ने जिसका सहारा लिया वही अपने आप अपना मतलब हो गया और आदमी का काम है उन्हीं पत्थर के चक्कों के नीचे अपनी छाती रख देना। हो सकता है अपने को भुलाने के लिए आदमी उसी चक्कों की बनावट पर नजर गड़ाये कभी-कभार कह दे—पत्थर के ये पहिये सुंदर हैं, जिंदा हैं—सच वे पत्थर के पहिये कितने सुंदर होते हैं, अति सुंदर—कैसी परिकल्पना है। कितने शिल्पियों के पसीने से बना है यह रत्न—कैसी योजना है।

रथ के पत्थर-पहियों की प्रशंसा करने के बावजूद पंजर की हड्डियों पर उसके दबाव की अनुभूति मिलती है। उपाय अपने आप उसका उद्देश्य बन जाता है, पर

वह निर्जीव पत्थर है, वह तंत्र है, वह क्यों आदमी की हाड़-मांस की देह की खातिर करने जाय ? क्यों उसके कोमल मन की मर्मकथा को सोचे ? पहिये चलते जाते हैं—उम्र को खाते निगलते हुए।

जिस समय उपाय को उद्देश्य के रूप में ग्रहण किया जाता है, बुद्धि को हथियार मिल जाते हैं—उस समय विवेक नहीं रहता···

गरदन दबाकर काम करवा लेता है।

आदमी स्वाधीनता खो देता है।

इसलिए दुनिया की कुल हंसी में से एक बड़ा-सा हिस्सा अनगढ़ मन, शिशु या उद्देश्यहीन सरल अभागों की उपज है।

क्या जान बूझकर कोई हंस सकता है ?

सिविलाइजेसन इज सिफिलाइजेसन।

डैम रट्—चमड़ी के नीचे छोटी-छोटी स्नायु में भी विष की लहर है—चेतना में जला डालने वाला सिफिलिस है, विचार में साइकोसिस है।

हेल···हेल···हेल···इस दुनिया में नर्क है···क्या सरोजिनी घर में ही होगी ?

चेतना में लहर उठती है, उसकी भाषा अस्पष्ट है, उसका चित्र अस्पष्ट है—उन लहरों के सामने झिलमिलाता उजाला है···मचलती नमकीन लहर···कै हो आती है।

निता का मुंह दिख जाता है। मुंह नहीं मुखौटा···निर्विकार। निर्लिप्त। मानो ग्रानाइट पत्थर है। एक कोने में एक ही मुद्रा में खड़ा है। सियार जैसी आंखें। पलकों के बाल खतम होने को आये हैं। लगता है पलक ही नहीं झपकती। ग्रेनाइट सी आंखें। नहीं, यूरेनियम से बनी, आदिम यूरेनियम, दुनिया जिस दिन बनी उस दिन का। रेडियम घिसकर सीसा बन गयी हैं आंखें, केश भी सीसे जैसे हैं। इसी सीसे से गणना करके अगर धरती की उम्र की कल्पना की जाय तो, निता की उम्र क्या होगी ? अस्थिर भावना स्थिर हो जाती···मन की धकधक अटक जाती, पल भर के लिए यह यूरेनियम का आदमी, सीसे का आदमी, माटी का आदमी कितने अफसरों के, कितनी तरह की बुनियादवाली कंपनी के कितने दपदपाते चमकते आडंबर देखता आया है। पीढ़ी दर पीढ़ी कंपनी चलती आयी है···कितने निता की तरह के इनसान आये हैं, गाली हजम की हैं, हाथ झाड़कर सकते रहे हैं और अवसर पाकर चूल्हे के अंगारों को भोंक कर और दपदपा दिया है। निता कहता

है, एक सेना का अफसर था, कागज दबाकर रखने वाली कांच की गोली फेंकता था। और एक था मैक या हाइलांडर वैसा कुछ, बात-बात पर हाथ उठाता था। निता कहता है उसे दाढ़ी वाला चपरासी रहमन मियां जब्त कर सका था। साहब ने हाथ उठाया तो उसने पकड़ लिया और गुर्राकर कहा—"साहब, यह क्या कर रहे हो। देखो अगर लड़ना चाहते हो तो नीचे उतर आओ नीचे।" और उस मैक साहब ने हाथ मिलाया। यूरेनियम का इनसान, सीसे से बना आदमी है निता···रहमान के दो पहलू थे···आधा पुरुष आधी स्त्री—अर्धनारीश्वर। सहता आया है—देखता आया है। आखिर जियें क्यों ? जीने में कैसा आनंद है ? मरता क्यों नहीं ? वही एक रस जीवन,···उसने भी इसे एक जैसा ही देखा है।

हेल्ल्···ओ हेल्ल् ! सर में आग सी लगती है।

सिविलाइजेशन इज···

गरगराता है जो विष मन में फैल गया है···छटपटाने लगा है—उसी के लिए मारपीट, भोंका-भोंकी, एटम्बम फेंका-फेंकी···सिविलाइजेशन इज···

आंखें लाल हो आयीं थीं—भीतर चिड़चिड़ाहट बढ़ने लगी थी—उसने निता की ओर अधजली सिगरेट का टुकड़ा फेंका—गरज उठा—"निताय···ईडियट बुड्ढा कहीं का।"

"हुजूर।"

"अरे क्या देखते हो बुद्धू की तरह, ये प्लेट क्यों नहीं उठाते ?"

उसने मुंह से सारी बातें निकालीं भी नहीं कि निता ने आकर प्लेटें उठा लीं, मानो एक मशीन हो। सीसे के मानव की अपनी गत है—सब कुछ उसने सहेज लिया। उसके बाद अखबार बिछा दिया। सिगरेट का लाल डिब्बा खोलकर रख दिया। इन्हीं पांच मिनटों में बलिदत्त दास साहब अंग्रेजी अखबार की सुर्खियां देखा करते हैं।

चौंकाने वाली बात। प्रख्यात स्थल सेनापति जेनरल उड्सन की पत्नी को प्रख्यात वायुसेना के सेनापति एयर कमोडोर केजलि ने अपहरण कर लिया है। उड्सन को तलाक लेने का अधिकार मिल गया है।

वृद्ध उड्सन कई लड़ाइयों में अभिनंदित, उपाधि और मेडलों से भूषित हुए हैं। तरक्की करके काफी ऊंचे बन गये हैं। आज उनका परिवार नहीं है। चार फुट नौ इंच के ठिगने बलिदत्त दास ने गहरी सांस ली। उसमें आत्माभिमान है

कि वह साहबों के मन को पहचानता है, दुख क्या है, वह जानता है, क्योंकि वह खुद साहब है।

अचानक उसका दिल चौंक उठा, आंखों के आगे डबडबाती सी तैर गयी अखबार की हैडलाइन।

याद आयी सरोजिनी, वह समूची उसी की है। समूची। कितना प्यार करता है वह उसे···दिल से चाहता है। दफ्तर की घड़ी में दो बजकर पंद्रह मिनट हुए हैं। शायद सरोजिनी घूमने गयी होगी। आज-कल कई पार्टियां हैं उसकी, वह बच्ची सी बन गयी है, तरक्की कर रही है। जीवन उसका विकसित हो रहा है।

जाये घूमने, फिर लौटेगी ही।

साढ़े तीन बजने को हैं।

गरदन के नीचे बाहें रखे सरोजिनी लेटी है। कुछ अलसायी सी।

प्रतीक्षा का नैवेद्य।

खुले झरोखे और दरवाजे से हवा बहती आ रही है। सरोजिनी उसका स्पर्श अनुभव कर रही है। पास एक छोटी सी कापी पड़ी है, चमकती चमड़े की जिल्द है। जिसके किनारों पर सुनहली लकीर है। उसी में सरोजिनी अपने उद्‌बुद्ध जीवन की प्रधान घटनाएं, पार्टी, आमंत्रण सभा और सारी योजनाएं लिखती है।

याद नहीं किसने कहा था—"जीवन को उद्देश्यमय बनाना होगा। समय को कार्यसूची में बांधकर रखना होगा। कार्यसूची को डायरी में लिखकर रखना होगा।"

सफलता अपने आप नहीं आती।

सरोजिनी शून्य की ओर ताक रही है। धीरे-धीरे पैर हिला रही है। घड़ी की टिक-टिक की भांति मन में चेतना का प्रवाह है।

साढ़े तीन बजने को हैं।

अब कान आवाज पहचानने लगे हैं।

जो ऊपर से निःशब्द जान पड़ता है उसी निःशब्दता को कान लगाकर कोई

सुने तो उसी में कई शब्दों का अस्तित्व महसूस होगा। खुट्—खाट्—धूम्—दूर यह हर्षा है। सारे वक्त उसका दायां हाथ कुछ न कुछ करता रहता है। चाहे जो भी हो उसपर चिढ़ आती है। क्यों ? इसलिए कि वह साफ सुथरा नहीं, गंदा है। हर्षा कभी-कभी निहायत गंदा लगता है, तब वह ज्यादा चिढ़ती है।

हर्षा की आवाज। दूर कहीं से कौवा कायं-कायं कर रहा है। साथ में कई और चिड़ियों का स्वर है। दूर शब्दों की समष्टि···गाड़ी···भीड़—

सनसनाती हवा की आवाज, आड़ में से जैसे दो की सांसों की थिरकती आवाज हो···साथ छिपी हंसी···दबी सी···

सोचने पर कैसा लगता है। सरोजिनी उठ कर तकिये पर चली गयी। अबीर मला-सा चेहरा। चारों ओर देखा—कहां, कोई नहीं है।

धूप फीकी पड़ती जा रही है। उसने हाथ की पतली-सी घड़ी देखी। साढ़े तीन बजने वाले हैं—वह तैयार बैठी है। इस बार शायद···। झरोखे में से दूर देखते-देखते आंखें इमारतों पर टिक गयीं। याद आये 'वे'—। कंपनी के विशिष्ट कर्मचारी। काम में लगे होंगे। पर कौन काम नहीं करता ? काम करता है इसलिए क्या आदमी मन से लाड़-प्यार ही हटा दे ? लौटते समय मुंह सूखा-सूखा सा लगता है। शाम को—"हर्षा जरा पैर तो दबा देना।"

"हे :··· हे :··· हे:···"

रणजीत बाबू, कैसे स्मार्ट हैं, कसे हुए···फुर्तीले। नरेंद्र यादव बांके अंदाज में चुरुट, फिट्फाट। तना हुआ आदमी, चौड़े कंधों पर चिपकी सी गरदन, जैसे कि विधि ने पहले से सोचकर बड़ी जिम्मेदारी उठाने के लिए बनाया है। मिस्टर त्रिपाठी कद के छोटे हैं, फिर भी उनमें मोहिनी शक्ति है। देह के अनुसार उभरे गाल, मानो रस भरे हों, चौड़ा ललाट आंखों में बच्चों जैसी शरारत, या सुगठित छोटे-छोटे हाथों से, पता नहीं किससे उस मोहिनी शक्ति की सूचना मिलती है। पर लोग हैं, दिखाते कुछ और हैं और करते कुछ और, फिर भी उनका जीवन लहराता है। कोई अपने को कोमलता में प्रकाशित करता है तो कोई रुक्षता में। किसी में अत्यंत असहायता है जो सहानुभूति जगाती है तो किसी में वन्य उन्माद है, किसी में चिकनाहट है तो किसी की कंटीली नोकदार मूंछें हैं। आदमी को जानवर के साथ मिलाकर देखा जा सकता है—भीतर आग, इंजन की ताकत है तो मानव जंतु जितना भला लगता है। विशेषकर दल में, पार्टी में, जब औरतों

के सामने यह जंतु अनजाने में दूसरों के साथ होड़ लगाता है। निजत्व की बहादुरी के लिए।

वही जंतु रेवड़ में

में…में…मिमिआता सा है…

सर पर दो सींग … में में…

एक बकरी। आती है—फाटक के पास शुं-शुं होता है फाटक बंद है। हताश होकर बकरी गर्दन टेक रही है। उसकी आंखें मिट्टी मिले पानी की तरह हैं, मुंह से पानी टपक रहा है।

उसके सर पर दो सींग हैं।

ओह कैसी उद्भट्ट कल्पना है। सरोजिनी का व्यक्तित्व एक ओर पर्दा हटाकर सामने उतर आया। हाथ की घड़ी में तीन चालीस बजने लगे हैं। बकरी चलती जा रही है।

फिर याद आ रहे हैं 'वे'। नाश्ता है। चाय लाकर निता देगा। पर उन्हें कुछ और अधिक यत्न देना चाहिए। गंभीर होकर सरोजिनी सोच रही है। वे खाने बैठते हैं तो अब सरोजिनी लेक्चर देती है। जीवन की कथा कहती है, सुख की बात, आराम की बात, दूसरों की बात। वे पहले की तरह फालतू गप्पें नहीं मारते। खाते समय भी शायद नौकरी का बोझ सर पर लादे रहते हैं। खाने के बाद आधी रात तक फाइलें लेकर काम करते रहते हैं। जीवन से क्या पाया है उन्होंने ? पर कहने से या समझाने से कुछ नहीं होता जो जैसा है वैसा ही बना रहेगा।

यह क्या हुआ ? तीन पैंतालीस हो गये ? सरोजिनी ने अपनी छोटी सी कापी देखी। अचानक मोटर हार्न की आवाज आयी। वह पहचानी सी आवाज, जैसे तुरही की आवाज है। किसी सिनेमा की तरह राजारानी रथ पर चल रहे हैं, लोग खींच रहे हैं और वही तुरही की आवाज है आगे-आगे—आवाज आ रही है—उठो, हट जाओ—

रणजीत बाबू की कीमती मोटर गाड़ी आकर फाटक के पास रुक गयी—वह रणजीत बाबू उतर रहे हैं, अब मिलि उतर रही है। बच्चे-सा बेफिक्र, दरवाजे पर फ्रेम में बंधी एक छवि की तरह सरोजिनी एक मिनट के लिए रुक गयी, छाती उठ-गिर रही है।

उसी अदा से वह मुड़ आयी।

आज एक छोटी सी आउटिंग है। दूर एक सपाट मैदान है, वहां ढालू जमीन पर कतारों में पेड़ लगे हैं। जब वह घर के अंदर दौड़ती सी जा रही थी तब मन ही मन उसी मैदान की खुशबू ले रही थी, आंखों की विचित्र दृष्टि में धूप का पिघला सोना था। मैदान की वीरानी के साथ-साथ हृदय में भरी हुई थी शून्यता, सांय-सांय करती—। चेतना में अस्पष्ट-सा दिख रहा था—कतारों में खड़े पेड़ों की ओर हंस की भांति घास पर तैरती-सी जाती हुई मिली, जीवन के बारे में गंभीर तथ्य कहती।

मिली अब शायद दूर निशाना साध कर छोटे-छोटे पत्थर के टुकड़े फेंकने के लिए पीछे रुक जायेगी, जैसा वह करती है अकसर।

और फिसफिसाकर रणजीत बाबू कहने लगेंगे—

"क्या सोच रही हैं आप—"

और पेड़ की ओट में से चिड़िया चहक उठेंगी—कुर—कुर—कुर—

सरोजिनी घूमने जाती है तो ठीक ही तो है।

बलिदत्त अपने आप गर्व अनुभव करता है। वह घर में घुसे रहने वाला नहीं, काम का आदमी है। अपने 'जीवन' को उसने तिल से ताड़ बनाया है, वही उसमें श्रेष्ठ कला है। अब उसकी दूसरों को उपदेश देने की अवस्था आ गयी है— मुझे देखो, मुझे देखकर काम करो, तुम भी जीवन बना सकोगे।

और सरोजिनी की बात—उसके लिए वह भी गर्व की चीज बन गयी है। समाज के प्रत्येक स्तर में एक दल ऐसा मिलेगा जो किसी भी प्रकार के कार्य की प्रशंसा करने के लिए, चाहे दिल से न सही, ऊपरी मुंह से, प्रशंसा करेंगे—जहां उनका काम हो। उस दिन की बात ही लो, एक विदेशी कंट्रैक्टर मझले साहब के पास किसी काम से आया था। सिगरेट का धुआं उड़ाते हुए बात-बात में वह बंबई के नाच के बारे में कहने लगा। धीरे-धीरे शुभ्रांगिनी के नाच की बात छेड़ दी। शुभ्रांगिनी की प्रशंसा के पुल बांधता गया। उसका सिर्फ एक हजार रुपयों का

काम था पर फायदा हो गया उससे भी अधिक। बलिदत्त की प्रशंसा भी लोग करते हैं, सुन-सुनकर लगता है—झूठ भी क्या है ?

वह सोचता है, सरोजिनी के विकास के लिए सारी सुविधाएं जुटा देना उसकी जिम्मेदारी है। स्वर साधने से सब कुछ गाया जा सकता है।

इसके अलावा—सोचने में क्या देर लगती है—वह काम वाला आदमी ठहरा। कंपनी के कामों में कंपनी का स्वार्थ देखकर जी जान से मेहनत करनी है। समय मिले तो अपने लिए भी कोशिश करनी है।

बीच में उसका कर्तृत्व है। सुविधा मिली है इसलिए वह आदमी चराता है। स्पर्द्धा में जब वह अपने क्षुद्र शरीर को फैलाता है तब वह अपने निचले लोगों की भयभीत आंखें देखता है…जब उसकी कलम छोटे आदमियों का दानापानी साफ करती है, जब वह किसी की आकुल प्रार्थना सुनता है, जब वह किसी का गिड़गिड़ाना सुनता है तब बलिदत्त अपने बड़प्पन का अनुभव करता है। बात-बात में गरजना उसके लिए संभव नहीं है, वह काम वाला आदमी है, इसलिए वह उस्तरे की तरह कलम चलाता है। संस्कार के नाम पर कत्ल करते-करते उसे आत्म-संतोष मिलता है, जैसे कि वह अपना मैला अतीत निर्दयता के साथ साफ करता हुआ उठ रहा है, ऊपर और ऊपर।

जानने वाले उससे यम की भांति डरते हैं। वह खुश होता है। उसमें विश्वास है कि डर काम के लिए स्वास्थ्यकर है। उसे विश्वास है काम करने वाले का चेहरा हंसी-खुशी में चमकता-सा लगना चाहिए, स्वस्थ्य, शांत और आलसी एक ही बात है। इसलिए वह उपाय ढूंढ़ता है। चुगली सुनता है और उसी में उसका काफी समय चला जाता है। काम करके वह नाम कमाता है, लोग उसकी प्रशंसा करते हैं।

सिर्फ, वह मिस्टर 'श' से डरता है। वहां न डांड पहुंचता है न पतवार। जैसे वहां सोयी पड़ी है अतल अंधेरी जलराशि। कब किस समय उसका क्या रंग हो जाता है, व्यक्तित्व किस तरह पल भर में बदल जाता है वह सब देख आश्चर्य लगता है—यहां क्या स्थिर है ? कैसा बर्ताव यहां सही होगा ? प्रशंसा करते-करते आहत होता है, घाव को चाटते-चाटते सुनता है "शाबास, शाबास"। हंसते-हंसते मुंह पर मेघ-सी गंभीरता देख दब जाना पड़ता है, बार-बार चेष्टा कर बार-बार धक्का खाकर अतृप्ति रहती है, तृषा बनी रहती है।

निदान सिर्फ रह जाता है भय।

वही पहली मुलाकात की स्मृति, सिट डाउन और गेट आउट का तूफानी गर्जन, कानों में सायं-सायं बजता है। प्रथम परिचय में, प्रथम संभाषण में संबंध की जो नींव पड़ती है उसी का अनुपात अंत तक रह जाता है। बड़े होने पर भी बचपन के मास्टर को देखते ही जैसे अपने आप सर झुक जाता है और विनय के साथ मुंह से 'सर' निकल जाता है, वैसे ही···

आरंभ से 'साहब' उसके बाद मिस्टर 'श' उसी क्रम से पत्थर की पूजा करना उसे मिलता है।

पर पत्थर निश्चल रहता है। हंसने रोने के प्रति, स्नेह श्रद्धा के प्रति वही पत्थर। वही मूर्ति। उसकी चिरंतन स्थिरता हृदय की तरंगों को छूट देती है कि वह टटोल कर अपने अंदर से जबान ढूंढ़ लें।

पर दानापानी के क्षेत्र में यह जो पत्थर के देवता हैं, वे कर्कशता और रूखेपन में पत्थर तो हैं ही चलत्शक्ति में भी विस्फोटक है, वहां पूजा शांति नहीं देती। पूजा और अधिक पूजा के लिए प्रचेष्टा उपजाती है। वृथा परिश्रम, मनो की विसमता में बलिदत्त जहां का तहां रह जाता है।

पदोन्नति के कारण मिस्टर 'श' के साथ मिलने-जुलने की आवश्यकता बार-बार आती है। वैसे खड़े के खड़े रह जाना पड़ता हैं, कभी-कभी अचानक आदेश मिलता है बैठो-बैठो। उसी तरह नीचा मुंह कर खड़े रहते हुए बलिदत्त जानबूझ कर उनके पैरों पर ध्यान लगाता-सा रहता है। वे किसी दूसरे के साथ बात करते होंगे अचानक गरजकर कहने लगेंगे—"वैसे चुपचाप सपना देखने की तरह खड़े क्यों रह गये—स्वप्नवादी के लिए यहां जगह नहीं हैं। बोलो उसके लिए कौन सी व्यवस्था की है ?" यद्यपि वह कंठस्थ किया सा कहता जायेगा, वे बीच ही में गरजकर चीत्कार करेंगे ··

"ओह—पहले सुनो।"

आगंतुक मुस्कराने लगेंगे।

हो सकता है वह, एक साधारण सा आदमी हो, अनपढ़, पैर धूल से सने, धोती घुटनों तक की हो, पर उस समय घड़ी भर के लिए साहब की नजर में एक बड़ा आदमी है, क्योंकि उसके पास साहब का स्वार्थ है। यह भी हो सकता है कि दूसरी परिस्थिति में दस दफा आये और साहब से मुलाकात ही न हो। पर वर्तमान

परिस्थिति में वह बैठे-बैठे मुस्कराता रहेगा, दंभ के साथ बातें करता रहेगा, बलिदत्त खड़े-खड़े गाली सुनता रहेगा । बाहर आकर वही आदमी प्रचार करेगा—कंपनी का बड़ा साहब काफी मेल-जोल पसंद है, बेहद काम वाला। चालाक आदमी हुआ तो कहेगा—कंपनी का बड़ा साहब बहुत मेल-जोल पसंद है, बेहद काम वाला, बहुत अच्छा आदमी, सारा दफ्तर उलट-पलटकर उन्होंने काम की जवाबतलबी की । जनसाधारण के प्रति उनमें असाधारण सहानुभूति है ।

पर बलिदत्त बड़ा हुआ है। उसकी अहमिका बड़ी हुई है। उसमें ज्वाला अधिक है, उसे सब हजम करना पड़ता है। फिर उसका सफलतावाद लौट आता है और वह काम में लग जाता है ।

वह बड़े साहब के साथ गश्त पर गया, कंपनी के काम के इलाके में। वहां अनेक मजदूर हैं, कई काम हैं, कंपनी के कारखाने और मजदूरों की बस्ती है। पहले से बलिदत्त ने खबर भेजी थी । इसलिए जगह-जगह तोरण जगह-जगह मजदूरों के नेता, जगह-जगह मजदूर महिलाएं, शंख और हुलहुली ध्वनि थी। उसे आशा थी कि मिस्टर 'श' गाड़ी रोकेंगे और खुश होंगे। पर गाड़ी नहीं रुकी। तोरण के नीचे गुस्से से गरजने की तरह गाड़ी का हार्न बजा और भीड़ चीरती सी गाड़ी चली गयी। बलिदत्त डरते हुए कहने लगा—"कंपनी का इलाका है, इसलिए लोग बड़े साहब को देखने के लिए, अपनी श्रद्धा जताने के लिए इकट्ठे हुए हैं। कितनी गहरी ममता है···"

थू:—बड़े साहब ने काफी बड़ी आवाज करते हुए थूका। गरज कर जंगली जानवर की तरह गुर्राने लगे। वह गालियों की बौछार थी। बड़े साहब कहने लगे "स्नेह···श्रद्धा·· बेकार। किस बुद्धि ने इन्हें जुटाया है, बहकाया है। आते हुए काम तो कुछ भी नहीं, इन्हीं का तमाशा देख रहा हूं। यह सब कौन करता है मैं जानना चाहता हूं।"

उन्होंने उस ओर विषैली नजरें फेंकीं। लोग सलाम करते तूफान में झुके सुपारी के पेड़ की तरह झुक गये थे। भीड़ में से मिस्टर 'श' की गाड़ी गुजरती जा रही थी। उनके चेहरे पर एक अप्राकृतिक छवि थी, दांतों की दो असम पंक्तियां बज रही थीं, दांतों पर से होंठ उठकर अलग हो गये थे। हंसी है या विरक्ति पता नहीं चलता था। इससे दोनों अर्थ लगाये जा सकते हैं।

"जो अन्नदाता हैं उनके प्रति भक्ति हृदय से आती है। उसे रोका नहीं

जाता।—" विनय के साथ बलिदत्त बोला तो मिस्टर 'श' चिहुंक उठे—

"हृदय! हृदय!" उसके बाद अकथ्य गालियां। "सिर्फ ठगाई और दुर्बलता के लिए दिल का जिक्र···नानसेंस! तुम कितने इडियट हो।"

"हुजूर"। बलिदत्त अपने स्तर से उस संबोधन पर उतर आया। 'श' ने गर्जन किया—

"जो बात-बात में दिल को याद करता है वह बेवकूफ है। मैं वैसा आफिसर नहीं चाहता, याद रखो। हम कंपनी के अफसर हैं, हम मशीन हैं हमारा काम के साथ संबंध है, हृदय के साथ नहीं। कंपनी की क्रेन नहीं देखी? कभी देखा इंजिन और बोयलर को? हम वही हैं। मशीन बिगड़ जाय तो तुम उसे दिल कहोगे··· इडियट! अरे हम छुरी हैं, जो जैसे काम में लगाए, कोई कहेगा घाट काटो, कोई कहेगा गरदन काटो। हम सीजनल लकड़ी हैं, धूप में तपेंगे नहीं, पानी में फूलेंगे नहीं, यहां हृदय की क्या बात है?"

इस बात को बलिदत्त ने कापी में नोट कर लिया, लगा था जैसे वह कीमती फिलासफी की व्याख्या है या गद्य में एक कविता है।

पर व्याख्या मिस्टर 'श' को अच्छी नहीं लगती। कुछ ही दूर, जब एक डिपो के दरवाजे के पास कार रुक गयी, बड़े साहब को उस डिपो की जांच करनी थी। वहां का कर्मचारी डेंगू नर्सैया दौड़ता-दौड़ता आया और सर से पगड़ी खोलकर गाड़ी पर से धूल झाड़ने लगा, उसके साथ आये आदमी गाड़ी के पीछे टोकरी भर संतरे और केले, हंडि में छैना रखने लगे। गाड़ी में से बैठे-बैठे साहब ने पूछा,—"क्यों, दौरा ठीक है—सब ठीक-ठाक है!"

"हुजूर।"

"अच्छा खाता लाना।"

गाड़ी में बैठे-बैठे मिस्टर 'श' ने जांच की रिपोर्ट लिख दी। सब ठीक है। नर्सैया दौरा पटु आदमी है। गाड़ी आगे बढ़ गयी।

फिर शाम ढले एक उजाड़ इलाके में इधर-उधर टहलते मजदूरों को देखकर बलिदत्त कहने लगा—"बस इधर-उधर हो रहे हैं, निकम्मे कहीं के। शायद यहां इन्हें काम में लगाने वाले चुस्त नहीं हैं।" उसने सोचा था कि यह बात साहब को पसंद आयेगी।

अनमने से स्वर में दूर देखते हुए 'श' ने कहा—"इतना नहीं समझते, तुम्हें

जानना चाहिए कि इन मजदूरों के कारण ही अपना दानापानी है।"

फीकी धूप में उनके चेहरे म्लान लग रहे थे, जैसे सारा दिन का पसीना जम गया हो, मानो हताशा भरी गहरी सांस की जलन थे। मजदूरों के अनागत विप्लव के अग्रदूत की तरह मिस्टर 'श' ने गंभीर स्वर में कहा—

"तुम मूर्ख हो। तुम दूसरों की पीठ-पेट की बातें नहीं समझते। तुम सिर्फ मुनाफा और ठगाई चाहते हो। इसलिए तुम्हारी राय स्वार्थपूर्ण, निर्दय और बिना सोच-समझकर कर दी गयी है। पर तुम्हारी नौकरी किसलिए है, यह जानने की चेष्टा की है कभी ? इसी नासमझ नेतृत्व के कारण ही तो अशांति पनपती है; तुम देखते नहीं ? अशांति का तूफान बढ़ेगा, तो बढ़-बढ़कर अंत में सारी संस्था को तितर-बितर कर देगा। तब तुम कहां होगे ? कभी सोचा है ? काम करने वाला तुमसे कम से कम दो लफ्ज मीठी बात चाहता है। थोड़ी सी सहानुभूति चाहता है। वह भी अगर तुम नहीं दोगे तो अफसर कैसे बनोगे ?"

और बलिदत्त ने बिलकुल चेष्टा नहीं की। वह कुछ कहता है तो 'श' ठीक उलटा उससे कहते हैं। शायद निचले कर्मचारी की राय के विपरीत बात कहके उसके मुंह पर थप्पड़ मारना बड़े अफसरों के कायदों में से एक है।

बलिदत्त मन ही मन सब लिख लेता है। पर उसने देखा कि किसी के मुंह पर अंट-संट बक देना उसके लिए संभव नहीं है। दूसरों का व्यक्तित्व उस पर हावी हो जाता है। जिसका वह विरोध करता है, लिखकर करता है, कहकर नहीं।

बाकी का रास्ता 'श' के पास गुमसुम बैठे-बैठे बीत गया। उसने सोचने की चेष्टा की—विचित्र है यह 'श'। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में उनका रूप बदलता रहता है, जब कि आदमी एक है। काम करने के बावजूद 'काम नहीं हुआ' कहकर गाली दे सकता है और काम किये बिना उससे सहानुभूति मिल सकती है। हो सकता है वह रक्तमुखा बाघ हो···और नर्सेया दौरे के लिए कामधेनु···वह एक ही आदमी।

उसकी भावना के तार उलझ जाते हैं। उसका कोई भी ओर-छोर नहीं मिलता। 'श' के आमने-सामने आकर सफलता के सारे सूत्र किताबी बन जाते हैं। उसने इन नामी-गरामी प्रसिद्ध कंपनी के प्रशासकों की बातें सुनी थीं—लोग कहते हैं—ये इतने कुशल हैं कि किसी भी परिस्थिति में उसी के अनुकूल तरह-तरह के मुखौटे पहनकर नये-नये अभिनय दिखाकर काम चला लेते हैं।

वे रीढ़ की प्रशंसा नहीं करते, न्याय रीति की नहीं करते···वह भी नहीं करता। फिर भी उसमें समझौता अधूरा रह जाता है । वह उस स्वर तक नहीं पहुंच पाता, 'श' उस पर हावी हो जाते हैं ।

फिर भी उस कठिन परिस्थिति के नीचे दबकर भी वह अपने सात-पांच की सोचता है और अपना चकरी खेल-खोल देता है । एक चिंता, एक योजना मिटती है दूसरी बनती है···धक्कम-धक्का के साथ वह आगे बढ़ जाता है । जैसे वह एक अंधा कीड़ा है, मिट्टी के नीचे-नीचे वह जमीन खोदता है, वही उसका काम है··· इधर-उधर चलना···। इधर से लौटकर उधर जाना, यही है उसके जीवन का क्रम ।

अचानक एक दिन मिस्टर 'श' का तबादला हो गया। कंपनी के नौकरों के लिए वह एक इतिहास था जिसकी महानता बाहर के आदमी नहीं समझते । शहर में रहने वाले नहीं समझते । देहात के किसान और देश की जनता नहीं समझती । बाहर के लोगों की नजर सिर्फ मशीनों का चलना देखती है । दुनिया के किसी कोने को देखा जाय तो वही मशीन चलती रहती है···चिमनी में धुआं बंद नहीं होता, यंत्र का शब्द-संगीत बंद नहीं होता, हाथ खाली नहीं होते । इसी तरह काम चलता रहता है, एक आता है, एक जाता है···शून्य और विरोधी प्रकृति सर्वदा पूर्ण रहती है । बासु पंडा नहीं हो तो भांग घूट ही नहीं सकती, ऐसा कहना कहीं भी सच नहीं होता ।

लोग पैदा होते हैं इतिहास लिखे जाते हैं । इतिहास के क्रमिक स्रोत में उनकी सत्ता विलीन होती जाती है । और जो जमकर कहीं बैठ गये हैं वे भी बासु पंडा नहीं हैं । वे अगर पैदा नहीं हुए होते तो भी सूरज उगा होता, धरती शस्य-श्यामला विचित्रतापूर्ण बनी होती । ये ही. आदमी होते, इसी तरह दुख-सुखमय मनुष्य जीवन होता । पशु और देवता का मिला-जुला मनुष्य समाज, जिसमें बच्चे धूल में खेलते, बड़े आदमी घर बसाते और बूढ़े माला फेरते ।

बलिदत्त सोच सकता है,···शायद बनु आराम कुर्सी पर पसरकर बैठे-बैठे

अंधमुंदी आंखों से संटु दा की ओर देखकर एक कश बीड़ी की खींचकर संक्षेप में कहता—

"बदली या फदली, नथिंग मेटर्स। कर्ण मरे तो पांच अर्जुन मरे तो भी वही पांच। हमारा क्या आता-जाता है ?"

पर बनु की भावना दूसरे साधारण आदमी की तरह नहीं है। हर रोज बनु का ओवंर गोल या कार्गर होता है; इसलिए वह उद्भट्ट है।

सफलता आहरण की घोर लड़ाई और प्रतिद्वंद्विता में बलिदत्त बनु को भूल नहीं सकता है। उसमें आशा है कि वह बनु को शिष्य की भांति पढ़ायेगा। वह दिन दूर नहीं है। और बड़े साहब के ऐतिहासिक स्थानांतरण के संबंध में जिस विद्युत झलक सा वातावरण पैदा हुआ था, उसी में तैरते समय बनु की याद आयी—कभी उसके प्रति दया दिखाने के लिए तो कभी उसके सिद्धांतों की गलतियां दिखाकर अपने सिद्धांतों को सही बताने के लिए।

बड़े साहब की बदली की खबर चारों ओर फैल गयी। यह एक गंभीर समाचार था। कहीं भी दो नौकरी करने वाले दोस्त इकट्ठे हुए तो वही चर्चा छिड़ी, बड़े साहब जायेंगे, किसी के लिए दो पंक्ति प्रशंसा की लिख देंगे तो किसी के लिए निंदा की। किसकी तकदीर कैसी है, किसकी पत्तल में क्या उंडेला जायेगा। बड़े साहब जायेंगे किसी की क्षमता बढ़ेगी किसी की घटेगी—किसी एक की भी हो सकती है या कुछ लोगों की भी। दानापानी की योजना में विभिन्न क्षमता गोष्ठी हठात कांप गयी हैं, मधुमक्खी के छत्ते में पत्थर लगने की तरह सब चिल्लाते, शोर करते…।

पर यह सब, सिर्फ इसलिए नहीं कि बड़े साहब जायेंगे—बल्कि एक दूसरे आयेंगे इसलिए भी। आने वाले को लेकर कई कल्पनाएं की जाने लगीं—कैसा होगा उनका चेहरा, कैसी होंगी उनकी आदतें, रीति-नीति इसी सब को लेकर गवेषणात्मक आलोचनाएं चलती रहेंगी। पुराना जाकर नया आयेगा। सोचने से मन में आनंद होता है; वह आनंद दास-मन का परिवर्तन का आनंद है। हो सकता है वह निर्बोध हो, विशाल विश्लेषण की दृष्टि से, पर आनंद का कारण सबके लिए समान नहीं है।

जिंदगी भर के लिए दब कर रहना जिनके जीवन की विशिष्टता है, वे दूसरों का स्वेच्छाचार या नियम और जकड़ के आगे सर नवा कर उसकी हुकूमत और जुल्म के नीचे स्वाधीन-भाव से हंसने की कोशिश करते समय इधर-उधर ताकते

हैं, यह जानने के लिए कि कोई देख तो नहीं रहा है; स्वाधीन-भाव से सोचते समय बारबार दिल थरथर कांपता है दानापानी के शास्त्रीय नियमों का उल्लंघन तो नहीं हुआ सोचते हुए। पत्थर के नीचे दबी पीली घास, जो पुराना पत्थर अच्छा था या नया यह सोचती ही नहीं है; उसी तरह उनके मन के अंदर कैद विप्लव चुपचाप अपने में अप्रकट रखता है, यह परिस्थिति का परिवर्तन है।

इसलिए नये साहब के आने के पहले ही उनके प्रति एक आशावादी समर्थन से सब चंचल थे।

पुराने साहब के प्रति व्यवहार में अधिक विनय का भाव आ गया था, क्योंकि मन में डर है, उनके हाथ में अभी तक कलम है। कब क्या हो जायेगा, अत तक उनमें ताकत है। जाते-जाते भी कागज पर दो लकीर खींच सकते हैं। उसी से एक जीवन का अंत हो जायेगा।

काम करते जा रहे हैं मिस्टर 'श'···उसी दर्प से, वरन् उससे दुगुने दर्प से। उन्हें दूर से देखने पर श्रद्धा पैदा होती है। कितने निर्विकार होते हैं ये ऊपरवाले हाकिम। नाम दस्तखत कर चार्ज दे चलते। तब सब मेरा-मेरा कहते रहेंगे, न काम में शिथिलता आयेगी न उदासीनता, लोहे के सांचे में ढला हुआ आदमी, जैसे—इस्पात। बलिदत्त दास अपनी राय के साथ दूसरों की राय को मिलाकर देखता है। एक के माथ एक मिलकर शाबासी लेते हैं। कहते हैं—इसीलिए तो कंपनी का काम पीढ़ियों से चलता आया है, उन्नति हुई है, कभी काम बिगड़ा नहीं। आदमी को ऐसा ही होना चाहिए। यहां क्या है और वहां क्या। हर जगह जिम्मेवारी है। चालक और चालित दोनों का तारतम्य इस जिम्मेवारी में है, अधिक काम करने में नही।

कमर कस कर लोग लगे हैं। मिस्टर 'श' की सुविधा-असुविधा के लिए सभी चिंतित हैं। लंबा रास्ता है, इसलिए पलंग अलमारी नीलाम कर जायेंगे। जो सामान साथ ले जायेंगे उसकी पैकिंग, गाड़ी की व्यवस्था, कुलियों का इंतजाम, कई और काम करने हैं। इसके अलावा समय मिलने पर उनके आस-पास होना, नजर में पड़ते रहना, जिससे शायद अंत में लिखते समय वे याद कर लें···मन-ही-मन यही प्रार्थना है जिसे मुंह खोल कर कहते नहीं बनता।

यह गति अंदरूनी है, ऊपर कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता। हर रोज की तरह काम चल रहा है।

वह दिन आया, नये बड़े साहब पहुंचे। गोरे ऊंचे गबरू जावन, हंसमुख—मिस्टर शर्मा। बात, चाल-ढाल सबमें विदेशी कायदे। उनकी बड़ी-सी मोटर गाड़ी थी। शाम के पहले दफ्तर के सामने एक छोटे से उत्सव का आयोजन हुआ, पुराने की बिदाई और नये के स्वागत में। मान्यता और आसनविधि के अनुसार कुर्सियों पर पीछे खड़े सामने बैठे फोटो खिचवाएं। दोनों साहबों के गले में मोटी-मोटी फूल मालाएं···एक—दो—तीन—फोटोग्राफर ने क्लिक् किया—जिसमें स्मृति सजी संवरी रह गयी। उसके बाद फोटो की प्रतियां आयेंगी, फ्रेम में जड़ कर दीवारों पर टंग जायेंगी, फिर उन पर धुआं-सा जमेगा, धूल जमेगी, 'दीमक लगेंगे···कीड़े घर बनायेंगे।

भविष्य में कभी-कभार वही फोटो शायद अतीत की संपदा होगी, लोगों की भीड़ में से अपने को ढूंढ़ निकालते समय।

बस इतना ही।

फोटो के बाद दोनों साहबों के साथ चाय-पान का आयोजन। वहां भी मान्यता के अनुसार आसन में निकटता या दूरी की व्यवस्था।

दो-एक छोटी-छोटी वक्तृता, जिसमें वही दासता की भावनाएं— स्वर से वही कुंठा—।

एक परिच्छेद की समाप्ति हो जायेगी—पर व्यवच्छेद की नहीं।

सांकल वही है—कठिन···ठंडा—

युग आया—'श' गये, 'शर्मा' आये।

शुरू में कुछ दिन उसी युग की बंदना। आशा में जीना मनुष्य का स्वभाव है—आशंका में नहीं।

पहले बड़े बाबू ने शुरू किया—बसंत बाबू। राय उन्हीं की टेबल पर बनती है और धीरे-धीरे दफ्तर भर में बिखर जाती है।

"देखा तो" बड़ा बाबू फिसफिसा कर नुरु बाबू से कहने लगे, "अंधेरे पाख के बाद उजाला पाख आता है, यह सृष्टि का नियम है। ओह, कंस गया वसुधा का भार ही हल्का हो गया। क्यों?"

"ओह !, कैसा आदमी था वह ? इनसान नहीं, साक्षात् राक्षस् था राक्षस ! जब कभी बुलावा आता था, मैं तो पानी-पानी हो जाता था। बात कहता जैसे थप्पड़ मार रहा हो। वह बात तो बात-सी लगती नहीं थी, जैसे वज्रपात। कब

किस पर कूद पड़े । जो भी हो गया कम है ।"

"कम अपमान" बसंत बाबू बोले, "सिर्फ नौकरी की है इसलिए क्या करें सर ही बेच दिया है, सब कुछ सहना होगा। लेकिन ईश्वर बड़ा है, हर वक्त एक-सी अवस्था नहीं रहती, जब तक वह था, था, अब तो नहीं है। अब जो साहब हैं भद्रता ही से आदमी को खरीद लेते हैं। बेइज्जती और गाली के दिन अब नहीं रहे। अब आदमी चैन की सांस लेगा ।"

"आदमी बहुत बुरा था। जानवर। ये कितने-अच्छे हैं ।"

"ये और वह" बसंत बाबू बोले—"कहां रानी और कहां चंद्रा कानी। असल बात तो आदमी की जड़ में है। ये ठहरे खानदानी आदमी, अरे देखते नहीं कायदों से। नौकरी इनके लिए शौक है। ये बहुत बड़े आदमी हैं। घी दूध में पले हैं।"

"इनके दांतों को कुरेदने से जो निकलेगा उसे उसने जिंदगी भर देखा नहीं होगा।" नुरु बाबू ने बताया।

"बड़े आदमी का तो चेहरे से ही पता चलता है। कैसा चेहरा, कैसी बात। एक बार देख ले तो आदमी बस में हो जाये। योग्यता भी वैसी है। पढ़े-लिखे भी काफी हैं, नहीं तो क्या इतनी कम उम्र में इतना बड़ा भार संभाल सकते हैं !"··· नहीं, इस समाज मे 'श' के लिए कोई जगह नहीं है। जैसे कि कुछ सड़ा गला हटाने पर सिर्फ उसकी दुर्गंध रह जाती है उसी प्रकार की आलोचना चल रही है। कुछ देर के बाद वह आलोचना भी नहीं रहेगी। कोई उसका नाम तक नहीं लेगा।

अब शर्मा हैं।

हरि बाबू श्याम बाबू से कहते हैं—

"नये साहब कितने बुद्धिमान हैं पता है ! वह गदहा था, रात-दिन एक करके भी फाइलें खतम नहीं होती थीं। इनके स्पर्श करते ही काम समाप्त। दफ्तर भर में यही चर्चा है। फाइल गयी नहीं कि वापस आयी ठायं से। जैसे बिजली। इसे कहते हैं 'ग्राफ'। कुछ ऐसे आदमी होते हैं जिन्हें समझाते रहो पर दिमाग में कुछ भी नहीं बैठता और कुछ ऐसे हैं कि मुंह से बात निकली भी नहीं और वे समझ जायेंगे कि तुम क्या चाहते हो।"

"वैसा ही जान पड़ता है"—श्याम बाबू ने हामी भरी। "कल इनका टेनिस खेलना देख रहा था। हंस-हंस कर सभी को हरा रहे थे। कैसे मास्टर्ली स्ट्रोक्स।"

बलिदत्त ने भी सरोजिनी को बताया था—"समझी सरोज। हमारे जो नये

साहब आये हैं—देखतीं तुम उन्हें। इतनी कम उम्र में ही काम के कितने जानकार हैं—बेहद अच्छे, सज्जन आदमी। उन जैसे बहुत कम होंगे जो ये काम भी जानते हैं और दूसरों के दिल को भी पहचानते हैं।"

"सच।" सरोजिनी दिल्लगी करती सी बोली, "एक बार घर क्यों नहीं बुलाते।—क्या नुकसान है बुलाने में।"

"अरे तुम दिल्लगी समझती हो। इतने सीधे-सादे हैं कि बुलाने से आ जायेंगे। तुम क्या समझ रही हो मैं झूठ बोल रहा हूं। वे बहुत मिलनसार हैं। बीच रास्ते में लोगों को रोक कर सुख-दुख पूछते हैं। इतने कम दिनों में ही लोग उन्हें इतना चाहने लगे—इतना चाहने लगे हैं कि···। वास्तव में ऐसी नौकरी में ही सुख है।"

"ठीक हुआ। काफी तकलीफ झेली, अब आराम करो। अरे हर्षा! आकर जरा बाबू के पैर दबा दे।"

बिछौने पर पड़े-पड़े बलिदत्त दास सुख का सपना देख रहा था। वह सुखी है। उसका भविष्य उज्जवल है। कल की ही बात तो है, वह काफी आगे बढ़ गया है। उस पर नये साहब, उनका मीठा व्यवहार, वह भी आशा दिलाता है।

सोचते हुए वह अपनी भावनाओं को निखार रहा था। नौकरी करने वाला क्या चाहता है? सिर्फ आर्थिक उन्नति? आर्थिक उन्नति ही महत्वपूर्ण है, नहीं तो वह नौकरी क्यों करता। कठोर कर्त्तव्यों का पालन कर सत्य-व्रत की ध्वज फहराने के लिए बलिदत्त दास ने अपनी इनसानियत को फंदे में नहीं बांध रखा है। उसके लिए ही उम्र नहीं गंवा रहा है। यह मनुष्य जन्म दुर्लभ है। वह मूर्ख नहीं है, पथच्युत नहीं है।

अर्थागम के साथ-साथ क्षमता भी बढ़ती जाती, सब के देखते-देखते वह आगे बढ़ जाता···मुंह खोले सब आश्चर्यचकित से रह जाते हैं और वह बार-बार उन्नति पाकर अपनी क्षमता और दक्षता को प्रमाणित करता जाता है।

इस पर ऊपर वाले का मधुर व्यवहार, विश्वास, सम्मान···जिससे आशंका-शून्य, आतंक-शून्य, बेपरवाह स्थिति आ जाती है।

बलिदत्त लेटा हुआ है। हर्षा पैर दबा रहा है। यही उसका शाम का अलसाया आनंद है।

बलिदत्त की चेतना में अनुभूति की चिंदियां घुलमिल रही थीं। अपने सुख तौलते-तौलते दूसरों का दुख दिख जाता था। उन्हें काफी देख चुका है वह। उसके

अतीत और वर्तमान के बीच निराश, हताश, दुखी, दुस्थ सब परतों में बिछे पड़े हैं। आंखें मूंदने से जैसे उन्हीं के स्वर सुनायी पड़ते हैं। वे खट रहे हैं, मेहनत कर रहे हैं, उन्हें कुछ मिला नहीं। कई हैं जो कमर झुका कर काम करते जा रहे हैं, आजीवन, आस लगाये बैठे हैं कि उसी काम से भविष्य पैदा होगा। उसी के लिए योजनाएं बनाने के लिए चाल चलने की उन्हें फुरसत नहीं है। घर में वही बांस की अलगनी, आसन, चटाई, खाने के लिए वही मोटा चावल, वही अभाव, तनख्वाह महीने की पांच तारीख तक भी नहीं चलती, उसके बाद कर्ज-उधार। वही फर-फर उड़ते सर के सूखे बाल, पहनने को वही फटा पुराना। आंख मुंदे तो कल कुछ भी नहीं, नौकरी ताड़ की छाया होती है। वैसे भी हैं जिन्हें लाख चाल चलने के बावजूद कुछ भी नहीं मिला है। आंखों के सामने अनेक वैसे उदाहरण हैं। हैजे में सोमाया पट्टनायक मर गया। घर को क्लब जैसा सजाया था उसने। घर में चौकड़ी जमी रहती। सबको खिलाता पिलाता रहता। कंपनी के बड़े दफ्तर से कोई भी आता तो उसके साथ जोंक की तरह चिपक जाता था—पान, चाय, नाश्ता सब कुछ कराता था। अकेले में मिलते कहता···पूछता—"मेरे बारे में बात हो रही थी ? कुछ पूछा था ? कब हो रहा है मेरा प्रमोशन ! कोई कुछ कहता था क्या मेरे बारे में ? मेरा नाम गया है ?"···आदि आदि आंखों के आगे बूढ़े सोमाया पट्टनायक का चेहरा तैर जाता है। पतला, छोटे-छोटे हाथ पांव, दुबला चेहरा। जवानी में सिले कोट-पतलून उसके शरीर को धोबी की अलगनी में टंगी पोशाकों की तरह ढंके रहते थे। घर पर दूसरी ब्याही बीवी थी। कुम्हड़े की तरह आदमी—हर वक्त सजा-संवरा रहता था। सोमाया पट्टनायक के साथ दोस्ती करके उसकी आशाओं को अधिक तेज करने के लिए कई लोग उसके यहां आते थे और सहानुभूति जताते थे। उसके साथ संबंध बनाये रखना लाभदायक रहता। इसलिए लोग उसके साथ धर्म संबंध तक बनाते थे। बड़े दिन के त्यौहार में बड़े साहबों के यहां सोमाया पट्टनायक डाली भेजता था, माल-पानी जुटाता था—सब बातों में हां भरता था सोमाया पट्टनायक। उसके जीर्ण शरीर को हैजे ने समाप्त कर दिया। आशा के टिमटिमाते उसके दुर्दशाग्रस्त जीवन को अब शायद शांति मिली होगी, वही उसके केस का डिसपोजल था। कल्पित आतंक से कांप उठता है बलिदत्त।

सोमाया पट्टनायक चला गया है।

और सोमाया की पत्नी—वह भी उसकी सफलता के हथियारों में से एक थी। कैसी हो गयी उसकी अवस्था ! अब वह कहां होगी। जिन्होंने उसके हाथों का खाया है कितने दिन याद रखेंगे उसे।

बलिदत्त ने पुकारा—"सरोज, सरोज।"

"क्या बात है ?"

"नहीं, कुछ नहीं।"

टूटी आशा सी हाड़ चाम की ठठरी। धूमिल आंखें। वह आग जलेगी नहीं, धुआं उठा-उठा कर मर जायेगी। भीतर से खाली आदमी—खोखला। खाली घड़ा कभी भरेगा नहीं। टूटी हंडी जुड़ेगी नहीं। अपनी चेतना की नदी के स्रोत में उठते-डूबते बहते आ रही हैं हंडियां, गगरिया—बहती आ रही है, एक के बाद एक, एक के बाद एक। बहते आ रहे हैं वर्षा के जल के साथ, कीचड़ की तरह। उनके कुत्सित, वीभत्सस्मरण से ही रोम-रोम सिहर जाते हैं। ऊबड़-खाबड़ घायल रोगों का जुलूस।

एंकट राव, बनु—क्या करते होंगे वे। रुपये का डेढ़ सेर चावल खरीदते होंगे? कितनी दूर है उनकी सफलता ?

अब शाम हो आयी। बनु बैठे-बैठे बीड़ी खींच रहा होगा···अवस्था के प्रति पागल उदासीन बनु। कोई किताब पढ़ रहा होगा। इस अंधकार में बनु की छोटी-सी कोठरी में लाइट जल रही होगी।

लाइट जल रही होगी।

उसका कुछ नहीं है फिर भी वह सुख को गलतफहमी पालता है। पेड़ के नीचे धूनी जलाकर, शरीर पर राख मलकर साधु भी सुख की गलतफहमी में रहता है, भिखारी और मूर्ख भी ऐसा ही समझते हैं।

"अरे हर्षा, जरा और जोर से।"

अभाव के रहते क्या कोई सुख पाता है ? बार-बार कलई करवाना, कलई घिस जाय तो फिर कलई—कपड़ा फट जाये तो उस पर एक परत और।

वर्षा की धारा की तरह बलिदत्त दास के मस्तिष्क पर जीवन की कहानियां झर रही हैं। उनमें कांट-छांट कुछ भी नहीं हैं, साज सजावट भी नहीं है। सब बरस रही हैं। अपनी अभिज्ञता से परख कर उसके नापने का पैमाना बनी है, जिससे वह नापता चला है। मूर्ख है बनु खाली पेट ही हंसकर डकार लेता है।

पर जिनके पास बहुत कुछ है, जिन्होंने बहुत कमाया है या संचित कर लिया है उनमें से भी कई अपने को अभावग्रस्त समझते हैं। राय साहब, मझला साहब, उन्हें रात को नींद नहीं आती, इनसोम्निआ है। सारी रात बरामदे में आराम कुर्सी पर बैठे-बैठे छटपटाते रहते हैं। भरापूरा मुख मुरझा जाता है। उस दिन शाम को बलिदत्त का हाथ पकड़ कर चलते हुए वे अपना दुखड़ा रो रहे थे। कम दुखी हैं वे ! महीने में तेरह सौ रुपये तनख्वाह मिलती है। इनकमटैक्स कटता है। काफी रुपया बीमे की किश्त में चला जाता है। बड़ी मोटर की देखभाल में दो सौ तक लग जाता है। एक बंगला बना रहे हैं; उस पर काफी खर्च हो रहा है। उस पर घर के खर्चे कहां से आयेंगे। गहरी सांस लेकर कहते हैं··· खुला ही खुला सब ओर। सिर्फ वही दरिद्रता के पंचाक्षर 'कैसे करूंगा'। उस पर अपमान है नौकरी में। उनके साथ काम शुरू करके भी मीर मदन खान खान बहादुर बन गया है, और उनके भाग्य में अभी तक बहादुर की पदवी भी नहीं आयी। मीर मदन खान बड़े साहब के दफ्तर में आफिसिएट करने लगे हैं। वे जहां के तहां हैं। इससे रात को नींद आ सकती है क्या ? पशु ही खर्राटे भर सकता है, इंसान क्या यह सब भूल जायेगा।

मझले साहब अपने को काफी दुखी मानते हैं।

उन्हीं के मुंह से दुख का वर्णन सुनकर बलिदत्त को लगा कि वह मैदान के बीचों-बीच बैठकर रोने लगे।

ओह, वह इतना दुखी है। परंतु हंस सकता है, अविचलित होकर संटु दा की तकरीर सुन सकता है, सुखी होना भी मूर्खता है।

उसे कुछ मिला नहीं है। अब मिलेगा। वह तरक्की पायेगा।

अगर भाग जागे तो।

नये साहब को खुश किया जा सका तब।

धीरे-धीरे हर्षा चला गया। बाबू सो गये हैं। 'खाना लाऊं' सरोजिनी पूछने आयी। देखा बलिदत्त सो गया है। एक ताल से छाती उठ-गिर रही है जोर-जोर से खर्राटे भर रहा है।

उसकी बांह पकड़ जोर से हिलाकर जगाते हुए कहने लगी—उठो···खाना नहीं खाओगे।"

तरुण मिस्टर शर्मा थे भी श्रद्धा के योग्य। क्योंकि वे आदमी थे। सिर्फ आदमी नहीं, आदमी में तरुणता।

मन की जवानी और तन की जवानी में जो सहसंबंध बनाये रखता है उसके लिए जीवन संपत्ति बन जाता है। आंखों पर पर्दे नहीं, न मन पर किसी प्रकार का खोल। न है घाव के निशान, इंद्रिय सतेज हैं —देने को लेने को। वह पत्थर के ढेर पर अंकुरित सरस पेड़ है। वही उसका गर्व है, गौरव है।

उनमें अपने लिए शुरू से यही धारणा थी। अपनी बगैर इच्छा कोशिश बगैर परिश्रम के किसी बड़े घर के लाड़ले बनकर पैदा हुए—जमीन पर पड़े तिनके को कैसे दो करते हैं वह भी उन्हें पता नहीं था या जानने की जरूरत भी नहीं हुई। वे खुद कुछ करें यह तो दूर की बात थी।

उसके बाद, जीवन भी अपने आप सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़ता गया। उसके लिए न कभी उन्होंने कोशिश की न इच्छा। बगैर हील-हुज्जत के उन्होंने विधि के विधान को अपना लिया है और देखा, वह मंगलमय है। सबका उद्देश्य वही एक है—आनंद।

जन्म से ही उन्हें साहब होना पड़ा। जिस घर में उनका जन्म हुआ वहां पिता को डैडी और मां को मम्मी कहते हैं। बैठना, उठना, खाना, पहनना सब में उस घर की अलग संस्कृति है। इस संस्कृति को अपना लेने के बाद कोई पूछने वाला नहीं है, न घर पर, न साहब लोगों के स्कूल पर। इसलिए बचपन से पहले शिक्षा संस्कृति को मानना पड़ेगा। आंख-कान मूंदकर; इसी का नाम डिसिप्लिन है, इतना कर लेने के बाद जो कुछ भी कर लो। चाल में संस्कार-प्रियता, चलने में स्वेच्छाचार; इसी का संस्कृत नाम है व्यक्तिवाद। बाहर से डिसिप्लिन के नाम पर अपनी इच्छा का जीवन याने उनकी मार्जित भाषा में 'व्यक्तित्व का विकास'।

ये दोनों ही कार्य उनके लिए अपने आप हुए हैं। अर्थाभाव ने कभी उनके जीवन के सुसज्जित आवरण को ठोकर नहीं मारी। इसलिए वे अपने आप ही उन्नति के मार्ग पर बढ़े हैं।

ऊंची शिक्षा, वह भी अनायास मिली है— संस्कृति के अंतर्गत। उनमें ज्ञान-पिपासा थी या नहीं, उस पर सोचने का कष्ट उन्होंने कभी नहीं उठाया। उच्च शिक्षा उनके समाज का फैशन है जिसके अनुसार उन्हें चलना पड़ता है। इसलिए उस पढ़ायी का कोई मतलब नहीं था। समाज का चलन अगर वैसा न होता तो

शायद उन्हें पढ़ना ही नहीं पड़ता। उस उच्च शिक्षा का चेहरा और गठन पहनने के कपड़ों की तरह है, मां-बाप वैसा ही चाहते हैं, जैसा समाज चाहता है।

नौकरी, वह भी अनायास ही मिली। उन्होंने अभी इसके बारे में सोचा भी नहीं था कि नौकरी मिल गयी। पिताजी चाहते हैं; कंपनी के ऊपरी स्तर पर उनकी अखंड क्षमता है। पिताजी ने कहा कि नौकरी करो, उस पर समाज में यह भी देखना पड़ता है। आप क्या हैं? इसलिए नौकरी की उन्होंने—शुरू ही में पिताजी की एक बात—बस !

कंपनी के नियम पालन करने के लिए डिसिप्लिन के सूत्रों की सार्थकता के लिए सजधज कर पहुंचना पड़ा था, इंटरव्यू में। वहां पांच विद्वान बैठे थे। उन्होंने उन्हें सर से पैर तक देखा, कुछ सवाल किये, कागज पर नंबर दिये। हो सकता है प्रश्न उतने जटिल न हों, नितांत प्रारंभिक कक्षा के छात्र तक उसे हल कर दें—जैसे भूगोल से— 'छह ऋतु कैसे होती हैं।' इतिहास से "पृथ्वीराज क्यों हारे ?' विज्ञान से—'बिजली से बल्ब किस तरह जलता है।' 'नल से पानी कैसे आता है'—स्वास्थ्य रक्षा से 'मक्खी के कारण कौन-कौन से रोग होते हैं।' साहित्य से 'इकबाल किस तरह के कवि हैं ?'— अखबार से जूट के भाव क्यों बढ़े—आदि—

सवाल आसान थे, पर पिताजी से पूछने पर उन्होंने गंभीर होकर सिर हिलाया और बोले—"उन्होंने बुद्धि की परीक्षा की है, सायकोलाजिकल टेस्ट—उसे इतना आसान मत समझना।" आत्मविश्वास काफी लौट आया उसमें, यद्यपि मन की आड़ में कुछ-कुछ संदेह था कि यह एक दिल्लगी है, फार्स है।

कंपनी के इस इंटरव्यू में एक के बाद एक कई उम्मीदवार आये; विश्वविद्यालय के दिग्गज पंडित, फर्स्ट—फर्स्ट क्लास फर्स्ट—शुरू से आखिर तक फर्स्ट। वे गिर गये। शर्मा ने उनकी पराजय के कारणों की आवृत्ति की। —सायकोलाजिकल टेस्ट। किताब कंठस्थ करके रटने से काम नहीं चलता। इंटरव्यू बोर्ड आंखों को देखकर सवालों के जवाब निचोड़ लेता है। उसी से परीक्षा देने वालों का दिल, समूचे मन का रूप निखर आता है।

यह विश्वास दृढ़ीभूत हुआ था पांडे की पराजय से। पांडे शुरू से आखिर तक शर्मा के साथ पढ़ता था। पढ़ायी में बहुत तेज, अध्यापकों की आंखों का तारा। प्रभावशाली वक्ता, सशक्त लेखक होते हुए भी पांडे गरीब था। परिस्थिति और परिवेश में जुझारू। पांडे शर्मा के ठीक उलटा था। उसकी युक्ति भी उलटी थी।

वह कहता है, "संघर्ष में मानव की परख होती है। निर्यातन से बुद्धि आती है। सुस्थि से विनाश होता है।" उस समय शर्मा हंसते हुए कहते, "जो पेड़ कंकरीली मिट्टी में पनपता है वह सिर्फ जीवन को अभावों के साथ जीता है। उसकी ऊबड़-खाबड़ टेढ़ी-मेढ़ी बनावट में गौरव पाने के लिए कुछ भी नहीं होता। उसके जकड़े रहने में कोई महत्व नहीं है। प्राकृतिक नियमों का उदाहरण। —उसी नियम के सूत्र से जानवर हर परिस्थिति को अपना लेता है। "पांडे कहता है— "जीवन को उग्रभाव से देखना होगा, तीक्ष्ण बोध-शक्ति से अनुभव करना होगा। सब बातों का कठोर विश्लेषण चाहिए।" शर्मा हंसते हैं—"ये अस्वस्थ मन के लक्षण हैं। अस्वस्थ मन व्यक्ति को एकतरफा, पागल, असहिष्णु बनाता है। स्वस्थ व्यक्ति के लिए उपादेय है मलाई खाना, स्रोत के ऊपरी सतह पर तैर जाना, सहज, सरलता के साथ जीवनसे मिलना, किसी भी बात को महत्व न देना···"

उस इंटरव्यू में पांडे चित हो गया—शर्मा ने अपने लिए साइकोलोजिकल टेस्ट की यथार्थता के बारे में कहा। पांडे के कई कंप्लेक्स नजर आये। वह जाये, करे —राजनीति, आंदोलन, विद्रोह, वह सुस्थ जीव नहीं है।

मन की गहराई में फिर भी एक छोटी सी बात उठ रही थी—अगर पांडे का भी वैसा एक बाप होता।—

पर आत्मविश्वास से वह बात भी छिप गयी। मन में यह विश्वास दृढ़ हो गया कि दुनिया में प्रभुत्व सबके लिए नहीं है। उसके लिए थोड़े से गिने चुने लोग हैं। थोड़े पालकी पर सवार होंगे। जिसके योग्य वे हैं और बाकियों को उस पालकी को उठा कर चलना है।

विधि का विधान है। जो विद्रोह करता है वह सिर्फ मूर्ख ही नहीं, बेलगाम, विद्रोही, असमाजिक भी है, समाज के लिए वह आफत है।

शर्मा की धारणा एकदम साफ; वह भी उसी की विशिष्टता है। वह समाज का गौरव है जो जोर देकर कह सकता है कि अभिज्ञता से धारणाएं जनमती हैं। राय बनती है। एक बार बन जाये तो बनी रहती है। इस राय का अक्षत रहना ही समाज की मजबूत नींव है, बुनियाद है···सब कुछ है। और जब इन्हीं धारणाओं को बदलने की चेष्टाएं होती हैं तब ह्वांगहो नदी की गति बदलने की तरह उलटा फल मिलता है—ध्वंस।

कालेज में शर्मा पांडे से कहते—"क्या तुम ज्यादा स्वाधीनता चाहते हो? हमारे,

सामाजिक गठन में क्या स्वाधीनता की कमी है ? निहायत अतिवादी बने बिना और पागलपन छोड़कर यदि तुम स्वस्थ दृष्टि से आंखें घुमाओ तो देखोगे लोगों के हाथों में हथकड़ियां नहीं हैं, जंजीर नहीं हैं, मुंह पर ताला नहीं झूल रहा, सोचने को कोई मनाही नहीं है या इंजेक्शन देकर सोचने समझने की शक्ति को दबाकर नहीं रखा गया है। सुख-दुख के साथ घर गृहस्थी करके मौज करने की सब को खुली छूट है। तुम भर पेट खा सकते हो, कोई छीनेगा नहीं। तुम अपनी इच्छा से लव-रोमांस कर सकते हो तुम्हे कोई नहीं रोकेगा। या पीटने नहीं दौड़ेगा। तुम बेझिझक कमा सकते हो, पैसा जमा कर रख सकते हो, किसी भी धंधे पर पूंजी लगा सकते हो। कानून की शृंखलाओं को मानकर देश को मजबूत बना सकते हो, ताकतवर बन सकते हो जिससे दुश्मन चौंक जाएंगे। राष्ट्र ने तुम्हें स्वच्छंदता दी है। अधिक अधिकार चाहते हो तो कमर कसकर काम करो। दायित्वों से दूर रहकर पत्तल बिछते समय आकर मेरा तेरा कहने से काम नहीं चलेगा। तुम प्रकृतिस्थ बनो, देखोगे सब ठीक हो जाएगा। 'गॉड इज इन हिज हेवन। आल्स राइट विद द वर्ल्ड" सिर्फ आज नहीं 'ऑल वाज राइट विद द वर्ल्ड'। आदमी दुख सिर्फ अपने कारण पाता है। खुर्दबीन लाकर अगर पहने हुए कपड़े देखने की इच्छा है तो सिर्फ छेद ही देखोगे। इसमें दोष किसका है ? तुम कहते हो बड़े छोटे का भेद क्यों है ? पर तुम इसे कैसे दूर करोगे ? जीव-जगत, वृक्ष-जगत, पत्थर, आकाश, जहां देखो असमता है। उस पर ऊंचा नीचा न हो तो फल होगा भुखमरी। पानी अपना समतल ढूंढ़ता है इसलिए ऊंचा-नीचा रहने पर गति रहती है, नहीं तो गति खत्म हो जाती है। तुम कहते हो संसार म काफी कष्ट है। वह तो है ही। जिसने गढ़ा है वही कारण जानता है। दुख न हो तो सुख को समझना कठिन है, अमावस न हो तो पूनम को समझना आसान नहीं है। इसी पर हिंदू दर्शन शास्त्र की नीव पड़ी है। यह युगों की अभिज्ञता है। "यह आज का पागलपना नहीं है।"

पांडे ने भी जवाब में कुछ कहा था। "यह सुस्थिवाद के बंधे हुए कायदे हैं, बुद्धि-जीवियों के नहीं।" और क्या कहा था याद नहीं है। अप्रिय बात को बुद्धिमान याद नहीं रखते।

संसार सुख के लिए है, अप्रिय बात के लिए नहीं।

पांडे हार गया है। हारता जरूर। पागल अपने खयालों को दुनिया के जहन में भरकर चाहे जितना मस्त रहे—दुनिया अपने आप चिल्लाती रहती है 'यह पागल

है—पागल, 'बारंबार उसे वही जताती रहेगी। पांडे की भी वही दशा होगी। वह अपने आदर्शों के झंडे उठाकर लंगोटी कस भूखा रहकर अपना आभिजात्य बनाये रखना चाहता है। राह चलते—चलती कार सामने आ जाये तो उसके आभिजात्य की परीक्षा हो जाती है। जब पांडे कीचड़ के छींटों से बचने के लिए कपड़े उठाकर सड़क के किनारे की ओर लपक जाता है। उसी 'आभिजात्य' को जिंदा रखने के लिए उसे बहुत कुछ करना होगा। शायद वह करेगा भी। छाती दिखाकर, पीठ दिखाकर, लाठियों की मार खाकर वह अपना वीरत्व दिखायेगा। बाद में उसका बल टूट जायेगा, अपनी जवानी का जोर टूटेगा, मन की ताकत भी नहीं रहेगी। वह अपनी टूटी हड्डियों के अंदर जीवित तो रहेगा, पर ज्यादा दिन नहीं, उसके लिए इस दुनिया में जगह नहीं है, जैसे इस समाज में उसके आदर्शों के लिए जगह नहीं है।

ऐसे हैं मि. शर्मा, वे अपने विचार के पक्के हैं, वे सुस्थ हैं।

अपना विश्लेषण कर वे सोचते हैं कि मन की इस सुस्थता को कायम रखने के लिए दो चीजों की आवश्यकता है—कामनसेंस अर्थात् परिस्थिति के प्रति जागरूक रहकर कार्य करना और दूसरों के प्रति उदारता—यह है अपनी साध्यता के अंदर दूसरों का सहन करना, सहानुभूति—मोटे तौर पर इसे साधारण दया कहा जा सकता है।

और ये सारे गुण उनमें हैं। इसलिए वे भिखमंगे को भीख देते हैं। दातव्य कार्यों में कुछ न कुछ देते रहते हैं, अपने कामनसेंस के अंदर वह सहनीय हो तो। दूसरों का दुख-दर्द देख सहानुभूति दिखाते हैं, इतना करके अनुभव करते हैं कि उन्होंने अपना कर्त्तव्य निभा दिया है। हर वक्त हंसमुख, खुश मिजाज रहते हैं—चिंताहीन।

अपना कर्तव्य।

क्या है उसकी संज्ञा ?

पांडे कहता है, उसके दल के अन्य अभागों का कहना है—कर्त्तव्य मुंह से सहानुभूति प्रदर्शित करना नहीं है। समाज के कुछ छोटे-मोटे अभावों को दूर कर देना भी कर्त्तव्य नहीं होता, भिखमगे को भीख, दुखी को सांत्वना, ये सब समाज के कई घावों में से किसी एक के किनारे मलहम लगाने की तरह है। इससे घाव ठीक नहीं हो जायेगा या फैलना बंद नहीं होगा। समाज की सारी बीमारियों को दवा चाहिए, यह सामयिक दया सिर्फ व्यक्ति के व्यक्तित्व का अपमान है, दुखमय

को न टालकर अपने को और दूसरों को ठगना ही है।

यही कहकर तो वे एकतरफा, पागल, अतिवादी कहलाते हैं।

शर्मा हंसते हैं। सोचते हैं, ऐसे कितने हैं जो सुख के मोह को टाल सकते हैं। नरम सेज, निश्चित दिमाग, गर्म चाय, गर्म-गर्म, सिगरेट, बाहर निकलो तो सलाम पर सलाम, अपने ही खास खयालों की जिंदगी, कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं···

नारी

शर्मा हंसते हैं।

आदमी की प्रवृत्तियां सिर्फ सुख के लिए हैं। नहीं होतीं, तो कच्चा खाने वाला, नंगा गुफाओं का आदमी धीरे-धीरे 'सभ्यता' बनाकर साठ तल्ला महल बनाकर रहता ! और पांडे खुद, अगर इतने अडिग हैं अपने आदर्शों में, तो, क्यों गये थे नौकरी के इंटरव्यू में ? शर्मा हंसते हैं—लोग हंगर स्ट्राइक करते हैं, पर छिपाकर डबलरोटी और मक्खन खाते हैं। जरूर खाते होंगे—मानना पड़ेगा कि खाते होंगे। क्योंकि आदमी सुख की ओर ही बढ़ता है।

इसलिए जन कल्याण, मोक्ष आदि के बारे में मोचकर क्या लाभ होगा ? इसके लिए रामचंद्र से लेकर बुद्ध और गांधी तक ने चेष्टा की थी। वे अतिमानव हैं; 'एक्सेप्सन,-एक्सप्सन प्रूव्स द रूल' नीतियों में उन्होंने और उनकी तात्कालिक अवस्था ने प्रमाणित किया है कि आदमी सुख चाहता है, सुख के अलावा और कुछ नहीं चाहता। आदमी चाहता है कि अपनी सीमा के अंदर वह घूमे-फिरे, उसे जाग्रत वर्तमान चाहिए। वह हंसी-मजाक चाहता है, खेल, आनंद चाहता है। उसी आनंद में मस्त रहकर वह समाज ढूंढ़ता है, भेड़ों के गोठ, डिसिप्लिन और कोई उसकी निगरानी करनेवाला। पांडे—आदि जो, अन्यथा सोचते हैं उनके दिमाग के पुर्जे ढीले हैं, बस, और अधिक जानने की जरूरत नहीं है।

इसलिए शर्मा कंपनी के बड़े-बड़े कामों के लिए सही शासक हैं।

लोहा परख कर पानी चढ़ाते हैं।

विवेक का 'क्यों,' 'या' कुछ भी नहीं है।

आवश्यकता आयी ? तो मारो, काटो, लाठी चलाओ···वहां कठोर कर्तव्य है। जब भी सोचो अंतर्दृष्टि उन्हीं दो शब्दों पर स्थिर रह जायेगी 'कठोर कर्तव्य।' वह अगर नहीं है। तो लाओ चाय, सिगरेट, बैठो···'हाउ डू यू डू'। वहां और दो शब्दों का लेबल है 'सामाजिक कर्त्तव्य'। किताबों में है कि आदमी एक

'सामाजिक जानवर' है। मान लीजिये काम करते-करते कोई भूल हो गयी, जिससे किसी को कष्ट हुआ। उस बात को सिर्फ तर्क से नहीं संभाला जा सकता, कुछ तो जरूर कहना होगा माफ करें। उसके लिए भी शास्त्रीय सूत्र है—'भूल करना आदमी का स्वभाव है'। महजात स्वभाव के लिए अनुताप या अनुशोचना से क्या लाभ? शास्त्र कहता है—'गतस्य शोचना नास्ति'। बस उसके बाद पूर्ण विराम। अपनी भूल के लिए चाबुक से खुद अपने को मध्ययुगीन साधु पीटते थे। शरीर को कई पीड़ाएं देते थे। उपवास करते थे। वह तो मूर्खता है। वरन…

"क्षमा कीजिये।"

"प्लीज एक्सक्यूज मी।"

"आइ एम सॉरी।"—वैसा ही—कुछ—

'फारवर्ड आउट लुक्'—अग्रगामी दृष्टि—निहायत संस्कृति मार्जित रुचि, साहबी मन—

पहले से चाहिए—

जन्म से, कर्म से और चिंता से भी साहब।

शर्मा सतेज हैं, सुंदर, प्रफुल्ल, तरुण, सुंदर स्वास्थ्य वाले, मन भी उनका बीमार नहीं है।

अत: बेधड़क मन से आनंद और सुख आमोद की तलाश में पूर्ण उत्साह से लग जाते हैं। जिसके लिए जीवन ने ही उन्हें मौका दिया है। शर्मा बगीचे में यतन से बढ़ने वाले क्रोटन की तरह है। उस पेड़ के जड़ चारों ओर से गमले की कड़ी दीवार से मिलते हैं, फिर भी पैदाइशी आदत है जिससे उसे सीमाबद्धत्व नहीं सताता। एक है जो पुरानी जड़ों को काट फेंकता है, पुरानी मिट्टी फेंक नयी डालता है, पानी देता है, और उसे तराश कर सजाता है। उस सेवा के लिए किसी के मन में कुंठा नहीं है, सोचता नहीं है, सोचने की आवश्यकता तक नहीं है। सब कुछ अपने आप हो जाता है, क्योंकि उसे होना ही है। सतेज, सरस, सुंदर गमले के 'प्रिंस ऑव वेल्स' क्रोटन टेढ़ी-मेढ़ी लहरों में बलखाता लंबे-लंबे पत्ते पसारता नीचे की घास, टमाटर और बैंगन के पौधों पर अपनी श्रेष्ठता दर्शाता है। वह सब्जी का पौधा या सुगंधित फूल का पौधा नहीं फिर भी उसे मान मिलता है और वह सजा संवरा रहता है क्योंकि वह बड़ा है, बगीचे के समाज में उसका आसन ऊंचा है, मिट्टी में पड़ के दब जाने पर कोई है जो उसकी व्यवस्था कर देगा, गमला

हटायेगा—आड़े तिरछे काटकर सजा देगा; चाहे उसका नाम कुछ भी हो, बगीचे का माली या समाज का बाप, श्वशुर या बंधु···। वह समाज की दृष्टि है, जब तक है तब तक बगीचा है, समाज है भगवान है, और दुनिया भी चलती रही है अच्छी तरह।

इसलिए उस 'होने के भाव' को अक्षत रखना उसका धर्म है और उस धर्म की संस्थापना के लिए लड़ाई करना उसके लिए ईश्वर निहित कर्त्तव्य है।

सफेद चमड़े के गोरे आदमी सभ्य होकर इसी कर्त्तव्य का संपादन कर देश-विदेश में गये हैं—पीठ पर गोरे आदमियों के बोझ लादे। इसी बात को इस त्याग के महत्व के कवि किपलिंग ने समझा। सभ्य देश ने उनके हृदय को समझ कर सम्मानित किया। सफेद आदमियों का बोझ लादे उन्होंने अंधेरे जंगलों में बत्ती जलायी, जंगल काटकर वहां संस्कृति की सफेद इमारतों से सजाया—अलसायी, नींद से बोझिल धरती, इस सस्कृति से बार-बार चेती, चौंकी. जम्हाई भरने लगी, अंगड़ाई ली, करवट बदली और उसके बाद उठकर नाचने लगी—युग का शिव तांडव।

इस धर्म के महत्व को प्रत्येक देश के भद्र और कुलीन जोरदार लोग संभाल रखे हैं, वे राज्य के सामंत लोग हैं। शर्मा उनमें से एक हैं इसलिए सम्मान के पात्र हैं।

बलिदत्त ने कहा, "श्याम बाबू, साहब कितना कल्चर्ड हैं। ताज्जुब है। फाइल लेकर कोठी पर गया था, अंदर बुलाकर बोले, 'बैठिये।' गंभीर बातें। हंस-मुख चेहरा। जरूरत पड़ने पर भीतर गये, कह गये—'कृपया जरा बैठिये, और इसी बीच घर भर में नजर घुमाइये, शायद आपको आमोद-प्रमोद की कोई चीज ही मिल जाय।' ओह, कितना मीठा व्यवहार, कितने नम्र, मेरा तो सिर झुक गया। शायद पैखाने गये थे। इतना विनयशील आदमी। सोचा, हुक्म मानना चाहिए, सारे कमरे में घूम-फिरकर देखा, क्या बताऊं, वहां तो स्वप्न लोक था। इतनी सारी इतनी मोटी-मोटी चमचमाती किताबें, इस जन्म में तो देखी नहीं। सारी

दीवार पर पेंटिंग्स, वे सब उच्चकोटि की, फिर, मैं उसमें क्या खाक समझता, शायद साहब चित्र भी आंकते हैं और सबसे आश्चर्य की जो चीज देखी वह है माटी की बनी बेशुमार मूर्त्तियां, वह तो एक प्रदर्शनी ही होगी। और कैसी हैं वे मूर्त्तियां ? उनमें हैं साधारण मैले-कुचैले आदमी, लकड़ी थामे कोई अंधा, झोली फैलाये कोई भिखारी, ओह कैसा हृदय है। क्या दिल है।"

श्याम बाबू ने एक गहरी सांस ली। बोले, "दानापानी की असुविधा न हो तो फिर आदमी शौक कर सकता है। मेरी इच्छा थी क्रिकेट में नाम कमाने की, एक बार आस्ट्रेलिया देखने की इच्छा थी, आप क्या झूठ समझते हैं ? काफी नाम था उस जमाने में मेरा। आपने अवश्य सुना होगा। वे दिन और आज के ये दिन। जमा नहीं कुछ भी। और अब तो बस कंपनी का काम।"

"हें ! हें ! —आप प्वाइंट मिस कर गये, याने असल जगह पर लड़खड़ा गये—"

"असल बात क्या ?" श्याम बाबू जम्हाई ले रहे हैं, "मैं नहीं समझता ये सब जटिल बातें। बलिदत्त बाबू, देखिये, जटिल बातें या लंबा लेक्चर सुनकर मेरा सिर दर्द करने लग जाता है। मेरा तो कहना है कि यदि खुशामद करनी है तो हमेशा, 'खुशामद कूडम्' अर्थात् कमर कसकर लगाओ तेल, दिखाओ भुजाओं की ताकत, और इस चें-पें से क्या मिलेगा बाबा ? हम उस नेपथ्य सैनिक के अर्द्धोक्ति हाहाकार में विश्वास नहीं करते, कहना है तो ऊंची आवाज में कहो हैल शर्मा—"

"अरे रे—आप तो उलटा समझ गये, यह खुशामद नहीं, बिलकुल सत्य है, साहब आर्टिस्ट हैं, साहब बहुत रसिक हैं।"

कानों में झनझनाहट होने लगी थी, गोपाल बाबू फाइल दबाये खड़े-खड़े प्रतीक्षा कर रहे थे। साहब आर्टिस्ट, हूं, लंका में हरिनाम !

क्या सचमुच, साहब आर्टिस्ट हैं ? वे समझेंगे ?

अतीत में जुड़े किवाड़ क्या खुल सकते हैं थोड़ी-बहुत कोशिश में भी। नहीं, कब्जों में तो जंग लग गया है, वे नहीं खुलते।

तन्मय होकर बलिदत्त के चेहरे को देख रहे हैं गोपाल बाबू, गोल चेहरे पर एक ओर का गाल झूल रहा है। पान दबा होने से उस ओर गुमटा सा उठा है, वह गाल स्थिर है। सिगरेट के पैकेट से एक खींचकर पैकेट को टेबल के दूसरी ओर

श्याम बाबू के पास फेंक कर दियासलाई हाथ में लिए बलिदत्त कहने लगा—"साहब को पेंटिंग की समझ है उनके घर में तो कई पेंटिंग्स टंगी पड़ी हैं। उतना ऊंचा मन न होने पर काम-काज के बीच आदमी इन सबमें नहीं फंसता। बेयरे ने क्या बताया जानते हैं ? साहब सितार बजाते हैं।"

सितार ! चाव हुआ गोपाल बाबू की छाती में। वह भी तो—

"चुप रह री सितार,—मीरा के हृदय की—"

सितार की बात कह कर मानो बलिदत्त ने विजय प्राप्त कर ली, इसी तरह गर्व से देखता है श्याम बाबू के चेहरे को। उसकी दृष्टि मानो कहती जा रही है,—इडियट, तुम क्या समझोगे। यह देखो। उधर से फक्-फक् सिगरेट का धुआं फेंक रहा हूं। देख रहा हूं।

श्याम बाबू का ध्यान सिगरेट के पैकेट पर छपे हुए अक्षरों पर लगा है। उलट-पलट कर बार-बार पढ़ रहे हैं उस पैकेट पर छपे अक्षरों को।

गोपाल बाबू सोच रहे हैं। बहुत दिन पहले की बात।

तब गोपाल बाबू पेंटिंग करते थे, सितार बजाते थे।

किसी ने सिखाया नहीं, 'आर्ट' पढ़ाई नहीं, फिर भी वे चित्र बनाते, बचपन में बैंगन, फूल आदि से लेकर घर का दृश्य, गांव, पोखर के किनारे बरगद की ओट में सांझ, मां के पास दौड़कर जाती बछड़ी, लड़ते हुए मेंढ़ें, रंग-रंग की आदमी की भंगिमा। धीरे-धीरे माडल खोज-खोजकर चित्र बनाना शुरू हुआ। अब भी बच्चों के जुल्म से बचे हुए कुछ चित्र शेष हैं। अपनी पत्नी की छवियां कई वेशों में। सज-धजकर, हाथ में पान लिए, हंस मुख चेहरा, लुंगी बांधे, फरफराते बाल, पनकी दबाये सब्जी काटते समय, फिर पानी ढालते समय। नीचे किसी किनारे अब भी खुदा है छोटे-छोटे अक्षरों में अपना नाम—गो. कृ. मि.।

और फिर आर्ट उजड़ गया।

आखिरी चित्र में चेष्टा की गयी थी स्त्री बेचारी गुस्से में गाली देती मुंह बाये बुहारी लिये एक बच्चे को पीटने जा रही है,—

बहुत दिन पहले, तब केवल चार ही बच्चे थे। खाली स्केच बने पड़े थे, उन्होंने घोषणा कर दी थी, "ऐसा हुआ तो मैं कनेर के बीज—"

उसी तरह दोनों वक्त सितार पकड़कर उस्ताद जी तक दौड़ता, वह दिन भी गये। आज मिला है एक साहब, यदि यह सचमुच ही आर्ट समझता है।

असल में जब वे कला की चर्चा कर रहे थे, चित्र बना रहे थे, सितार झनझना रहे थे, तब कभी उन्होंने यह इच्छा नहीं की कि लोग उन्हें जानें, उनकी प्रशंसा करें। तब साधना छिपी हुई नहीं थी। खाली अपना शौक, अपनी खुशी थी। साधना भी नशे की तरह होती है, उसमें कितना समय गया है उनका। दाढ़ी बनाने से लेकर बाजार के सौदे-सुल्फ तक कितने जरूरी काम भूलने पड़े हैं, त्याग करना पड़ा है, घरेलू नुकसान सहना पड़ा है। उस नुकसान का कोई हिसाब न था, क्लांत अवश देह आनंद के उन्माद में भर उठी थी, काम चल रहा था। मन ने कभी उसके लिए दूसरों से प्रशंसा की इच्छा नहीं की।

पर जबसे अभ्यास छूट गया है, सृजन शक्ति वंध्या सी होती गयी, अपने अंदर का कलाकार मर-खप गया है, कभी इच्छा होती है—काश कोई पारखी होता ! प्रशंसा करता।

पर दुनिया मूल नहीं देती। प्रतीक्षा में दिन पर दिन चले गये हैं, किसी ने आकर पूछा नहीं—"कलाकार पो. कृ. मि. कौन हैं ? अच्छी पेंटिंग करते थे।" इसके बाद वह प्रतीक्षा भी बुझती गयी। अचानक आज !—

पसीने में तरबतर बगल में फाइल दबाये खड़े हैं गोपाल बाबू। इच्छा हो रही है दो बात कह देते। इसी बीच रणजीत बाबू आ पहुंचे। "हो हो ! बैठिये-बैठिये।" "अच्छा, गोपाल बाबू, आप जरा ठहरकर आइये।"

"अरे, आप बैठे नहीं, हां, तो शर्मा साहब के बारे में बात चल रही थी।" रणजीत बाबू पाइप दबाये बांह उठाये खड़े हैं। शर्मा का नाम सुनकर आंखें चमक उठीं, चेहरे पर हंसी तैर आयी। खड़े-खड़े कहने लगे- -

"बड़े-बड़े लोगों के बारे में बातें क्या इस तरह एक ही बार में खत्म हो जाती हैं ?"

"नहीं, नहीं, सुना जाय—आपका मत,—" श्याम बाबू अड़ गये।

"मोस्ट स्पोर्टिंग शर्ट।" रणजीत बाबू ने कहा। इसके बाद कुर्सी पर बैठकर रणजीत बाबू ने लंबा कश खींचा। कुछ समय रणजीत बाबू को देख सब शर्मा साहब को चुपचाप याद करने लगे, फिर कीर्तन शुरू हुआ। रणजीत बाबू बोले,—"बहुत अजीब आदमी हैं वे। यही उनके साथ शिकार पर गया था, आज सुबह लौटा—"

बलिदत्त चिल्लाया—"सच !—" उसकी आंखों को पहले अजीब लगे रणजीत

बाबू, नये साहेब कदम डालते ही उनके साथ शिकार पर भी चले गये।

"शिकार !—" श्याम बाबू जोर से बोले,—"मुझे तो नहीं बताया ? मतलब —मेरे इलाके में जहां माईनिंग की व्यवस्था चल रही है, सुंदर जंगल हैं, काफी जंतु हैं, लोग भी अच्छे-अच्छे हैं हमारे हाथ में। आह, जरा कह देते तो—"

"आपके इलाके की ओर नहीं, साहेब गये थे चिड़ियों के शिकार पर। मिले कुछ जल सारस और हाथ आये कुछ स्नाइप। यही उद्देश्य था। पर असल उद्देश्य था खुली जगह में इधर-उधर तफरीह।—"

"क्या कहा ? क्या कहा ?—" सब कान लगाये हैं। रणजीत बाबू ने हंसते-हंसते उत्तर दिया,—"हां, उन्हें बिलकुल नजदीक से देखने का मौका मुझे जरूर मिला है। पर,—"

बलिदत्त और पास कुर्सी खींचते हुए धनुष की तरह मुड़कर तन गया है, श्याम बाबू उनके विशाल चेहरे को दोनों शक्तिशाली हथेलियों से सहारा दिये हैं, और सब घूम गये हैं।

धुआं फेंकते हुए रणजीत बाबू बोले,—"बहुत मिलनसार हैं। जी खोलकर बातें करते हैं। पर उन्हीं बातों में एक मन है, एक हृदय है जो अनमोल है। एकदम आधुनिक रुचि, चाहते हैं सब खेलें, क्लब करें, फुर्ती करें, मौज करें। इतने दिनों पर लाल फीते की सांकल ढीली करने और समाज के इस गंदे बोझ से चैन पाने के लिए एक आदमी जैसा आदमी मिला है। जानते हैं उनका प्रोग्राम क्या है ? बड़े से छोटे तक सबके घर से परिचय करेंगे। सबके घर मेहमान होंगे रात-रात भर। हो-हो-हो-हो।"

सब उसी हंसी की पारी लेते जा रहे हैं।

सभा टूटी।

कागज पर चरचर कलम चल पड़ी, साहब भले हैं, अच्छे आदमी हैं।

"रोज, सिगरेट पीओ न तुम भी—" मिलि ने बढ़ाकर पकड़ी, बोली—"तुम बदली हो जरूर, किंतु कई बातों में तुम एकदम पीछे रह गयी हो।"

कार चली जा रही थी, सरोजिनी मुस्करा कर बोली—"बोलो, तुम्हारे मुंह पर, ताला तो है नहीं। क्यों ?"

"हूं, वही तो कहोगी, तुम समझोगी नहीं 'वन थिंग लीड्स टू अनदर'—एक बात शुरू करने पर मन अपने आप लुढ़क जाता है, दूसरी बात की ओर। तुम सिगरेट पीती, देखती, फिर क्या होता है—"

"फिर क्या होता ? शायद दो पंख लग जाते, फुर्र से उड़ जाती, और क्या ?"

सरोजिनी खिलखिलाकर हस पड़ी। स्टीयरिंग पकड़े ड्राइवर भी हंस पड़ा। फिर हंसी छुपाने लगा—खांसी के बहाने से।

वही उसका दुख है, वह गाड़ी का चालक मात्र है, गाड़ी का एक पुर्जा बनकर रह गया है. और उससे अधिक नहीं, पर उसकी आंख हैं, देखेगा; कान हैं सुनेगा, उससे अधिक कुछ नहीं, गाड़ी के अंदर उसकी पीठ है, और सामने लंबा रास्ता।

"देखो न, कितनी ठंड है, ड्राइवर को भी खांसी आ गयी है। दीदी तो एकदम ऊंघ पड़ीं, गरमा रही हैं मन ही मन। और हम लोग, दुनिया सो रही है और हम जाग रहे हैं। गरम हुए बिना काम कैसे चलेगा, लो सिगरेट लगाओ।"

एक धुन में चलाये जा रहा है ड्राइवर—हार्न-क्लच-स्टीयरिंग-गीयर और सामने लंबा रास्ता। सिर बेचे पड़ा है पांच साल से। क्या सिर्फ दानापानी की चिंता ? बाकी तो कभी-कभार 'देखाइ दुरिनेला कनक गउरी' वृत्ता में, उसका आदमीपन जगाये रखता है। वह एकांत की बात है। फिर भी वह गुनगुना कर गाता है, और दोस्तों के आगे बात न खोलने की सौगंध देकर कह डालता है पूरा वृत्तांत। बात फैलती है।

मिली खिल-खिलाकर हंस पड़ती है, हंसने पर वह अस्तव्यस्त हो जाती है, अपने पर वश नहीं रहता। ड्राइवर की आंखें रास्ता देखती हैं और मन में उसी की याद आ जाती है।

पानी की तरह ढुलक जाती है याद, मन खुश होने पर बाढ़ के पानी की तरह ऊपर तक उफन जाती है। वह घड़ी, कितनी अपनी होती है।

इसके बाद, बाढ़ उतर जाती है, और पीछे देखती नहीं।

गहरी सांस दबाकर ड्राइवर सामने मुंह किये चलाये जा रहा है, लगता है मानो जीवन इसी तरह धूसर है, इसी तरह नीरस है,—चलता है तो चलता है।

"सुनो, रोज—" मिलि ने सरोजिनी से कहा, "तुम्हारा नाम था सरोज कोई

पुकारे तो सुनाई देता सोरोज, अंग्रेजी में उसका अर्थ होता है 'दुख, 'स' को उड़ा दो उसमें से खिल पड़ा 'रोज'—याने गुलाब, हर्ज क्या हुआ ? इसी तरह् काटकर उड़ाने होंगे सभी संस्कार, सारी लीक और परंपरा तब जाकर गुलाब खिलेगा। फिर भी तुम्हारा लाज संकोच, तुम्हारे शंका-शक ! तुम एक रत्न हो, अपने को सजा सको तो क्या नहीं होगा। अब तक तुम न सिगरेट पीने को राजी हुईं, न नाचने को। तुम्हारा यह फिगर, यह कट, कितना जबर्दस्त नाच सकती हो !".

"फायदा ?"

"सुंदर होने में कोई फायदा है ? फायदा वह अपने आपमें है, लाभ सुंदरता का है। तुम्हारे अंदर जो है, वह यदि खिल पाता, तब तुम जानती, परिपूर्ण जीवन क्या है, एक सुंदर उपन्यास की तरह तुम आती हो आधे रास्ते तक और फिर पिछड़ जाती हो। हम आधुनिका हैं, जीवन तो दुख से भरा है, जीवन अनिश्चित है, इसलिए हम पुराने जमाने के संस्कार मानने को तैयार नहीं हैं। हमारा यही क्षण, इसी में जो कुछ सुख पा सकेंगी। यही एक क्षण, चला गया तो शायद फिर नहीं आयेगा।"

मिलि के दर्शन का मतलब सरोजिनी समझ न सकी, किंतु स्पर्श कर सकी है, छू सकी है। छूने पर लगता है, रुलाई-रुलाई सा। भीगा-भीगा सा, पराया दरद मानो खुद तक फैल आया है। इसी स्पर्श से सरोजिनी के मन से निकला एक अवांतर प्रश्न। बोली,—

"अच्छा, तुमने शादी क्यों नहीं की ?"

हंसी ही हंसी में बात उलट कर मिलि ने कहा,—"तुमने शादी क्यों की ?"

"नहीं, सच,"—सरोजिनी ने कहा,—। "तुम दोनों तो सच दो कोमल फूल हो—धत, मुझे तो कहना भी नहीं आयेगा,—तुम,—याने सब बातों को इतना चाहती हो, तुम्हारा कितना बड़ा मन है, तुम विवाह क्यों नहीं कर लेतीं ? तुम्हारे लिए क्या वर की कमी है ? वर, घर-द्वार, बाल-बच्चे सब तो तुम्हें अच्छे लगते हैं।"

मिलि ने हंसी रोक दी। सब होते तो इस प्रश्न को एक ठंडी छुरी काटती ! पर हंसते-हंसते वह सरोजिनी के ऊपर झुक पड़ी। हंसमुख भाव से बात नाप-तौलकर मिलि कहती है,—

"जानती हो, मैं तुम्हें एक कहानी सुनाती हूं। कहानी भी क्या कहूं ? जो

जितना दौड़ता है, वह उतनी ही ठोकर खाता है। इतना तो जानती हो। जो जितना मांगता है वह उतनी ही दूर तक पाता है।

"यह बात हम बाप-दादों के जमाने से सुनते आये हैं। फिर हम उस परंपरागत रास्ते पर क्यों ? तुम फूल तोड़ने के लिए हाथ बढ़ाओगी, और मिलेगा कांटा, मिलेगा धक्का। तुम क्या सोचती हो, दुनिया में सभी लोग कांटे और धक्के पसंद करते हैं ? किसी को अगर पसंद न आयें ?"

"तो क्या फूल अच्छा नहीं ?"

' नहीं है, यह किसने कहा? जो नहीं जानता, वह अपने को थोड़ा घायल करेगा, फिर फूल पायेगा, तब तक धक्का खाकर जीव छट-पट; जो जानता है, वह धीरे से नाक को फूल के पास ले जाकर सूंघ आयेगा; ये जैसे मैं तुम्हें सूंघ रही हूं, वाह-वाह, कितनी सुंदर सुगंध आ रही है रोज में। मिस्टर दास होते तो उन्हें मुझसे ईर्ष्या हो आती।"

"धत्", बात घुमाकर सरोजिनी बोली,—"घर-बार किसे खारा लगता है ?"

"लगता नहीं —जिसका विश्वास होता है उसे। विश्वास आजकल के जमाने में रखता कौन है ? जो जानता नहीं, वह मूर्ख है, वह गंवार है। भूलती क्यों हो, यह ठहरा कलियुग। इस युग में सच नहीं, विश्वास नहीं, कुछ नहीं,—"

सरोजिनी ने दोनों बांहें मिलि के गले में डालकर कहा,—"अच्छा, रहने दो रहने दो, मैं और नहीं पूछनी।" मिलि की भाषा उसके लिए अटपटी है, पर उसकी बात कहने की भंगिमा, उसका स्वर, कहते समय उसकी आंखों की दृष्टि, उसके चेहरे की छाया, सब मिलकर एक अजीब सा करुण भाव पैदा कर देता है—क्षण भर मे ही आदमी का नया रूप, यह मिलि इस घड़ी की नहीं है, एक अतीत का आर्त्तनाद है।

"रहने दो, रहने दो मिलि, मैं और नहीं सुनूंगी। तुम ठहरी पंडित, तुम जो कह रही हो, मैं क्या समझ सकूंगी ?" किंतु पलक मारते ही मिलि कैसे बदल गयी ? उसके मुंह से ज्वालामुखी के गर्भ में छुपा गर्म लावा मानो फूट पड़ा है, मतलब नहीं समझ पातीं, पर कितनी जलन भरी तेज-तेज सी हैं वे बातें। मिलि कहती जा रही है—

"बस केवल लेन-देन में हमारा समाज बंधक हुआ है, उसके लिए एक समाज का खेल क्यों ? रास्ते में किसो को मान देने पर वह क्या तुमसे दो बातें नहीं कर

लेगा ? क्या ठिकाना है, जो किसी बात की नींव न पड़ी तो आदमी रोयेगा ? हो सकता है पहले समाज स्वस्थ हो, विश्वास हो कि एक काम करने पर दूसरा काम होता है। इसके बाद जमाना बदला, ठीक वैसे जैसे ऋतु बदलती है, आदमी घर के सोये हैं, उसके लिए घंटा बजता नहीं, पर एक दिन कड़ी धूप, भयंकर गरमी। एक के बाद एक युद्ध चले। कल जो विलासमय शहर था, आज वह राख का ढेर है। वैसे ही इधर, पुराना समाज, पुराने मंदिर धराशायी हो गये। इधर-उधर घूमते-फिरते आदमी खाली उबल रहे हैं। यह अकाल नहीं, अकाल से भी भयानक है। अकाल केवल कुछ दिन का होता है। सब जानते हैं, मौसम बदलेगा, अकाल खत्म हो जायेगा। पर यह, यह क्या कभी मिटेगा ? यह युग बदला है, क्या करोगी तुम ? भूकंप आये तो क्या करोगी तुम ? जिस जमीन पर पैर रखे हैं, यदि वही हिल रही हो ?"

"ये सब बड़ी-बड़ी बातें हैं मिलि, मैंने क्या पढ़ायी की है जो समझूंगी ?"

"समझोगी नहीं ?आंखों से जो देखोगी उसे समझे बिना क्या आंख मूंद लोगी ? हजारों साल पहले लोग कहां रहन-सहन करते थे, घर बसवाते थे, बेटे-पोतों के लिए चीजें जोड़ते थे, खुद देखा जाय तो मिट्टी में भी उनकी जड़ें नहीं होतीं। फिर वे ठहरे रास्ते का कूड़ा-कचरा, जिधर हवा बही उधर ही उड़ जायेंगे। यह हुआ इस युग का चेहरा, दीवार नहीं कि छप्पर नहीं, किसी पर भी विश्वास नहीं, तुम्हें रास्ते में कोई संगी-साथी मिला है, देखोगी वह तुम्हें चाय में धतूरा मिला देगा। आज तुम हो, कल नहीं—"

"तुम इतना सोच सकती हो, मिलि, इस पर शोक भी कर सकती हो, हंस-खेल सकती हो। मैं यदि तुम्हारी तरह पेट में इतनी बातें रख सकती तो दो रोटी खाना मुश्किल हो जाता। सच आदमी इतना सोचे तो अपने पर भी घृणा आ जाती है। दुनिया में दुखी हैं, गरीब हैं, उन्हीं की बात सदा सोचें, उनके दल में मिलना संभव नहीं तो जंगल में जाकर जोगी बन जाना चाहिए। हमारी मिलि देई होंगी जोगिन ! कोई जोगी मिले तभी तो। छोड़ो और कोई अच्छी बातें करो—"

"यही तो तुम्हारी भूल है, जोगी क्यों हों ? जो एक बार दुख पाता है, वह सोचता है संसार छोड़ दूं। जो सदा दुख पाता है वह सोचता है इस दुख को सुख मानकर किस तरीके से जिंदा रहूं। हम क्या घास खाकर जोगी बनने के लिए

दुनिया में आये हैं, या शौक-मौज-मजलिस के लिए ? हमारा जितना हुआ उतना ही, उसी में मौज करेंगे।"

"बस, तो ठीक है, वही फिर कहती हूं, शादी कर डाल, मैं रणजीत बाबू से कह दूंगी।" नाम मुंह पर आते ही सरोजिनी का चेहरा लाल हो गया। मुंह फेरकर बोली—"आह, हमारी नीली की कैसी नींद है। बड़े मजे में सो रही है।"

मिलि ने कहा—"यह युग ही चाहता है ऐसा ही आराम। जो जब मिला लूट लो, ऊपर से ऐटम बम, नीचे युद्ध और अकाल, पता नहीं फिर यह आराम मिलेगा या नहीं। आराम लूट लो। घर बसाऊंगी, रहूंगी, ऐसा सोचोगी तो गढ़ते-गढ़ते ही सब ढह जायेगा। इम युग के साथ-साथ हम भी क्षणिकाओं के ही दल हैं, युग की संतान, हम क्षण की उपासिका हैं, पंख खोल कर मन चाहे उड़ जाओ, इस युग में निश्चित कुछ भी नहीं, और उस जमाने को गज से हमें मापने की जरूरत नहीं।"

सरोजिनी चुप्पी साधे सुन रही है। "इसके बाद ? बात पूरी कर दो, बाकी क्यों रखती हो ?"

"कर रही हूं। वही कहती हूं, आगे बढ़ो, जमाने के साथ हाथ मिलाओ। यदि सब मरेंगे तो तुम्हें अकेले को जीने का क्या अधिकार है ? सब यदि जलेंगे तो तुम अकेले बचने की खोज क्यों कर रही हो ? आधुनिका बनो, लंगर उठा दो।"

"फिर ?"

"श्रोताओं को उनके असीम धैर्य के लिए धन्यवाद। पर इतना कहे देती हूं, आपका धैर्य भी इस युग के लिए अशोभनीय ही कहा जायेगा, जमाना धैर्य भी नहीं चाहता, वह तो आपसे अधैर्य की आशा करता है। किताब पढ़ते समय पन्ने उलटाते जाइये, गाली देना स्वाभाविक है। भाषण सुनते-सुनते हो-हो घो-घो करें, सड़े अंडे, गले केले फेंके, और नहीं तो पता कैसे चलेगा कि आप स्वाधीन हैं ? आपका व्यक्तित्व और आपकी विशेषता कैसे प्रगट होगी ? सभास्थल को अपवित्र करना तो और भी स्वाभाविक होगा। पर कहे देती हूं लिपिस्टिक, रुज, पाउडर, वैनिटी बैग, हाई हील जूते हमारे मन का चमड़ा नहीं है, यह तो युग की पोशाक है, पहले जैसे लड़कियां पहनती थीं बल्कल। उस पोशाक के साथ अंदरूनी मन का कोई संपर्क नहीं था। और प्राण, वे तो नित्य हैं, सनातन हैं।"

"कैपिटल कैपिटल—" नीली ताली बजाकर कांप उठी।

"सो तो ठीक है—"नीली ने कहा, "कैपिटल याने पूंजी, आगे कैपिटल, पीछे कैदिटल, उद्देश्य कैपिटल, उसी के लिए हमारा यह अभियान है। यदि हमारे क्लब के लिए कुछ चंदा इकट्ठा हुआ तो घर-घर घूमने से क्या लाभ ?"

"नहीं, खूब जोरदार लगा, तुम्हारा भाषण,—" नीली ने कहा।

सरोजिनी अवाक् होकर पूछ बैठी, "तो इतनी देर तक तुम क्या लेक्चर दे रही थी मिलि ?"

"स्योर, नहीं तो रास्ता कटता कैसे ? यही तो मजे की बात है, तुम किसी को उसके घर की बात पूछोगी, तो वह तुम्हें लेक्चर देगा। तुम बार-बार हृदय की बात पूछना चाहती हो पर हृदय है कहां ? बस काठ है। फिर भी बजाना जाने तो काठ को काट-पीट कर सुंदर काठतरंग की रचना हो सकती है, सुनायी भी अच्छा देगा।"

"उई मां। और नीली तुम। तुम भी सोयी हुई नहीं थी ?"

"जो जैसा दिखता है, वह हमेशा वैसा नहीं होता," नीली ने कहा, "ये देखो, तुम दिख तो रही हो किड्डी, पर तुम हो बड्डी।"

"किड्डी, फिर बड्डी, यह कैसे बड्डी रे बाबा ?"

दोनों बहनें एक-दूसरे की ओर देखकर मुस्करा पड़ीं। मिलि ने समझाया, "किड्डी, याने खूब बुद्धिमान, बड्डी माने कच्चा, याने तुम खूब बुद्धिमान लग सकती हो, पर हो एकदम सरल, अर्थात् सांसारिक अनुभव कुछ भी नहीं, अतः बहुत सरल बुद्धि हो।"

"ये जैसे गिनीपिग, अरे, कितने पालतू हैं।" नीली बोली। सरोजिनी खुश हुई, बोली, "तुम सब पढ़ी-लिखी लड़कियां हो, इस हाट में खरीद उस हाट में बेच दोगी।"

सब हंसीं। मिली ने कहा,—"व्यापार का युग जो चल पड़ा है—"

गाड़ी रुकी। विष्णु बाबू का घर। विष्णु बाबू एक कर्मचारी हैं। लुंगी पहने बीड़ी पीते टहल रहे हैं। तीनों हाथ में चमड़े का बैग लटकाते खटाखट घुस गयीं अंदर। यहीं से चंदा शुरू होगा। कुछ समय बाद विष्णु बाबू के लिए अंदर से बुलावा आया। उन्हें अंदर जाना पड़ा।

संगठन चाहिए, संगठन।

उसके लिए सहयोग जरूरी है।

सब एक हों, तभी तो।

कितना कूड़ा। कितना काम। ओह !

रास्ते में बटोही चला जा रहा है, पिच से पान की पीक फेंक देता है, गृहिणी किवाड़ खोलकर बीच रास्ते में कूड़े का ढेर लगा देती है, कूड़ा-करकट, गंदगी, मांड, पानी सब डाल देती हैं, सारा रास्ता कितना गंदा है, मक्खियां भिनभिना रही हैं—छिः।

कुलियों की बस्तियां कितनी गंदी, मैली हैं, टूटी दीवारें, आधा छप्पर है तो आधा नहीं। सिले हुए टाट को लटकाकर टूटे दरवाजे पर ताड़ से पत्तों की टट्टी या और कुछ खड़ा कर काम निकाल रहे हैं। चारों ओर कितने तरह के कूड़े के ढेर,—ओफ् कितना गदा है, दुर्गंध से नाक फटी जा रही है। जहां हंडी वहीं हगना,—छिः छिः।

आदमी। बच्चे की नाक पोंछने में भी जैसे पसीना निकलता है। और अपने बालों में कंघी करने में ? सिर नहीं, जूंओं का घर है। क्या दो बूंद तेल की नहीं मिलतीं ? स्त्रियां तो और भी गंदी हैं, फटे कपड़े, फटी हुई जगह से सिर के बाल फर-फर उड़ रहे हैं, सारी देह पर मैल की परत चढ़ गयी है, नाखून कोयले जैसे काले दिख रहे हैं, और देह की जो कांति—क्या मांड भी पीने को दो जून नहीं मिलता ? सो नहीं,—बेवक्त खाना, गंदा भोजन, स्वास्थ्य की मामूली बातों की ओर से भी उदासीन। रोग, एक को हुआ तो दूसरे को भी। ओह ! कितने उदासीन हैं, ये आदमी क्या पशु हैं।

और देश, राज्य,—उसका भी चेहरा बदलता। सुंदर घर द्वार, खाली मैदान और गंदे जंगल के बदले झलमलाता बगीचा, बाड़ी, हृष्ट-पुष्ट आदमी और पशु—फूल, फल। देश में लक्ष्मी भर जाती।

पर कहां ? नींद में ऊंघते-ऊंघते लोग चल रहे हैं, आगे-पीछे निगाह नहीं। ज्यादा से ज्यादा सोचेंगे तो अपने बित्ते भर के पेट के लिए। जमाना बीत जाता है ? पर अंध-विश्वास नहीं टूटता, कुछ भी नहीं बदलता।

अतः संगठन चाहिए, सहयोग चाहिए।

सरोजिनी सोच रही है। पिंजरे से बाहर आ पेड़ की डाल पर बैठ कर सोच

रही है चारों ओर आंख घुमा कर, सोच रही है, पक्षी की तरह। इससे पहले कभी संगठन की दुनिया में घुसी नहीं थी, नयी-नयी आयी है। क्लब का घर बनेगा, उसके साथ होगी नारी कल्याण समिति। एक ओर संगठन की बात सोचते-सोचते सभी तरफ की चीजें दिख जाती हैं। चारों ओर कितनी आवर्जनाएं। कितनी चीजों का अभाव। उसने नया-नया काम शुरू किया है, अतः उसका उत्साह अधिक है। भावना में तेज उष्णता, काम करने में,—चंदा मांगने में या पैंफलेट बांटने में, या इस सब के बारे में घंटे-दो घंटे बातचीत करना उसे वीरता जैसा लगता है, मानो वह कितना बड़ा काम कर रही है, चिल्ला कर भाषण देने की इच्छा भी हो आती है,—उसने क्या नहीं किया।

उसी संगठन की बात सोचती है अनेक दिशाओं से।

पीठ पर खद्दर के कपड़ों की एक बड़ी गठड़ी लादे कमर झुकाये नंगे पांव कोई चला जा रहा है, गांव-गली में कोई धूप में घूम रहा है, पिंडलियां घुटनों तक ढंकी हुई हैं, मोटी धोती,—पसीना बह-बह कर शरीर को भिगो रहा है, खाने-खाने की ओर निगाह नहीं। खद्दर बेचता है, चरखे से सूत कातने का प्रचार कर रहा है। 'ग्रामोद्योग की नींव डालो!' प्रचार कर रहा है। अहिंसा की वाणी। घर छोड़ दिया, रोग व्याधी की परवाह नहीं है। वह भावना का एक रूपक है।

नाम की परवाह नहीं, क्षमता की चाह नहीं, सुख की ओर देखता नहीं। बस केवल रामराज्य खोजता फिरता है।

रामराज्य का सपना देखते-देखते पता नहीं किस उजाड़ में अपने मुट्ठी भर हाड़ फेंक कर चला जायेगा।

वह नहीं होगा, होगी उसकी वह महान भावना। उस महान भावना को रक्त में मिलाये फिर भी जुटे होंगे कितने नीरव कार्यकर्ता। कीचड़ में, धूल में; बाढ़ में, तूफान में; ईंट-पत्थर गाली-गलौज सब सहन करते हुए। उनका कोई कहीं नाम नहीं, त्याग का ब्राह्मण-जीवन।

सरोजिनी भी सोचती है, मिलि भी। सब अपने-अपने तरीके से सोचती हैं।

लुभावनी पोशाक के नीचे हथगोला छुपाये कोई दबे पांव चौकन्ना-सा होकर घूम रहा है। बम फेंकता है, आदमी मारता है, गाड़ी उलटता है। लोगों को रुलाता है, संसार को चूर-चूर करता है। सामने देखता है हिंसा, देखता आ रहा है आग, धुआं,—ताजा खून की नदी। उसका रास्ता कठिन है, जीवन अशांत है, अनिश्चित

है। चोर की तरह लुकता छिपता। आज कहीं तो कल कहीं। पुरस्कार के रूप में गोली या फांसी का तख्ता ? कोई ठिकाना नहीं, कब क्या मिले ?

वह भी देखती है एक स्वप्न।

दुनिया का चेहरा बदलने का स्वप्न देखती है, दरिद्र किसान भागवत टूंगी में कतार बांधे 'मालिका' और पुराण चर्चा के बीच स्वप्न देखती है। 'कल्कि अवतार,—और कितने दिन की बात है ? इसके बाद तो बारह हाथ की तलवार, सिंदूर पुते पागल कुंभीर···। कंट्रोल का जमाना, चावल रुपये का डेढ़ सेर। अकाल के जमाने में तो इससे भी सस्ता था, सत-द्वापर-त्रेता और अब कलि, कल्कि को और कितनी देर ?'

बदली हुई दुनिया में स्वप्न देखते हैं व्यवसायियों के दल। नदी की धार पर लगाम लगा कर उपजेगी बिजली, फिर सिंचाई होगी। जंगल उखाड़ कर, जमीन खोद कर, धातु-द्रव्य निकलेंगे। मशीन काम करेंगी, मशीन से खेती होगी, मशीनी उत्पादन के बिना अभाव मिटेगा नहीं, अतः—।

पुजारी उपाय बताता है, मगल आरती के पास मंगल विनती करता है—'सर्वे भवंतु सुखिनः, सर्वे संतु निरामया—' गांव-गांव शहर-शहर में यदि शांति-गृह होते, तो यह पाप हटता, पृथ्वी पर स्वर्ग की प्रतिष्ठा के लिए मात्र उपाय हैं—कीर्तन, यज्ञ-होम।

आंख मूंदे ध्यान लगाये भावुक उपाय निकालता है,—'इतना दुख ! क्यों है यह सब ? संसार में क्या खाने को नहीं है ? वसु का आकार यही वसुधा है ? वितरण की गलती के कारण सारी विषमता, सारा दुख। धन का दबदबा दूर किया जा सके, वितरण में सुधार लाया जा सके तो धरती एक दिन में बदल जाय, कुत्सित दारिद्र्य और भीरूपन न रहें, अतः—।

संगठन और सहयोग, सबके मन में ये ही आयुध है। बस उपाय भिन्न हैं।

सरोजिनी का उपाय था चंदा, तर्क बिलकुल सहज था। सब यदि चंदा दें, एक बार नहीं, नियमित; तो जमा-पूंजी बढ़ेगी, उसी पूंजी से नारी कल्याण समिति का काम आगे बढ़ेगा। काम भी क्या ? कोई पत्थर तोड़ना है ? क्या घानी चलानी है ? या मूंज कूटनी है ? नहीं केवल यही कि सब क्लब के घर में इकट्ठे होंगे। एक-दूसरे से मिलेंगे। कुछ सीखेंगे कुछ सिखायेंगे, और तभी तो आती है

सभ्यता। कपड़े पहनना, सुरुचिपूर्ण बनना। साफ रहना ? सुई-करोशिये के कामों में दक्षता।

सजाने-धजाने में खासियत। संगीत-नृत्यकला,—हमारे घरों से यह सब उठ कर नीरसता आ गयी है। इनसे मन में आती है स्फूर्ति, घर में आनंद। मन प्रफुल्ल रहे तो शरीर में जान रहती है,—क्योंकि मन का और देह का तो गहरा संबंध है। मन और देह ताजा रहें तो फिर सारा घर ताजा लगता है, स्वास्थ्य-रक्षा के बारे में बातें होंगी। क्या खाने से ताकत बढ़ेगी, कैसे रहने पर रोग नहीं ग्रसेगा। कुली बस्ती के सब लोग यदि मशहरी लगाते, गरम पानी काम में लाते, तो क्या उन्हें इतना मलेरिया होता ? नियम से यदि डाक्टर को दिखाते रहते, तो क्या बीमारी इतनी बढ़ती ? मामूली ज्ञान-चर्चा, देश-विदेश की बातें। मोटे तौर पर नारी कल्याण, नारी जाति का मंगल होने पर देश का मंगल स्वत: हो जाता, क्योंकि वे गृहिणी हैं, वे भविष्य की मां हैं, उन्हीं की गोद में आगामी युग खेलता है। छोटे से क्लब के कमरे से यह योजना सारे देश में फैल जाती। इसके लिए चंदा चाहिए, कोई एक रुपया देगा तो उससे करोड़ों का मंगल होगा।

बस केवल देने भर से काम हो जायेगा।

अपने नये-नये उत्साह में असंभव जैसा कुछ नहीं कहना चाहती।

अत: सब सुनकर भी जब बलिदत्त ने सिर्फ 'हूं' भर कहा, तो सरोजिनी गुस्से में चुप होकर पैर पटकती हुई सीधी ऊपर चली गयी। जितना वह सोचती है, कुछ नहीं देखती, बस बलिदत्त की अयोग्यता ही अयोग्यता देखती है। अपने प्रति न्याय औरों के प्रति अन्याय, वह उतना ही अधिक सुलगती जाती है। जूते खोल कर फेंकते समय, रिस्ट वाच हाथ से खोल कर एक ओर सरकाते समय, साड़ी बदलते समय हरदम एक ही विचार। यह आदमी उसकी दया पाने के योग्य भी नहीं।

चुपचाप बैठी है। बलिदत्त आया। कहने लगा—"बहुत गंभीर हो सरोज ?"

"जो सोचता है वह गंभीर होता है, जो नहीं सोचता, वह समझ नहीं पाता।"

"ओह ! तो तुम सोच रही हो ? सोचो।"

सरोजिनी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

"बताओ तो, क्या सोच रही हो ?"

"बताने पर भी तुम समझ नहीं सकोगे।"

बलिदत्त ने उसके चेहरे की तरफ देखा, और आंखें दबा कर कहा—

"क्या बाल-बच्चों की बात ? वह तो भगवान के हाथ की बात है। गरीब के यहां जहां खाने-पीने के लिए भी नहीं जुटता, दर्जन के दर्जन मिलेंगे, जहां दो पैसे हैं,—वहां एक भी नहीं। बहुत दिनों से देख रहा हूं, तुम सोच रही हो। इसमें सोचना क्या ? जो भाग्य में होगा, होगा तो वही।"

किंतु फल उलटा ही हुआ, झंझा की तरह कांपती हुई सरोजिनी उठ कर चली गयी। अपनी पराजय को छिपाते हुए बलिदत्त ने ऊंचे स्वर में कहा—"अरी ओ, सुनो, क्या शरमा गयीं ? पेट में भूख और मुंह में लाज ! पर बाल-बच्चे होने के बाद ऐसा चेहरा नहीं रहेगा, यह बच्चों जैसा मन भी नहीं रहेगा। होते समय जो होगा न, समझ लो बस।"

जाते-जाते सरोजिनी मुड़ पड़ी,—"क्या समझते हो तुम, बताओ तो जरा ?"

"सब कुछ समझता हूं।"

"नहीं मैंने जो कहा। तुममें जरा भी सहानुभूति नहीं ? तुम आदमी हो ?"

"सो तो तुम जानती हो। अच्छा यह सब छोड़ो, क्या करना है ? खंभा गाड़ना, चांदनी तानना, या लाइट लगाना, मैं सब ठीक कर देता हूं। चंदे की कापी मुझे दो, चंदे का भी उपकार होगा, फिर,—दीया उकसाने पर हाथ चिकने। इन सब बातों में तो मेरी सहमति है।"

"रखो अपनी ऐसी सहमति, जिसका मत हमारे मत के साथ नहीं मिलता—" बात बीच में पकड़ते हुए बलिदत्त ने जोड़ दिया,—"उसका साथ हम छोड़ देते हैं, यही कहोगी न ! ओह ! सरोज मत के लिए तुम लड़ाई कर रही हो, तुम तो पूरी तौर से आधुनिक बन गयी हो ! अरे, कल सुबह तो तुम्हें अ···आ···शुरू कराया था, तुम इतने ऊपर उठ गयीं। सच कहते हैं, औरत जात असुरों की तरह बढ़ती है, आश्चर्य है।"

सरोजिनी गुस्से में भी हंस पड़ी,—"तुम भी अजीब चाटुकार हो—"

"मैंने तो पहले ही समझाया था कि वशीकरण मुंह से किया जाता है।"

"इतने वशीकरण से क्या होगा ? तुम्हारा तो हमारे मत में विश्वास नहीं है।"

"चंदा उगाह कर जगत उद्धार करने में ? बहुत विश्वास रखता हूं। तुम चंदा

उगाओ, सभा-समिति करो, नाम होगा मेरा। अमुक के पति कौन हैं ? ये, वो जो, उधर जा रहे हैं। मारे सिपाही, नाम सरदार का। बस केवल चंदे की एक कापी मुझे दे दो, फिर देखो, मैं क्या कर सकता हूं।"

"तुम तो साक्षात्..."

"अज हो। ठीक कहा। बुद्धिमान वही है जो बाहर से अज जैसा दिखता है, पर याद रखो, जब सब हंस-हंस कर थक जाते हैं, तब वह हंसता है। समझ लो।"

सरोजिनी दूसरे कमरे में चली गयी। बलिदत्त ने पीछे से देखा और मन में खुश होकर सोचने लगा—सच आश्चर्य है। बात-बात में निरुत्तर कर देती है। पद-पद पर प्रमाण देती है। अनजान आदमी तो सोचेगा यह बी. ए.—एम. ए. पढ़ी हुई है। कितनी जल्दी। बरगद के छोटे से बीज के अंदर भी तो विराट् बरगद छिपा होता है। दुनिया आश्चर्य से भरी है। सब आश्चर्यमय है। सबसे बड़ा आश्चर्य है उसकी स्त्री।

उस कमरे में सरोजिनी है।

वह बस एक ही बात सोच रही थी,—बलिदत्त ने क्या सोच कर ऐसा कहा ? वह बाद में हंसा। क्यों ? तो उसने क्या कुछ सुन लिया ?—कुछ जानता है ?

सरोजनी खाली दृष्टि से बाहर की ओर मुंह किये अपने अंतर को देखती खड़ी रही। उसके माथे पर पसीने की बूंदें, और होंठों पर अस्वाभाविक तिरछापन।

संदेह आता है, जाता है, आकाश में फटे-फटे बादल छाये हैं, और सनसनाती हवा का रोज का खेल चल रहा है।

हवा, भावनाओं की उग्रता की तरह, अपने खयालों में खुद उड़ती है, घन-घन गरजती है, खुद अपनी सत्ता खो देती है, बंधन तो उसके खिलौने हैं।

सरोजिनी ने अपनी हवाई दुनिया में पवन का रूप लिया था।

बलिदत्त की कोठी, उसकी अंधेरी गुफा, वहां उसका वेग नहीं है,—खाली

अलसा कर झूलना, बाहर निकलने या आउटिंग की प्रतीक्षा करना, एक बार निकलने पर वह अपना वेग दिखाती है, फिर तो वह हवा ही हो जाती है ।

शुभ दिन आया ।

नारी-समिति की उद्‌घाटन संध्या ।

अनेक निमंत्रित सज्जन और महिलाएं हैं, विशेष अतिथि हैं, कंपनी के साहब मिस्टर शर्मा।

वे आयेंगे ।

कार्यकर्ताओं में अपार उत्साह, लहराती आशाएं ।

ऐतिहासिक ।

दल के दल चले आ रहे हैं ।

नारी नाम ही काफी है ।

कुछ होगा ? प्रतीक्षा करना नर का स्वभाव है ।

पान, बीड़ी, सिगरेटों की तश्तरियां लगी हैं । छड़ी लिए, कोई खाली हाथ, किसी के हाथ में टार्च । धोती, सूट । पैदल, कार । जोड़े और अकेले अविवाहित । झोला खाये भी, खोखले भी । टिकट-बेटिकट, निमंत्रित-अनिमंत्रित सब । लोग-बाग चले जा रहे हैं । आज उद्‌घाटन संध्या है । मन में नारी । आदिम चिंता । आदिम अभाव ।

जितना भी मिले फिर भी थाल भरता नहीं ।

बड़ठाकुर घूमे थे काले कूकर बन कर ।[1]

वैसे ही घूमती हैं ठाकुर की संतानें,—आदमी ।

उद्‌घाटन की संध्या, दरवाजा खुलेगा, पर्दा उठेगा, प्रतीक्षा के उस ओर विस्मय है, मात्र विस्मय ।

[1]किवदंती है कि शिवजी का महाप्रसाद पाने के लिए एक बार जगन्नाथजी कुत्ते के वेश में निकले थे ।

मन में नारी, मुंह पर फालतू बातें। बूढे खोबा खां पर्दे की ओर टिमटिमाती आंखों से देख रहे हैं, चश्मा ऊपर-नीचे कर रहे हैं, गंभीरता से पास खड़े किसी अधीनस्थ को धमका रहे हैं, "क्यों दीनबंधु, क्या कहा था तुम्हें, किया ? तुम से कुछ होगा नहीं, ठहरो, तुम्हें सबक देता हूं।" पैर पर पैर डाल कर बैठ गये। बूढ़े शरीर को आराम मिलता है, दंभ आता है। परदे की ओर देखते-देखते गाली भूल जाते हैं, "हूं, तो मैं क्या कह रहा था ?"

युवा दीनबंधु के गलफड़े में दो पान दबे हैं। गाली सुनते-सुनते पसीना छूटने लगा। यह खोबा खां। खड़े-खड़े गाली झाड़ते-झाड़ते आंखें पर्दे की ओर मुड़ जाती हैं। एक पैर पर वजन डाल कर दूसरे को इधर-उधर हिलाने लगे। "हां, इस गाली का भी अंत होगा, खोबा खां सदा नहीं रहेगा।"

नाटे कद के अगणि राउत मुंह बनाते हुए कस कर सिगरेट का धुआं फेंक रहे हैं। बाजार में कीमतों के बारे में एक छोटा-सा आर्थिक भाषण दे रहे हैं। पर मुंह पर्दे की ओर है।

भारी-भरकम श्याम बाबू को बहुत गरमी लग रही है, वे इधर-उधर टहल रहे हैं। कहते फिर रहे हैं कि उन्हें भूख लगी है। जगह-जगह नौकरी के बारे में आलोचना चल रही है, रोज का धंधा है, सुख-दुख है। कहीं चल रही है निंदा-प्रशंसा। चार-पांच आदमी चुपचाप सिर झुकाये सुन रहे हैं, कभी-कभी मुड़ कर इधर-उधर देख लेते हैं।

प्रकाश झिलमिला रहा है। कागज के फूल, कागज के हार थरथर थिरक रहे हैं। पर्दा कांप रहा है, उठता नहीं, कुर्सियां सब भर गयी हैं।

—और कुछ समय बाद हलचल मच गयी—"साहब आ रहे हैं, साहब आ रहे हैं।" अचानक दानापानी की चेतना उतर आयी, साहब—वे कंपनी के अफसर हैं— भाग्य विधाता हैं। सारी आशाओं सारे भयों के आधार।

मौजों का भूत उड़ गया, इसके बाद सब कर्मठ आदमी हो गये, दल के दल काम पर जायेंगे, गर्दन झुका कर फिर लौट आयेंगे गोधूलि बेला में। अचानक जैसे किसी ने चाबुक फटकार दी हो, सब हड़बड़ा कर खड़े हो गये। साहब के पास खड़े होने का जिन्हें अधिकार है, वे ऊपरवाले रास्ते की ओर बढ़ गये। 'साहब-साहब' बिलबिलाते दौड़े खोबा खां, बटन खुल गये हैं, सठियाई देह से मुड़ते-झुकते रास्ते के पास आ गये। परेड के लिए जाते हवलदार की तरह तेजी से चले

गये श्याम बाबू। पतले-पतले पैर हिलाते हरिण की तरह कुलांचे भरे जा रहे हैं अगणि राउत। उनकी गति में लालित्य है। बलिदत्त दास पहले से ही घाटी के मुंह पर सतर्क हुए खड़े हैं, पहले से ही थोड़ी बुद्धि खर्च कर वह ठेल-पेल से बच गया। धक्का-मुक्की, रेल-पेल शुरू हो गयी है, सभी दूसरों के कंधे पर दबाव देकर अंगूठे के सहारे खड़े अपनी गर्दन ऊंची करने की चेष्टा में लगे हैं। भीड़ बहुत है,—'साहब-साहब।'

प्रांगण में दरवाजे की ओर मुंह किये खड़ी हैं उद्योक्तायें, सबके आगे सरोजिनी है। साहब की मोटर गुर्राती हुई धीरे-धीरे बढ़ रही है। उसके पीछे रणजीत बाबू की मोटर, पीछे-पीछे औरों की। सच कितनी रोशनी है। मोटर की चौंधियाने-वाली रोशनी में सरोजिनी ऐसी दिखायी पड़ती है मानो उसकी देह समुद्र के नीले पानी से उठी आ रही है। पास में हैं, मिलि, नीली, बिंदु, और कई—सुगठित सुंदरता की एक प्रदर्शनी। सरोजिनी के हाथ में फूलों की मोटी माला झूले की तरह इधर-उधर हिल रही है। मानो शर्मा जी की गर्दन में सांप की तरह लिपट जाने को आतुर है। सरोजिनी माला का संतुलन बनाये रखने की भंगिमा में हल्के से मुस्करा देती है। मोटर रुकी, दरवाजे पर छोटी-सी भीड़, ऊपरवाले सलाम करेंगे। साहब उतरे। तुरंत शंख और हुलहुली की शुभ ध्वनि। उसी शुभ ध्वनि में शर्मा साहब धीरे-धीरे आगे बढ़े तो बगल से रणजीत बाबू ने हंसते-हंसते समझाया—

"यह स्वागत भारतीय प्रथा में है, इस प्रांत का यह चलन है।"

"बहुत खूब!" शर्मा साहब ने कहा। आंखों के आगे एक लहर सी मचल जाती है। सामने सरोजिनी है। नमस्कार के आदान-प्रदान के बाद फूलों का हार उठाया। पीछे-पीछे मिलि, नीली, बिंदु। साहब ने गर्दन झुका दी। सरोजिनी ने मंत्रमुग्ध होकर हार पहना दिया। वह साहब के दोनों हाथों तक लटक गया, फिर व सहज हो गये। सरोजिनी की छाती तेजी से धड़कने लगी। कितना कुछ सोचा था, पर कह नहीं पायी। अन्यमनस्कता की अवचेतना में शर्माजी को लगा जैसे पास ही कोई कुछ कह रहा है, सिर उठाकर देखा, बौना बलिदत्त दास अस्तव्यस्त होकर सरोजिनी की ओर हाथ उठाकर कह रहा है, "माई वाइफ—मेरी पत्नी।"

मानो स्थिति संभल गयी, रणजीत बाबू जल्दबाजी में सबका परिचय दे गये, गर्दन से लटकते हार को सहलाते हुए साहबी ढंग से शर्मा साहब ने कहा—

"आप लोगों का बहुत-बहुत धन्यवाद, आपने बहुत सत्कार किया।"

साहब सभामंडप की ओर ले जाये गये। कार्य आरंभ हुआ।

दोस्तों ने रास्ते में ही अभिवादन किया,—"मिस्टर दास, आप बहुत खुश किस्मत हैं।"

उच्छवसित प्रशसा की रणजीत बाबू ने,—"मेरी तरफ से मेरा अभिवादन पहुंचा देंगे, कृपया। आप पूछेंगे कि मैं खुद क्यों नहीं जाता। वास्तव में मैं लोगों की उनके मुंह पर प्रशंसा नहीं कर पाता। समझ लें यह मेरी कमजोरी है।"

अधीनस्थ, छोटे कर्मचारी, किरानी बाबू,—भेंट होने पर वे भी हंसते-हंसते, मानो कुछ कहना चाह रहे हैं। दूर से उसीकी ओर इशारे में कुछ संकेत-सा कर रहे हैं। बलिदत्त सोचता है,—वे क्या कह रहे हैं। अवश्य सरोजिनी के उद्यम की ही प्रशंसा कर रहे होंगे। सरोजिनी का समाज, उस रात का आयोजन,—ये सब बातें जोरदार चर्चा का नियम बनी हुई है। अतः छोटे-बड़े सभी लोग बात छेड़कर दो शब्द कह देने को व्याकुल हैं। वह ऐसी जगह जरा रिजर्व हो जाता है, किसी को मुंह नहीं लगाता। सोचता है छोटों को अगर मुंह पर ही प्रशंसा करने दिया जाए तो कंपनी के काम में गड़बड़ी होगी। वह उसे प्रोत्साहन नहीं देता।

दूसरे दिन साहब के स्टेनो आये थे, एक दक्षिणी सज्जन हैं,—गुप्त खबर रखते हैं, खाली मुस्कराते रहते हैं, उनके पेट से बात निकालना सहज नहीं है। फिर भी वे सज्जन खुद-ब-खुद कह गये,—यद्यपि कहा फुसफुसाकर ही,—"साहेब बहुत इंप्रेस्ड हैं।"

आदमी को और क्या चाहिए ?

यही तो नौकरी वालों का स्वर्ग है।

पर इस प्रकार के स्वर्गीय आनंद के बारे में सरोजिनी के साथ खुलकर चर्चा करने का मौका ही नहीं मिलता। उस रात के बाद सरोजिनी का गंभीर चिंतन-शील चेहरा देखता है—वह कुछ सोच रही है। वह समझती है उत्तरदायित्व केवल गौरव का टीका ही नहीं है, चिंतन की कालिमा भी है। पहले कितना तर्क करती थी,—घर का उत्तरदायित्व, बहुत बोझ है, सब्जी काटना, चूल्हा जलाना, रसोई का बोझ, सब बोझ है। दर्प से कहती—"हमारा काम पल भर भी संभाल पाओगे ? चावल भात कैसे बन जाते हैं ? मर्द की जात तुम क्या समझोगे यह सब। चूल्हे की मजाक उड़ाते हो !—कभी सोचा भी है कि चूल्हा जलाने पर घर कैसे हंस उठता

है। चूल्हा जले बिना दुनिया ठंडी है, वह अग्निदेवता का स्थान है, उसका महात्म्य तुम पुरुष क्या समझोगे ?" मर्दों के पास अग्नि नहीं है, स्त्रियों के पास है। ठीक है, तुम्हारी आग देह को मालूम पड़ जाती है, हें हें हें। स्त्रियां आग नहीं हैं। शास्त्र क्या कहते हैं ? उनमें अग्नि है, पर उस अग्नि से बीज नहीं अंकुरते। तो,—दिन भी कितने हुए ? भाग्य में होगा तो अपने आप होगा। जो हो, अपने रसोईघर पर गर्व कर अब वह देख रही है, वास्तव में उत्तरदायित्व क्या है कुछ सोच रही है शायद कोई नयी योजना बना रही है। उसकी गंभीरता भी बलिदत्त का ही महत्त्व बढ़ाती है।

दुनिया हंस रही है, कहती है बलिदत्त दास तुम भाग्यवान हो।

मन में इस प्रबल आनंद के समय चेतना में एक नया प्रकाश जल जाता है। उसी प्रकाश में साधारण बातें छिटक पड़ती हैं, बलिदत्त देख रहा है, जिसे उसने पहले कभी नहीं देखा था। बगीचे के फूल—कितने सुंदर। मकान में खड़े हो दूर तक देखने पर जमीन की जो सुरम्यता दिखती है,—कितनी सुंदर है। कुएं के पास घास बढ़ी हुई है, भीगी घास पर तेज धूप कितनी मोहक और सहज दिख रही है, देखने पर आंखों को बहुत सुहाती है। बाड़ के उस ओर किसका बैल खड़ा है। कितना ऊंचा, कितना मोटा-ताजा, देह कितनी चिकनी, सच ठीक कहा है कि मक्खी भी फिसलती है। मन के आनंद से उदारतावश दया भी की जाती है,—"भिखारी कब से चिल्ला रहा है, अरे हर्षा, एक मुट्ठी भिक्षा ला ही दे रे, हर्षा।"

दो दिन बाद। सुबह चाय के साथ जब एक और ताजा खबर का सारांश भी पी रहा था, एक खबर पर अखबार में नजरें घुमाकर अचानक निगाह गयी तो चिल्लाया,—"सरोज, सरोज,—देखो, आओ तो, क्या छपा है।"

आराम कुर्सी पर हल्के हो बैठकर सरोजिनी ने पढ़ा। बलिदत्त उत्तेजना में कहता जा रहा था,—"ये देखो, ये देखो,—'ज' की 'इ' की मात्रा अखबार में नहीं उठी, सरोजनी-'सरोजनी'—बाकी सब ठीक है। तुम्हारे कारण मेरा भी नाम अखबार में छप गया है, सरोज ! बहुत अच्छा लिखा है, सब ठीक है।"

"ऐसे तो कितनी खबरें निकलती हैं, कितनी आलतू-फालतू औरतों के नाम भी, तुम ऐसे क्यों हो रहे हो ? क्या है इस अखबार में नाम निकलने में ? निकला है तो निकला है,—"

"और बड़े साहब का भी नाम है, वास्तव में वे ही इसके कारण हैं, वे न होते

तो क्या यह संभव था ? कौन पूछता। सब देशों में धर्म राजाश्रित हैं, राजा के उत्साह या आदर बिना कुछ नहीं हो सकता। बिनाश्रये न वर्त्तंते कविता, वनिता लता,—"

सरोजिनी ने कृत्रिम कोप दिखते हुए कहा, "क्या, जो मन में आया कहते जा रहे हो। कौन है राजा ? कौन है उस राजा के लिए, कैसी कविता, वनिता, लता ? हाय रे तकदीर। क्या हो गया है तुम्हें, तुम क्यों ऐसे हो रहे हो ?"

बलिदत्त ने विज्ञ-गंभीर होकर सिर हिलाते हुए कहा—"सुनो, सरोज, तुम नहीं जानती। यह बिलकुल ऐतिहासिक घटना है। अखबार में प्रशंसा,—इसे तुम मामूली कहती हो ? यह एक के मुंह की बात नहीं है। देश की राय है। यह सम्मान, उतना ही पाने के लिए लोग क्या-क्या नहीं खर्च कर डालते ? कितना त्याग नहीं करते ? हमें वह मिला है स्वतः। सोचो तो जरा, कितने लोग इसे पढ़ते नहीं होंगे, इस् ! कहीं एक आध जगह नहीं, सब जगह। हमारी भाषा से अनूदित होकर विदेशी अखबारों में भी यह खबर छप सकती है, सारी पृथ्वी में फैल जायेगी। अफ्रीका-अमेरिका में बैठे लोग सोचते होंगे,—बलिदत्त दास, सरोजिनी दास,—कैसे हैं वे लोग ? कैसे आदमी हैं। समझी सरोज, इतना सस्ता मत समझो अखबारों को।"

"सस्ता नहीं तो मंहगा है क्या। चार पैसे का अखबार, वह सस्ता नहीं है ! एक बार पढ़ लिया, बस फिर पोंछने झाड़ने बांधने के काम आयेगा, नहीं तो चूल्हा जलाने के काम। इसी को कहते हो कि लोग याद रखेंगे ! तुम्हारी ये पागलपन की बातें—"

"देखना तुम।"

पर देखा उसने,—स्वप्न की स्मृति में ऊंघते हुए अर्द्धचेतनावस्था में देखा,—वही विराट मोटर गाड़ी, एक बार देखने पर जो अपरिचित नहीं रह जाती, वही उसके फाटक की ओर आ रही है, खाली नहीं है, बड़े साहब—मिस्टर शर्मा उतरते हैं। अरे,—रास्ते में राहगीर जो जहां थे, वहीं खड़े रह गये, चेहरा.गंभीर। पड़ोसी

लोग, मिस्टर शर्मा को प्रणाम करने के लिए दौड़े आ रहे हैं। इस ओर हाथ दिखा कर फुसफुसा रहे हैं। आयेंगे तो इधर ही,—अब क्या करे ?

"सरोज, सरोज—" अंदर जाकर पागल की तरह इस कमरे से उस कमरे की ओर दौड़ रहा है। इधर से कमीज खोज उसे देख फेंक देता है—यह मैली है। वहां से मोजे उठाकर सूंघकर फेंक देता है। दरवाजे पर रस्सी में कपड़े टंगे थे। खींचकर कपड़ों को इकट्ठे कर एक कोने में छुपा रहा है। अंदर बरामदे में कूड़ा दिखायी दे रहा है,—बुहारी लिए झाड़ता जा रहा है। फिर कूदकर ऊंची आवाज में कहता है,—"सरोज ! मेरी पैंट-कमीज—" फिर "हर्षा—हर्षा—हर्षा—निताय—!" कुर्सी लेकर यहां से वहां। याद आया उसने कंघी नहीं की है। आईने के सामने छलांग मार जा पहुंचता है, दाढ़ी तो बना न सका, क्या किया जाए। चेहरे पर पसीना उभर आया। पैंट खींची तो याद आया कि अंदर कुछ भी नहीं पहना हुआ है। बाथरूम से निकल सरोजिनी आयी, बोली—"बात क्या है।"

"साहेब-साहेब,—मेरे कपड़े कहां है?" आलमारी खोलकर सरोजिनी ने उसकी पोशाक लाकर रख दी। जल्दबाजी में पहनते-पहनते बाहर से निताई ने आकर कहा,"साहब आये हैं, बड़े साहब खुद, हुजूर को खोज रहे हैं, बाहर टहल रहे हैं।"

"अरे बैठने को कुर्सी नहीं दी, ईडियट ?"

बलिदत्त ने चमक कर कहा, "बैठने से इनकार कर दिया साहब ने, बगीचा देख रहे हैं।" कई बार ओह-आह-अह करते हुए जल्दी से बलिदत्त तैयार हुआ। पैंट की कमर कसी नहीं जा सकी। कमीज पीठ पर मुड़ी रही, नुची-मुड़ी कालर पर टाई की नाट सोई हुई है, उस पर कोट, वह जी जान से तैयार हो रहा है। सरोजिनी आकर बोली,"गये क्यों नहीं? पगड़ी बांधते-बांधते कचहरी बरखास्त।" मानो सपाक से किसी ने चाबुक मारी हो। उसी चोट से वह आगे बढ़ गया। जाते-जाते अनुभव किया कि उसके जूते के लेस ढीले हैं, कोट के बटन उलटे-सीधे लगे हुए हैं, हाथ में घड़ी भी न बांध सका। बटन ठीक कर अपने पैर का पंजा फैलाकर जूते को संभालता बाहर भागा। मन में खाली बस ओह ! आह !—अशांति,—मानो 'काम से उठकर आया है, ठीक-ठाक हो नहीं पाया, समय ही नहीं मिलता। मिस्टर शर्मा जूते की नोक से खुरच-खुरच एक बैंगन के पौधे की जड़ में कुछ देख रहे हैं, आग्रह के साथ पीछे से बलिदत्त चिल्लाया, "गुड मानिंग

सर !—ब्रिडल्स सर—"

अचंभे में भरकर शर्मा साहब मुड़े। उसे देखा अनजाने ही उनके मुंह से निकल पड़ा, "गुड मार्निंग", कहने के बाद भी नहीं देख रहे हैं। बलिदत्त उत्साह के साथ कहता जा रहा है, मानो रिपोर्ट पढ़ रहा है, "ये मुक्तकेशी बैंगन हैं। बहुत फलते हैं, इनकी पूंजी असल में सरसों की खली की खाद है। गोबर की खाद जितनी सड़ी हुई होगी उतना ही अच्छा फल आता है।"

हंसते-हंसते पास आकर झुककर उसके कंधे पर थपथपाकर शर्मा साहब ने कहा, "एक्सलैंट, आप बहुत विलक्षण हैं।"

इसके बाद, "आपकी मिसेज किधर हैं ?"

सम्मोहित सा कहीं दूर देख रहा है बलिदत्त। अहाते का फाटक खुला पड़ा है। मोटर नहीं। कोई नहीं। जितनी बार सोचता है, उतनी ही बार दिखता है—मानो मोटर चली जा रही है, छोटी होती हुई, दूर जाती चली जा रही है। फिर दिखता है आगे का दृश्य, सरोजिनी अच्छे कपड़े पहने चमड़े का पर्स लटकाये गाड़ी में बैठ रही है। फिर,—चल पड़ी होगी चर्चा, सरोजिनी उस समिति के संबंध में अपनी योजना पर बात कर रही होगी। सदा तैयार, सब बातों में अभ्यस्त, शंका संकोच कुछ नहीं। जब उसने देखा—कहा, "चलिये मिसेज दास आपकी समिति का हाल-चाल देख आयें।"

उसने प्रगति की है, उसे सम्मानित किया गया है। इससे अगली सीढ़ी पर चढ़ा जा सकेगा, अपने आप ही।

फिर भी पुराने संस्कार कहीं आकर उसे खींच लेते हैं, मन उदास हो जाता है, चिंतन गड़बड़ा जाता है, पीछे हटते-हटते किसी दीवार के पास आकर रुक जाता है। सोचता है—क्या है दुख, क्या है सुख ? कभी-कभी रीढ़ की हड्डी से होता हुआ आग का स्रोत सिर तक बह आता है। फिर आता॰ है सात-पांच का विचार, भविष्य की आशाओं का स्वप्न, दानापानी की इमारत का स्वप्न। मुंह थोड़ा खोलकर फाटक से बाहर देख रहा है। आंख खुली तो देखा फाटक चरमरा

रहा है, निता फाटक बंद कर रहा है।

निताई पर गरम होकर बड़े अफसराना अंदाज से बलिदत्त ने गाली दी—"रास्केल,—सब बातों में सुस्त, फाटक एकदम खुला छोड़ दिया, अगर कोई जानवर घुस आये तो बगीचा नहीं उजड़ेगा। तेरा बाप देखेगा ? नानसेंस! जिधर भी निगाह चूकी बस उधर ही घपला, तुम सब हो किस लिए फिर ?—"

"हुजूर—" हथेली रगड़ता हुआ निता कहता है जैसे हाथ धो रहा हो,—"हुजूर मेरा क्या कसूर है इसमें ?"

"चो-ओ-प बे ! फिर जबान लड़ाता है। जानता है मुझे ?" धप-धप पैर पटकता बलिदत्त घर के अंदर चला गया।

जाने-अनजाने अपना मूल्यांकन करते हुए याद आते हैं और लोग, मानो वे ही मन-सेर-छंटाक हों, नाप के बटखरे। जीवन के रस्ते में कांपते कदमों से चलते-चलते हर आदमी अपना भला-बुरा सोचता चलता है, और इसी दौरान ऐसे अनेक नापने के उपकरण। वे सब उसके जाने-पहचाने लोग हैं। छोटे नाप से तौलकर वह अपना उत्कर्ष देखता है, निता चपरासी हर्षा को आंखों के सामने रखकर भरपेट आनंद पाता है। बड़े नाप पर आंखें डालकर देखता है बलिदत्त की तरफ,—वहां वह अपनी थाह नहीं पाता। सूई जैसे मानो ताड़ नाप रहा हो, वैसा ही लगता,—साधारण आदमी अपने समान स्तर का पैमाना चुनता है, जिससे मापने पर कभी बड़ा लगे, कभी छोटा, अनिश्चितता के संदेह में अपनी महत्ता या लघुता के बारे में सदा अपूरणीय रहेगा, सदा खुला। बलिदत्त याद करता है बनु को, शर्मा को, पांडे को।

पांडे,—सोचते ही दबोचता सा लगता है।

याद आती है बोझिल चिंता,—गहरा दर्शन,—आदमी का दिमाग विधाता की रचना का सार,—जीवन का उद्देश्य है,—जीवित रहने में भविष्य के प्रति भी उत्तरदायित्व है, वर्तमान के प्रति तो अवश्य, जीवन आलसी विलास की चीज नहीं, जीवन एक साधन है।

मनुष्य का जीवन पशु की तरह दैवी नियमों से बंधा नहीं है।

शर्मा आराम कुर्सी से झटके से उठकर बरामदे में छटपटा कर एक चक्कर काट आते हैं। कब पांडे का नाम याद आया था ? पता नहीं। पर मन उतर गया है। जीवन भर दूसरों के हाथों के खाते-खाते अपने हाथ खलबलाने लग जाते हैं। कैसा पश्चात्ताप। व्यर्थ ही खाली गहरी सांस। पल-पल में मरण की क्रिया,—जम्हाई। याद आता है, इस धरती पर जीवन मानो एक ही जगह पर ठूंस-ठांस दिया गया हो। चिड़ियां उड़ रही हैं उनका भी स्तर है, चिड़ियों की दुनिया में। केंचुवा रेंगता है,—उसका भी स्तर है उसकी अपनी दुनिया में। घास ढंकी छोटी सी जगह में भी रूप और विन्यास की विषमता के कारण कई सृष्टियां होती हैं। उसी बटखरे में से शाख पत्तों से भरे बरगद को भी देखा जा सकता, उस घास की ऊंचाई एक इंच क्यों न हो। शायद एक स्तर की दुनिया दूसरे स्तर की दुनिया के बारे में सचेतन नहीं, फिर भी संघर्ष का फल भोगती है, केंचुए की दुनिया ईंट के टुकड़े तले दबकर पिस जाती है, छह नंबरी छर्रे की चोट से चिड़ियों की दुनिया में प्रलय छा जाती है। पांडे की भावराशि की दुनिया शर्मा के राजप्रासाद पर उड़ती-उड़ती हठात् मानो मक्खियों के झुंड पर डी. डी. टी. का धुआं बरसा जाती है। चमक पड़ते हैं शर्मा साहब,—चेतना के खोल पर बहाव आ जाता है। पांडे,—पोथी,—जीवन का लक्ष्य,—जीवन का उद्देश्य,—कितनी दूर है वह सब, कितनी दूर ?

उड़ते मेघ बह जाते हैं।

राज-प्रासाद की तरह साहब की कोठी है।

फैला हुआ बगीचा। सुरुचिपूर्ण साज-सजावट।

न धूल, न कलरव, न आंखों में चुभता दारिद्र्य।

पसीना भी नहीं, कोठी के नीचे पसीना सूख जाता है।

हड्डियों की खाद से फूल अच्छे खिलते हैं, गुलाब की एक-एक पंखुड़ी में रक्त भर जाता है।

पसीने की खाद में ही तो दुनिया की सारी कारीगरी है, सारी चतुराई है। यह तो अलंघ्य संस्कार है।

पूजा के लिए बलि, वह भी तो संस्कार है।

सारी रूढ़ियां। थीं, हैं, और रहेंगी—न रहने का सवाल ही नहीं उठता है ?

धंधा-दैन्य की इस विकृत दुनिया के अंदर यह अलकापुरी है, कितनी सुंदर !

यह सुष्ठुशिल्प है, कला के बिना संस्कार क्या ?

पांडे,—वह क्या कला समझता है ?

जीवन के बारे में लोग भाषण देते हैं, लेकिन वे खुद क्या जीवन जीते हैं ? पांडे को कभी जीने का अवसर मिला है ? खाली न पाने वालों की हिंसा का गरल,—लोग उसे ही अपना अभिनव दर्शन कहते हैं।

·सतेज चेहरा, होंठों पर हंसी, धीरे-धीरे सीटी बजाते हुए कोठी के चारों कोनों में घूम आते हैं। सबका यहां उद्देश्य है, लक्ष्य है। बगीचा कहता है—देखो, मेरी तरफ देखो। गुलाब कुंज खोजता है कोई ले जाय, जुही लता की प्रतीक्षा में है, दिन ढल जाने के बाद की, ताकि उसकी छाया के नीचे कोई लुकीछिपी सुगंध आकर कोई रूप याद करा दे। लाल, पीले, लुभावने जितने प्रकार के विलायती फूल,—रंग के अभिमान में गर्वान्नित हैं,—मानो वह चक्षुलज्जाहीन उद्दामभोग की पट्टभूमि निर्मित हुई है। सबका कुछ न कुछ उद्देश्य है। नरम गुदगुदा सोफा, एकांत कमरा, खूबसूरत पर्दा, बगीचे की ओर जाने वाला चौड़ा रास्ता और सामने खुला अहाता। सब केवल जीवन के आनंद के लिए भोग के लिए,—पांडे या उस जैसे और लोग,—वे सब मूर्ख हैं, वे यह कुछ नहीं जानते।

जानने से गेरुवा चोगा खिसक जाता है।

न जानने पर खोज, झगड़े, गलतफहमी, द्वंद्व, जिद्द बने रहते हैं।

अतः,—पहले समझ-बूझ की जरूरत है, भौंकते कुत्ते की समझ है, कम से कम एक वक्त भरपेट खाना।

देने की गरज ?

लोग चाहे जितना कहें, आलोचना करें, पर सुखी सुख भोगकर ही जाएगा, राजा राज करेगा, चाहे हजार कुत्ते भौंके। प्रकृति के सुखी प्राणी चक्षुलज्जा नहीं करते। मूर्ख लोग तो चिल्लायेंगे, अभागे शोर करेंगे, कौन पूछता है उन्हें ?

सोचते-सोचते देह में खून चढ़ जाता है। गर्दन के चारों ओर मांसपेशियां फूल कर तन जाती हैं। पैनी नजर और दृढ़ हो जाती। होंठों की बांक पत्थर की तरह नुकीली। बड़े आईने में उसकी छाया पड़ती है। मर्द है, जोरदार मर्द। इच्छा होती है मुट्ठी में ले लेने की। दबाने की। मसलने की, कस कर उठा कर पटकने की। अतीत के पुश्त-दर-पुश्त-कितने युगों के गुण, मानव जाति के विकास के पथ में समय-समय पर जरूरी देख जो मन ही मन उपजा,—उसी की सत्ता फिर फल

उठती है मन के गहरे में, आदिम मानव का अवतार होता है। वह भोग चाहता है, एकादशी का निर्जल उपवास नहीं। वह अपने उद्देश्य में सफलता चाहता है, उपाय के भले-बुरे पर नहीं अटकता। रोड़े के प्रति असहिष्णु, पूजा के समय आयी देवी की छाया की तरह। चाबुक से पीट-पीटकर रोड़ा हटा देना स्वाभाविक है,—मार-पीटकर बाधा साफ कर देना, दोनों जांघों से जकड़कर घोड़ा कुदा ले जाना, चाहे घोड़ा थक जाये, उसकी देह से पसीना चूता रहे, मुंह में कितना ही झाग आये। उन्मत्त हो सकता है वह घुड़सवार, मंगल ग्रह का रक्तवर्णी पुरुष,—नेपोलियन या हिटलर से उसकी अवस्था भिन्न थी मौके के अभाव के कारण न कि प्रवणता के लिए। उसके पीछे उसका संचित धन, उसका दल-बल उसकी गोष्ठी थी, वही तो उसका आभिजात्य है। 'संभवामि युगे-युगे'। शर्मा साहब बगीचे में घूम रहे हैं।

पंख कटा ज्वालामुखी घूम रहा है।

उसकी सुस्पष्ट देह, सुंदर और सुवेश में है।

जीवन,—उसने खुशहाली दी है और देगा, जीवन सुंदर है।

देह के अंदर कामना की धकधकाती आग, उसकी भूख कभी मिटती नहीं—।

वही तो उसका तेज है, उसका यौवन।

वह भी स्रष्टा का आशीर्वाद है।

यंत्र चल रहा है, जीव भोग करता है, कोई क्षोभ नहीं।

"आंख नहीं, कान नहीं, लग जाये तो मेरा उसमें दोष नहीं।"

फिर भी,—जुल्म-जोर की जरूरत पड़ी नहीं, सब अपने आप घटता गया है।

उन्होंने खुद अनुरोध कर दिया है, जांचा हुआ अर्घ्य लौटाने से निष्ठुरता होती।

उनका हृदय विशाल है,—क्षोभ नहीं, दुख नहीं, कोई पछतावा भी नहीं।

जो मिला है सब उसका प्राप्य है, उसके उस पद के लिए उचित भेंट है। पतंगे आते हैं तो दीपक का क्या दोष?

याद आती है वही शुरुआत,—वे तब पंद्रह के थे। नौकरानी विलासिया। नौकरानी जैसी नहीं, वह साफ-सुथरा पहनती, बाल संवारती, सिर पर सफेद संकड़ा सा कपड़ा बांधती, सुंदर अंग्रेजी बोलती, उसकी चाल में विश्वास और आशा का दंभ था। विलासिया हरदम हंसती रहती।

विलासिया बड़े घर का अलंकार थी, वह 'आया' थी।

उन्हें फिट-फाट सजाये रखने का दायित्व विलासिया पर था।

विलासिया मुंह पोंछ देती, कपड़े पहना देती। विलासिया नहला भी देती। ठीक जब पंद्रह का था, देह के कुछ केंद्र में संवाद गूंज उठते रेडियो का स्विच दबाने की तरह, मन के गहरे की वह वाणी बहुत दूर से संवाद लाती है। वह जानवर के वनैलेपन की वाणी, पशु के सामाजिक भेष किये चेहरे में। पता नहीं, किसी दिन,—पशु की संतान ने याद किया,—विलासिया इतनी परिचर्या करती है क्या यह केवल नौकरानी का ही काम है ?

विलासिया हंस पड़ी थी, याद आती है उसकी ध्वनि, दो रेखा दांतों की, छोटे-छोटे गालों वाला चेहरा, माथे पर फरफराते बाल, सिर पर वही संकड़ा कपड़ा। उसकी आंख या नाक में कोई विशेषता न थी। कट में भी कोई खिंचाव न था। जितना याद आ जाता उतना ही उसका चेहरा, चेहरा हटाकर देखता एक अनजानी लहर, वह बता देती कि विलासिया सिर्फ नौकरानी ही नहीं है। उसका भी एक परिचय है वह मनुष्य है।

पंद्रह वर्ष की उम्र में विलासिया ने परिचित करा दिया था,—

आदमी की देह, आश्चर्य ! वाह-वाह !

विलासिया उसका खिलौना बनी, चेतना की मादलापांजी में लिखी गयी नयी बात, आदमी का खिलौना,—वह सबसे अच्छा है।

किशोर की गोपनप्रियता और कौतूहल के साथ यौवन के उदय काल की इंद्र-धनुषी किरणों का जाल अकेले में समय देखकर उसके अजीब तथ्यों का अनुशीलन करने की चेष्टा करता। पर उसने देखा वह कोई नयी बात नहीं है, लुका-छिपी भी नहीं, सब जानते हैं। अलसाये समाज में धीरे-धीरे प्रयोग करने का सबको समय और अवसर मिला है। लोग कहते नहीं, पर जानते हैं, समझते हैं।

बाहर से रुंधे-बंद घर की छोटी सी बात को भी जो ढंककर रख सकता है, उसी को बड़प्पन कहते हैं। वही तो डिसिप्लिन है। और क्या ?

इसके बाद समय गुजरा, सारे दिन इकट्ठे करें तो स्मृति के अथाह जल में कितने ही चेहरे तैर जायेंगे, डूबेंगे, फिर तैरेंगे। वह बहुत खेला है। खिलौने लेकर फेंक दिये, खो दिये, फिर उठा लिये, बस एक बात समझा है,—दुनिया में आदमी के बीच संबंध खाली खेल का है, विचारना बेकार है, सहेज कर रखना भी झूठा है। खेल ही जीवन है, 'द प्ले इज द थिंग'। तरक्की करता ही गया साहब का

बेटा शर्मा, पीछे नहीं हटा।

कोई आ रहा है ?

"ओह ! मिसेज दास ! क्या बात है ! आइये आइये। शायद आपको विश्वास नहीं होगा कि मैं आप की ही बात सोच रहा था। भावना तो आदमी के व्यक्तिगत अधिकार की चीज है, क्यों है न ? बिना सोचे आदमी जी सकता है ? मुझे आश्चर्य होता है।"

शाम के समय टेनिस, एक ओर शर्मा साहब तथा सरोजिनी, दूसरी ओर रणजीत बाबू और श्याम बाबू। दर्शक हैं मिलि-नीली और कंट्राक्टर सकलतवाला।

रणजीत बाबू हार रहे थे।

रणजीत बाबू चिढ़ते जा रहे थे।

यद्यपि कोई खास कारण न था। श्याम बाबू कालेज के जमाने से ही अच्छे खिलाड़ी थे, उनका उपनाम ही 'खिलाड़ी' पड़ गया था, विराट् चेहरा और जन्नाटेदार खेल से वे सीमेंट से बने टर्फ पर अपना रौब जमा लेते। रणजीत बाबू भी कुशल खिलाड़ी थे।

फिर भी सुनना पड़ रहा है, मिलि-नील हंसी उड़ा रही हैं, पिसी मिर्च की तरह उनकी कड़ी हंसी बार-बार देह से टकराकर तिलमिला देती है, और सकलतवाला, इस साल के बड़े-बड़े कंट्राक्ट निगलने के दिन नजदीक आ गये, वह रणजीत बाबू की सिफारिश का स्तर पार कर शर्मा साहब के स्तर तक आ पहुंचा है, और उत्साह में उनके खेल की जय-जयकार कर रहा है।

शर्मा भी जी खोलकर खेल रहे हैं। उनके व्यक्तित्व की काया ने विस्तार किया है। जोरदार सर्विस, तेज गति और प्लेसिंग की सफाई मिलकर उस गोल गेंद में जादू भर देती हैं, जहां चाहते हैं उधर ही शायद शत्रु को परेशान करने के लिए प्लेस कर देते हैं, कदम-कदम पर स्टाइल दिखाना, पोज बदलते हुए खड़े होना, कभी टेनिस रैकेट हाथ में लेकर त्रिभंगी, कभी एक पैर पर खड़े हो दूसरे को हवा में पूंछ बनाकर दोनों हाथ पांव की तरह फेंककर मारना। दनादन स्ट्रोक्स जैसे

सहज ही लग रहे हैं, बॉल, रैकेट, देह और हवा सब जैसे एकलय हैं। दिल खोल कर खेल हो रहा है। साथ खेल रही है सरोजिनी,—आंख चौड़ी किये नाक फुलाये ओंठ दबाकर तूफान की तरह जब बढ़ती है तो रणजीत बाबू के दिमाग में पके हुए जुकाम की तरह एक ही बात घूमती है—'नथिंग सक्सीड्स लाइक सक्सेस' और वास्तव में शर्मा जीत रहे हैं। मिलि चिल्ला रही है, "और थोड़ी जोर से, भई, और, और।"

रणजीत बाबू सरोजिनी को देख रहे हैं। उसने कितने सुंदर ढंग से निर्भर रहना सीखा है शर्मा पर। उसकी दक्षता पर उसे पूरा विश्वास है। प्रसिद्ध खिलाड़ी श्याम बाबू हैरान हैं उससे। श्याम बाबू को हो क्या गया ?

श्याम बाबू संकुचित हैं, उनके खेल के व्यक्तित्व पर नौकरी के बंधन की बेड़ी पड़ी है, उस ओर जो खेल रहा है वह प्रतिद्वंद्वी ही नहीं है, अफसर भी है। जिसे खिलाड़ी भावना कहा जाता है वह भी ठीक है।

है, सही बात है। पर अवस्था देखकर व्यवस्था होती है। वर्षा देखकर छाता खोला जाता है। दानापानी। इसलिए तो टेनिस खेलने की जरूरत है। उससे बड़े आदमी का सानिध्य मिलता है। सान्निध्य से सुविधा, अगर उठा सके तो। टेनिस खेलकर कई नीचे से ऊपर उठ चुके हैं, क्या वह ऊपर वाले को जीतकर ? उसे लजा कर ? नहीं, उसे खेल खिलाकर। श्याम बाबू की नीति बिलकुल स्पष्ट है। रणजीत बाबू को देखते हैं, अंदर कहीं खिलाड़ी व्यक्तित्व सिर उठाता है। पट लगाम खींचनी पड़ती है। ठीक है, खेलें शर्मा साहब।

और सरोजिनी। जब वह देह फड़फड़ाकर बांह उठाकर स्ट्रोक मारती है, श्याम बाबू देखते भर रह जाते हैं। खुद इधर-उधर हो जाते हैं। खेल के कायदे से नहीं मन के अंदर एक बेकाबू वेग से वे जितना नाचते हैं, सरोजिनी उतना ही हंसती है। नाचने की इच्छा होती है। जाल के उस ओर टेनिस रैकेट उठाकर हंसते-हंसते दुहरी हुई जाती है इस ओर वे कूदते-कूदते, इसी तरह खाली नाचते जाते हैं।

अपने स्ट्रोक ! याद आते हैं, पर मार नहीं पाते। लोगों का कहना है, उनकी मार गोली की तरह होती है, रैकेट की जाली टूट जाती है पर उनके लिए यह सरोजिनी। लेकिन ऐसे ही ठीक है।

अत: रणजीत बाबू देखते हैं अपने बगल में श्याम बाबू का भालू नाच। सामने

शर्मा साहब सांड की तरह झपटते जाते हैं, उस ओर, वह—जैसे कोई तितली हवा में थिरक रही है, हाथों की पहुंच में होकर भी हाथों से बाहर, पकड़ने की इच्छा है और साथ ही न पकड़ पाने पर खीझ बढ़ती जाती है।

कितनी देर तक चलेगा इस तरह ? अब इस खेल में मजा नहीं, दुख है, एक रोग हो गया। विकृत मन से रणजीत बाबू तेजी से सोचते जा रहे हैं। सामाजिक सज्जनता का बंधन और उपद्रव इसी तरह, मन के अंदर जल-भुन कर राख हो जाने पर भी उसका कोई चिह्न-वर्ण दिखाये बिना हंसते-हंसते खेलना होगा। इसी प्रकार खेलते रहना होगा। वे खेलने को बाध्य हैं। और फालतू सज्जनता की बात छोड़ दें तो भी शर्मा उनके अफसर ठहरे, बड़े साहब।

जो हो,—इस खेल का भी अंत है। शर्मा उठ गये। इसके बाद सज्जनता वश सरोजिनी को उसके कोट पहनने में मदद करने की। रणजीत बाबू के इतस्तत: होते-होते बच्चों की तरह सरोजिनी का कोट झटक कर शर्मा जी बोले,—"मुझे आज्ञा दीजिये—" सरोजिनी ने कोट पहन लिया। शर्मा ने कहा,—"आइये, आपको अपने कार्टर तक छोड़ता जाऊं।"

दोनों मोटर में बैठे। रणजीत बाबू अफसर को नमस्कार करते हुए उसी मुद्रा में खड़े रहे। मोटर चली गयी।

सकलतवाला ने पूछा—"आइये, पधारिये, आप यदि एकदम थक नहीं गये तो एक दो सैट और हो जायें—"

खेल खत्म हो चुका है। और कोई नहीं है। अकेले रह गये हैं रणजीत बाबू। अपने घर में बगीचे में आराम कुर्सी में पड़े हुए कहीं दूर देख रहे हैं। पर देखने लायक कुछ है नहीं, कोई नहीं, खाली शून्य में मन लटका हुआ है। चारों ओर का दंभ कट कर शेष रह गया है खाली आधार-अवलंबनहीन, शून्य। उसमें स्थल का आश्रयी सतेज व्यक्तित्व मुड़-तुड़ कर सिकुड़ कर टूट जाता है। उसकी ओट से निकलता है, इस पृथ्वी का नहीं, आकाश का ;—खाली व्योम।

रणजीत बाबू बैठे हैं। केवल वर्तमान के नहीं, भूत के भी। जब आदमी समझता

है, सब शून्य है, खोखला है, सब दो दिन का नहीं दो क्षण का है। संसार उसे कसैला लगता है, खोने-पाने के संबंध में निर्विकार हो जाता है, उदासीन बन जाता है, बस एक पर्दे के बाद दूसरा पर्दा दिखता है,—रूपांतर। धूप-छांव का खेल बढ़ता जा रहा है, अंधेरा दबोचता आ रहा है। आदमी प्रकाश की धार के कण-कण में घुले अंधेरे को देखता है, अंधेरे में प्रकाश देखता है और पाता है अंधेरे और प्रकाश का मिलन हुए बिना रूप की सृष्टि संभव नहीं, अंधेरे बिना ममता की डोर नहीं, फिर सिर उठाकर मुंह मोड़ता है शून्य की ओर,—उसका कुछ नहीं। सब शून्य, वह मानो अंधेरे और प्रकाश के गर्जनपूर्ण रूप के समुद्र पर खाली खोखली विस्तृति मात्र है, वहां सुख नहीं है।

अनादि काल से कितने प्राणी बैठे हैं इस शून्य के ध्यान में योगी बैठे हैं,—जीवन भर, भोगी बैठे हैं केवल आहत अवस्था में, कुछ क्षणों के लिए, उस घड़ी सब एक जैसे हैं। संसार की दृष्टि में वे अति करुण हैं,—जिनके पास कुछ भी नहीं, उनका दल। उनकी दृष्टि में संसार निरर्थक है।

रणजीत बाबू बैठे समय काट रहे हैं। दिन बीत गया। अंधेरा घिरता आ रहा है। आकाश में तारे चमकने लगे हैं। भक्-भक्-झक्-झक् करते अगणित तारे—वे सब नित्य हैं, किंतु अब उन्हें और चारों तरफ के अंधकार के बीच मन की स्थिति से देखना संभव नहीं है। आदमी का विभिन्न व्यक्तित्व प्रकृति की विभिन्न संपद की कामना करता है। रणजीत बाबू अंधेरे को देख रहे हैं।

इस प्रकार एक ध्यान में बैठकर रहने से संभव है आत्मा को कभी सच्चिदानंद चिरंतन का परिचय मिल जाता, दीमक का घर देह बन जाता, आधुनिक समाज-सम्राट राजा का प्राचीन बाल्मीकि हो जाता,—किंतु जीव माटी-पानी की इस मोटी धरती की मध्याकर्षण शक्ति को टाल नहीं सकता। यदि कभी टालकर शहर का ध्यान लगाता है तो वह भी और वेग से और उग्र आलोड़न से उस पृथ्वी में लोट-पोट होने को, पानी की मछली किनारे पर शून्य का ध्यान छोड़ फिर छपाक से डुबकी मार देती है, अतल पानी में।

अंधकार में रणजीत बाबू का क्या व्यक्तित्व !

ओह ! कितनी उग्रता से चिता में लौटी आ रही है। सरोजिनी मानो अपने साथ बेकाबू तूफान, उमड़-घुमड़ गरजता, वज्र की तरह,ता घरघरा संहार का नाद, ध्वंस के प्रहार ले जाती है। उसका परिचय ध्वंसकारी वेग है, फटा-फटा

अंधकार, गड़गड़ाहट की गर्जन उड़ाता एक प्रलयंकर तांडव नृत्य है। इस गोल पृथ्वी के गढ़े जाने के दिन के तूफानों का संपर्क मानो किसी मानव के मन में प्रविष्ठ हो गया, रक्त में टंकार बनकर घुस गया, उसे संस्कार पुश्त-दर-पुश्त गढ़ते आये हैं। पर संस्कार उसे अपसारित कर न सके। सभ्य भेष के नीचे छुपा रहता है, फिर नया चेहरा लेकर निकलता है, वही आदिम तूफान चाहता है, ध्वंस चाहता है। मन-ही-मन में वह भयंकर रूप, मार-काट, मार-पीट घूम रहे हैं। बेकाबू आदिम मानव, नरमुंड की माला लाता है, पाशविक यौनक्षुधा के लिए प्रणय करता है, प्रणय के लिए शत्रु गढ़ता है, प्रेयसी के आगे शत्रु के कटे सिर का उपहार रखता है। पत्थर का खांडा लिये किकिलाता चीखता वही नंगा अरणा मानव, तूफान की तरह घूमता फिर रहा है। उसके लंबे-पैने नाखून देह भर में जानवर के से रोम। वह खोज रहा है शत्रु का कटा सिर, थप थप···

ओह ! सरोजिनी।

गहरी सांस खींच कर सीधे होकर रणजीत बाबू सिगरेट सुलगा रहे हैं। शायद घर के अंदर किसी ने रेडियो खोल दिया है।

"देखता हूं अब गाड़ी लिये बिना काम नहीं चलेगा,—समझी सरोज," बलिदत्त कह रहा था और उत्साह में भरकर सरोजिनी के चेहरे को देखता रह गया। कहां किंचित हंसी थी, वही उसका आत्म-प्रत्यय है।

"भगवान मुस्कराये हैं, और एक सीढ़ी चढ़ जायें, भाग्य में होगा तो हम भी कंपनी के किसी डिपो में बड़े साहब बन जायेंगे—"

"ठीक है, भगवान मुस्कराये हैं," सरोजिनी हंसी थी, "अब मोटर।"

"न क्या ? अब मोटर रखेंगे तो भाई बंधु काट नहीं खायेंगे ? जिसे जैसा भेष शोभा देता ना। इसीलिए तो भगवान ने छप्पन करोड़ प्राणी सीढ़ी-सीढ़ी बनाकर सजा रखे हैं। सब अपने-अपने हाथ के नाप से चौदह बालिश्त हैं।"

"और जिसके हाथ-पैर नहीं ?" सरोजिनी का सवाल था, "उसकी नाप कैसी है ?"

"छिः सरोज, हमारे बाल-बच्चे नहीं हैं, तो बस तुम्हें आदत ही पड़ गयी बात में मस्का लगाकर कहने की। ऐसा कहने से भगवान की निंदा होती है। सब कुछ भगवान की दया है, उन्हीं मंगलमय प्रभु की इच्छा की हम तुम आलोचना करें तो वह द्रोह कहलायेगा।"

"तुम ! इतने बड़े आस्तिक ! सच ! डर है कहीं बैराग्य का रास्ता न पकड़ लो। उई मां, बात-बात में भगवान !"

"सच, सरोज, आजकल नहा-धोकर जब भागवत का अध्याय पढ़ता हूं, मन को बहुत शांति मिलती है। किसने किया ? सोचो जरा, 'करि कराउथाए मुहिं, मो बिना अन्य गति नाहीं[1]।' आरंभ की ओर देखो, कहां कितने नीचे थे। कितने लोगों ने यहां एक साथ नौकरी शुरू की। किसी को विश्वास भी होता था ? सब कुछ कल की तरह लगता है। और आज ? नाव चल रही है। इतना रास्ता पार कर दिया। फिर अंत की बात सोचता हूं। मोटर होगी। एक मकान, जमीन-जायदाद। थोड़ी-बहुत जमा-पूंजी। तुम्हें किसी चीज का अभाव नहीं होगा। दुनिया मुझे दोष नहीं देगी। मैं अपना कर्त्तव्य कर रहा हूं। नहीं, मैं कृतघ्न नहीं हूं, कदम-कदम पर भगवान की दया देख रहा हूं। इतनी दूर आ गये, अभी तो उमर पड़ी है, दम-खम भी है, पहले भगवान का स्मरण करता हूं, और तब अन्य बातें सोचता हूं।"

सरोजिनी हंस कर बोली,—"तुम पहले की बात न सोचकर अंत की बात सोचते हो। सुना है कि अंत की बात सोचने से आदमी साधू बन जाता है। शास्त्रों में लिखा है कि आदमी का अंत केवल श्मशान भूमि में है, जब यह देह जलकर राख हो जाती है, कुछ रहता नहीं। आत्मा उड़ जाती है, साथ कुछ नहीं ले जाती।"

"तो फिर माला फेरो।"

"तुम तो जानती हो एक बार तप टूटने पर फिर तप नहीं होता। वह रास्ता तो बंद हो चुका है, फिर यह सब क्यों ? मोटर खरीदोगे, खरीदो, मकान बड़ा करोगे, करो। साधू मत बनो।"

"नहीं, नहीं, दिल्लगी की बातें छोड़ो। ये देखो कितनी हड़बड़ी है। यहां से डिपो तक धूप में चल-चल कर जाना जितना बुरा दिखता है, उतना ही तकलीफ-

[1]मैं ही करता कराता हूं। मेरे सिवाय अन्य गति नहीं है। (उड़िया भागवत)

देह भी है। कहीं निकले,—अपनी गाड़ी न होने पर कितनी दिक्कत होती है ? तुम तो सब समझती हो, सोचो तो सही,—क्या मोटर की जरूरत नहीं है ?"

"अवश्य है। यह भी कोई पूछने की बात है ? पर यदि खरीदनी है तो फिर मिस्टर शर्मा की तरह बड़ी गाड़ी खरीदो, तब तो कोई बात भी है। जानते हो कितनी आरामदेह है वह। गद्दी पर बैठ कर आदमी को लगता है जैसे शून्य ही शून्य में लुढ़क रहा है, बस इच्छा होती है बैठते ही आंख मूंद लें। वैसी गाड़ी खरीद सकोगे ?"

बलिदत्त ने झटके से देखा। लगा,—कानों में किसी ने गरम लावा उंड़ेल दिया है, छाती से कोई दबा रहा है, सरोजिनी शून्य में धंसती जा रही है। मानो साथ-साथ उसकी अंतरात्मा भी गिरती-खोती जा रही है।

यह उसकी स्त्री है, वह शर्मा की गाड़ी में बैठने के आराम का बखान सकती है।

बलिदत्त चुप रहा।

सरोजिनी ने उसे देखा, अनुभव किया,—चोट निशाने पर लगी है। दबी हंसी हसते हुए बोली,—"चुप कैसे हो गये ? पैसे की बात सोचते होंगे शायद, सच बात है, सब खरीद-फरोख्त अपनी अंटी के बल पर होती है। मिस्टर शर्मा की गाड़ी देखी है, खरीद सकोगे वैसी ?"

"समझीं"—बलिदत्त का स्वर था, 'सरोज' उसके साथ जोड़ न सका क्योंकि 'सरोज' उसका प्यार का नाम है,—बोला, "समझी तुम,—पैसे का अभाव नहीं है, भगवान ने उस बारे में उन्नीस नहीं किया है, पैसा तो हाथ का मैल है, मेहनत नही करनी पड़ेगी, लोग खुद जांच कर घर पर आकर दे जायेंगे। पर पैसा कमाना एक बात है और लोक हंसाई दूसरी बात।"

"लोक हंसाई !" सरोजिनी ने पूछा, भौंहें धनुष की तरह तन गयीं, चेहरे पर कौतूहल की छटाएं खिलाती जगत जयी की तरह चेहरा बनाते हुए कहा, "बड़ी गाड़ी खरीदने से आदमी की लोक हंसाई होती है। तब तो सभी बड़े आदमियों की लोक हंसाई होती होगी। लोग हंसेंगे इसलिए तुम पीछे हटोगे ?"

'तुम' पर उसका जोर कुछ अधिक था।

कितनी सरल ! कितनी निरीह। कितनी सुंदर।

फिर भी बलिदत्त ने उधर देखते हुए अनुभव किया,—विश्लेषण से दिख रहा है,—सरलता के उपादान पर्त दर पर्त जटिलता से परिपूर्ण हैं।

अंदर से जल उठा, सफलतावादी कर्मचारी का वेष खिसक रहा है,—एक साधारण आदमी उभर रहा है। फिर उस चेहरे को देख कर धीरे-धीरे बुझता गया। सरोजिनी हंस रही है। उसी चेहरे को देख, वह सब कुछ भुला सकता है।

सरोजिनी ने ताली बजा कर कहा,—"जोहो, इतने दिनों बाद चेते, मैंने भी कौन-सी जिद लगायी थी कि मोटर खरीदो। बस हरदम फाइल और काम। मोटर होने पर भी तुम्हें लेकर घुमाने ही कितनी दूर ले जा सकूंगी ? बस खाली मेहनत करना जानते हो, जरा भी नहीं जान सके कि सुख क्या है ? काम-काम की जंजाल छोड़ कहीं दो घड़ी घूमने ही चले जाते, खाली, चुपचाप शांति मिलती, आनंद मिलता।"

बलिदत्त खुश हुआ। रोज की तरह अपनी 'कर सकने' की व्याख्या कर अपना ब्यौरा देने लगा,—"जानती नहीं सारी बात। यह मोटर,——क्या यों ही मिल जाती है ? कहा "सेठजी, मोटर लिए बिना बड़ा दिक्कत हो रही है। आप तो खैर खुद ही समझते होंगे मैं जो कह रहा हूं।" कहा—"बाबूजी, बहुत खूब," बस हो गया।

उस रात सकलतवाला के घर पर एक जोरदार पार्टी थी। वास्तव मे वह एक नामी 'सोशल पार्टी' थी जिसके लिए मौजूदा वजह चाहे हो न हो, साल में इधर-उधर कर कई बार होती है, कभी किसी के घर, कभी किसी के घर।

इस पार्टी की विशेषता मानो साधारण लोगों की आंखों में अंगुली घुसेड़ कर बता देती है कि ऊपर वाले का स्तर,—साधारण स्तर से भिन्न है। बाहर उसकी ध्वनि है, "हटो, हटो, बचो, दफा हो जाओ।" बड़ी सड़क पर बड़ा अहाता; अंदर चौड़ा खाली मैदान, बड़ा बगीचा। ढलान पर बड़ा मकान। रास्ते पर बड़ा फाटक, फाटक के पास खुंखरी लिए गोरखा पहरेदार। अंदर से दिखायी देता जीभ लप-लपाता सतर्क कुत्ता। "हटो, हटो, यहां काम नहीं।" कुछ दूरी पर धूल भरी

गंदली बस्ती के एक के साथ एक सटे हुए घर, ठेलपेल से भरे।

इस किरच-मिरच की दुनिया में धनवानों के खानदानी दुर्ग थे, है और रहते आये हैं, उनकी विशिष्टता भी जरूरी है।

अंदर से रंग-रंगीला प्रकाश। चौड़े लाल रास्ते के किनारे गाड़ियों की लंबी कतार, रोशनी में चमकती उनकी पीठ। राहगीर की कल्पना का इंद्र भवन। कुछ न सही दूर से देख कर आंख सेंकने का सुख तो मिल ही जाता है, यथार्थ खोज कर बता देता है कि पांच अंगुलियां समान नहीं हैं, इसके अलावा, पूर्वजन्म भाग्य, युगधर्म।—कई बातें हैं—

यह भाग्य भी तो पूर्वजन्म का फल ही है,—जगह-जगह होता है भूकंप। आदमी दब कर मर जाते हैं, अकाल पड़ता है। मनुषता की लीर फट-फट कर गिरती है, मिट्टी में मिल जाती है, बाट का बटोही अपनी पांच अंगुलियों की ओर देख कर विधि के अलंघनीय नियम को सिर झुका कर ग्रहण कर लेता है। दोनों ओर यह इंद्रभवनी शोभा, सामने लंबा फैला सुख-दुख का शाश्वत रास्ता।

अंदर हाल में एक लंबी टेबल पड़ी है, इस सिरे से उस सिरे तक चमचमाती फेन की तरह सफेद चादर। जगह-जगह कढ़ाई किये हुए फूल और बेल-बूटों के गुच्छे दिख रहे हैं मानो टेबल पर एक सजा-सजाया बगीचा है। जरूरत देख कर दुनिया के चलन की वर्षा की ओर छाता दिखाने की तरह अपने को अतिथि सेवा के लिए अर्पित कर दिया है। उसी के बीच में अनेक तरह की कला-कारीगरी पूर्ण विविध थालियों में रंग-बिरंगे खाद्य-पदार्थ। कीमती साड़ी और कीमती पोशाक पहने कुर्सियों की कतार, सजी दीवारें और चांदनी के नीचे। सब जगह एक माया-लोक-सी सजावट है। रस, गंध और स्वाद का सुंदर समावेश। मायावी की तरह विशिष्ट अतिथि दल। सच मानो ऐश्वर्यपूर्ण स्वर्ण लंका का भोजन कक्ष है,—मायापुरी का ऐश्वर्यराज दानवदल। थे, हैं।

भोज चल रहा है, गप्पें चल रही हैं।

एक छोटे से अंगूर के गुच्छे को मुंह के करीब लाते हुए धन कुबेर सकलतवाला ने कहा—

"ब्लैक,—काला बजार,—यह सब क्या है। ईर्ष्यालु लोग नाम देते हैं, बुद्धि-हीन लोग यह सब बातें सुनते हैं, व्यापार के साथ जिनका कोई संबंध नहीं, वे ही

इसकी दुहाई देते हैं, चारों ओर बस ब्लैक, काला बाजार, घूसखोरी का हल्ला। एक झूठा भय, लोग जीभ पर रटते हुए चिल्लाते हैं, अखबार में छापते हैं, हो-हल्ला सुन कर साधारण आदमी की छाती फट जाती है। लोग समझते ही नहीं, अरे दुकानदारी हमेशा दुकानदारी है, क्या हुआ ?"

दूसरी तरफ पन्नालाल, प्रसिद्ध व्यापारी, मोटा-सोटा कद्दावर आदमी, गंभीर हो खाना जोर-जोर से चबा रहे थे, जल्दबाजी में निगलते-निगलते गला फूल उठता है। बोले,—"सही बात है। दुकानदारी में नफा है तो नुकसान भी। घाटे के समय वह जमीन चाटता रह जाता है तो नफे के समय दो पैसा मुनाफा कमाने का उसे हक है। व्यापारी दूसरे की क्षति नहीं चाहता, हम तो सब का फायदा ही खोजते हैं। लोगों का भला हो, गौ जाति का भला हो, सब को लाभ और शुभ मिले, सबको मुनाफा मिले, हे भगवान ! लेकिन गाली देने वाले लोग भी मजबूत हैं। दुनिया की आदत ही वैसी हो गयी।"

सकलतवाला हंस कर बोले, "बात सही है, ज्यादा गालियां आपको ही सुननी पड़ती हैं।"

"वह तो मेरी तकदीर है," पन्नालाल ने कहा, "जिसने मांगा चंदा दिया, गोसेवा हो चाहे नरसेवा हो, चंदे-चिट्ठे में जो जाता है, मेरा मन ही जानता है। उस पर गरीब-दरीब किसी को कैसे सेवा की, किसी को मिठाई खिलायी—"

सकलतवाला बोले,—"अब यह बात उठी है, वह बाबू, जिसने तुम्हारा काम किया, उसे कुछ दोगे नहीं ? क्यों वह तुम्हारे लिए रात-दिन खटेगा ? सब का काम पीछे रख कर तुम्हारा काम पहले करेगा ? उसे देना तो पुण्य कार्य है। देने पर कहोगे बिगड़ते हो, न देने पर कहोगे घूसखोरी करते हो। इस दुनिया में पुण्य नहीं, सत नहीं, सत का तो नाम ही डूब गया—"

"राम-राम कहो," पन्नालाल ने बात पकड़ी,—"ऐसी दुनिया नहीं टिकेगी। चंदा देकर, गरीब आदमी को मिठाई खिला कर जो बचा उसमें से बड़ा भाग तो इनकम टैक्स काट ले गया। क्या हम मुनाफा कर रहे हैं ? लोग आयें, अंदर का देखें। मेहनत किये बिना तो कोई देगा नहीं। कुली मेहनत करके घर लाता है अपने लिए, हम मेहनत करते हैं दूसरों के लिए। जो बचा, सब इस देश का ही तो, यहीं व्यापार में लगेगा, दस आदमी मजूरी पायेंगे, काम पायेंगे। कोई साथ बांध कर नहीं ले जायेगा ?"

"सो तो ठीक है।"

बलिदत्त ने श्याम बाबू को कुहनी मारी,—"लो सुन लो श्याम बाबू, व्यापार की बड़ी-बड़ी नीतियां। श्याम बाबू ! ध्यान से सुनना, इन लोगों का कंपनी के साथ गहरा संबंध है। अच्छा, शर्मा साहब नहीं आये, रणजीत बाबू भी नहीं आये। दोनों शिकार पर गये थे क्या हुआ उनका ?"

"वे सब बड़ी-बड़ी बातें हैं,—" श्याम बाबू ने उत्तर दिया, वे खाने में व्यस्त थे।

"शाम को ही लौट आने की बात थी, कम से कम मिस्टर शर्मा,—देखिये न, जमता ही नहीं बिलकुल।"

"हूं—" श्याम बाबू की आंखों में खाना है।

पास ही पास दो महिलाएं भी हैं, कुमारी नाग और श्रीमती पाल। चर्चा हो रही है रवींद्र संगीत की, मानो भोजन के बीच चर्चा के माध्यम से उसके नये पाये गये तथ्यों का स्वाद लेने की चेष्टा में हैं।

"रवींद्र संगीत कैसे,—" कुमारी नाग ने कहा। वाक्य अधूरा रख अपने नाखून देखने लगी। रंग किये लंबे-लंबे। वहां उत्तर नहीं था।

"उस संगीत में है अनंत प्रकाश, निर्बाध पवन और अस्फुट श्यामलिमा। रवींद्र संगीत ! वह अतुलनीय है !" श्रीमती पाल ने जोड़ा।

"जितनी बार मैं रवींद्र संगीत में मन लगाती हूं, मेरे अंदर ऐसा लगता है," कुमारी नाग ने कहा,—"जिसे भाषा के माध्यम से प्रकाशित नहीं किया जा सकता, वह भाषा से आगे है।" बहुत कुछ कह सकी हैं यह सोच कर हंसते-हंसते गोल चेहरे को उठाया श्रीमती पाल की तरफ। किंतु श्रीमती पाल स्वप्न में तैरती-सी धीरे-धीरे बोलीं,—

"क्या होता है ? यह मैं कह सकती हूं। मानो कुछ कोमल कठिन मोटा-पतला चारों ओर लिपट जाता है। हृदय में लगता है मानो सब कुछ पिघल गया है, स्थूल और सूक्ष्म, सूक्ष्म और स्थूल, सब एकाकार होकर असीम पथ में वाक्रुद्ध हो दौड़ रहे हैं। वही रवींद्र संगीत, असीम का स्पंदन।"

श्रीमती पाल ने कुमारी नाग की तरफ तिरछी नजर से देखकर चेहरा स्थिर कर लिया। यह उनकी एक स्वाभाविक भंगिमा है, किसी के साथ बातचीत के समय सामने वाला पक्ष उनके चेहरे का दस-बारह आने भाग देख सकता है। दर्पण में

देखने पर उतना ही सुंदर, उसकी सुस्पष्ट रेखाएं, सामने से देखने पर उनकी आंखें तिरछी दिखती हैं, चेहरे के चित्र के बीच उनकी नजर छाया की तरह दिखती है, नातिदीर्घ ग्रीवा, हलके झुक कर एक प्रकार चक्र-दीर्घता की सृष्टि करती है। सामने वाले को लगता है जैसे कोई पक्षी है।

तार यंत्र की ध्वनि से वे झूमती-झूमती-सी अपनी मातृभाषा अंग्रेजी उच्चारण से बोलती हैं, 'र' का उच्चारण करती हैं 'अ' की तरह, अकारांत शब्द को जरा टक कर उकारांत कर देती हैं, फलतः एक अपूर्व शब्द समावेश पैदा होता है।

श्रीमती पाल मात्र भाषण देने की तरह विज्ञोक्ति करती हैं,—

"यही है रवींद्र संगीत, असीम का स्पंदन, समझा जा सकता है, कहा नहीं जा सकता, क्यों आप कुछ कहेंगी ?"

कुमारी नाग विह्वल होकर बोल उठीं, "बहुत खूब, बहुत सुंदर।"

दूर से उस ओर चेहरा घुमा कर देख रहे हैं नव किशोर बाबू। पलक झपकने में देर हो रही है। श्यामल चेहरे पर पाउडर और क्रीम मिलकर एक नये रंग का स्थिर मुखौटा। सिर के तेल से चटपटाते लंबे बालों के बीच से दो भागों में बंट कर मांग निकली है। गर्दन पर ढीली पंजाबी फूल कढ़ी चादर लटक रही है। आमने-सामने पीछे से चेतना में बारंबार खींचातानी धक्का-मुक्का होकर कभी श्रीमती पाल कांपती हैं तो कभी कुमारी नाग, कभी टेबल और कभी उस तरफ के और लोग। रेल-पेल से पूरी देह पर कढ़ाई की गयी साड़ी की लहर कांपती, पतली बालू की तरह चमड़े पर कोमल तेज कांपता, नदी की पतली धारा की तरह पतली चोटी कांपती, खंभे की तरह दंभ वाले गर्दन पर गोल जूड़ा कांपता, सच मानो घास की इस भूमि पर मल्लिका फूल खिले हैं, क्रीम और इत्र की सुगंध कांपती है, बांह पर गहरे सलेटी रोम के साथ पाव रोटी की सुगंध मिली कल्पना कांपती है, सुंदर मूर्ति की काया को लेकर बारंबार खेल मन ही मन मूर्ति का आवरण खोल, छील-छील कर थरथराती छाती में एक प्रकार के रुग्ण स्वाद की अनुभूति कांपती है। नव किशोर बाबू आंखों के रास्ते भोज का मजा ले रहे हैं, गोल चेहरे पर आधी हंसी की तरह थोड़ा खुला मुंह, जिसमें जीभ है, लंबे-लंबे चमकते दांत दिख रहे हैं। वे एक समाजविहारी खुश मिजाज छवि हैं।

कोई रोक-टोक नहीं, सब भोज में जुटे हैं।

कोई छीना-झपटी नहीं, सब में मनाने का अंदाज है—"लीजिये न और एक टुकड़ा—"

टेबल पर सब साथी-साथी, कोई मनाही नहीं, कोई बाधा नहीं, सब अपने-अपने रास्ते पर। सुश्रृंखल समाज, वह व्यक्ति के व्यक्तित्व को निरापद देखता है।

दीनबंधु बाबू सिर झुकाये खाने में लगे हैं, खाते-खाते कीमत का हिसाब भी लगा लेते हैं, कीमती चीजों पर खास निगाह है। हरि बाबू ने खाने-पीने पर चर्चा उठायी है—"हें: हे: हे: हे:, दीनबंधु बाबू बहुत बुद्धिमान हैं, हें हें हें—"

"राम आ नहीं सका," दीनबंधु बाबू ने कहा, "लिखा है, चाचा, विलायत जाने की चेष्टा में व्यस्त हूं। मझले साहब अपनी बेटी की बात डालने की चेष्टा कर रहे हैं, चेष्टा तो मैंने की यथासाध्य, पर वह लड़की क्या जमेगी ? वह तो विलायत जाने के लिए पागल है।"

"चार आंखें करा दीजिये," धनेश्वर बाबू ने कहा,—"न करा सकें तो मुझे बताइये। किसी सुअवसर पर उसका नृत्य नहीं दिखा सकते ? देखने वाले झूम उठते हैं, एकदम शांत, सबकी आंखों की तृष्णा मिटाने के लिए जब वह नाचती है, भावों की लहरें उठाती है। बुलाइये अपने राम को, अगले महीने तो एक प्रोग्राम भी है, देखिये उस लहर में राम कहां बह जायेगा, उसे फिर राजी करने की जरूरत पड़ेगी ही नहीं।"

"हें:, राम आयेगा। वह क्या हमारी तरह है ? वह तो विलायत के नाम से पागल है।"

हरि बाबू ने कहा,—"आप ऐसे न कहें, जैसे भी हो काम करा दीजिए। आप तो जानते हैं, एक विवाह कराना एक मंदिर बनाने जितना पुण्य कार्य होता है। रही बात विलायत जाने की तो मझले साहेब के पास बात डाली जाये, अच्छा पात्र मिलेगा तो क्यों नहीं देंगे ? क्या उनके पास नहीं है ? कहें तो प्रकारांतर में बात डाली जाये। क्यों, मैं कहूं ?"

"मेरी हिम्मत होती नहीं, मुझे 'चाचा' बोलकर पुकारता है वह, पर मैं उसका अपना कुछ नहीं।"

फिर नौकरी की बात, उसके लिए कोई जगह भली-बुरी नहीं, मौका-बेमौका नहीं, रोज के नये दानापानी के धंधे की बात, उसकी चर्चा अपने-आप आती है।

सरोजिनी टेबल पर बैठी है। एक ओर श्याम बाबू हैं, उनकी भूख बहुत गहरी है। टेबल के नीचे बीच-बीच में उनके बलिष्ठ व्यक्तित्व का अनुभव किया जा सकता है, पर वे ज्यादा बातें नहीं करते, खाने में तल्लीन हैं। केवल कभी-कभी उनकी मोटी-मोटी आंखों में तिरछी दृष्टि हिल जाती है, अनबुझी भूख दिखा कर जिद कर मांग बैठती हैं, खाना, खाना और खाना। क्षुधा मिटाने की यह कातर जिद छिप कर आती है एक मजाक के वेश में, भूख को भूख पुकारती है, खूब गोपन में पुकारती है, वहां चोरी से छिपे-छिपे जाने का प्रबंध। पर सरोजिनी उन्मन है।

वह खूब सज-संवर कर आयी थी, बातें टेबल पर कहने के लिए सारी बातें तैयार करके आयी थी —मानो टेबल भोज कोई दुर्लभ सम्मेलन हो। इतने साज, किसलिए ? केवल खाने के लिए ?

भीड़ में आज मानो वह खिल नहीं पाती। एक चित्र का कोई अंश मात्र है, चित्र का केंद्र नहीं, चित्र का सब कुछ नहीं। सब मिल कर संगीत का कोई समन्वय नहीं, केवल गोलमाल। गोलमाल में भी नहीं। वह कोई विशेष ध्वनि भी नहीं, उसकी विशेषता ढंकी पड़ी है।

यहां मानो वह कुछ नहीं, क्योंकि अपने आप कोई कोई ही हो सकता है, नहीं तो और लोग, किसी एक को विशेषता देते हैं, उन्हीं की खींचातानी में उसकी विशेषता बाहर निकल आती है। यहां वैसी खींचातानी नही, सब दो-दो, चार-चार होकर अपने-अपने दायरे में बंधे हैं, वह कुछ नहीं है। शर्मा नहीं, रणजीत बाबू भी नहीं। बाहर मेघ घुमड़ रहे हैं।

कितनी जल्दी बुझती जा रही हैं तारों की बत्तियां।

घटा टोप अंधकार। सांय-सांय करती हवा बहने लगी है।

काले आकाश के माथे पर सहस्र फन लपलपाती सहस्र धार से बिजली चमक रही है।

आज तेज सहा नहीं जाता।

एक संकेत। उसके बाद आकाश के कितने अंधेरे कोनों से एक साथ गड़-गड़ कर गंभीरता के साथ मेघ के डमरू बज उठते हैं। वज्र चड़-चड़ कर रहा है। देखते ही देखते क्षण भर में पृथ्वी उज्ज्वल हो जाती है फिर अंधेरा हो जाता है फिर उजाला, फिर अंधेरा, पवन सन-सन करता बह रहा है, बाहर प्रकृति का कैसा

उन्मत्त नाच चल रहा है।

रूप नहीं, केवल वेग है।

छाती थर्रा उठती है। क्यों? वह क्या भय है? क्या वह संकेत है? और पहचान में नही आता, खाली घना अंधकार, सिर हिला-हिला कर नाचता सांय-सांय करता पवन।

चम्मच लिये बैठी है सरोजिनी की देह। मन यहां नहीं है। मन तो उड़ गया है। उड़ता फिर रहा है मृत्यु की दुनिया में। कभी क्षीण चेतना प्रवाह में वह सोचती है मृत्यु-मृत्यु क्यों? फिर उड़ जाती है। यही संकेत, उस मृत्यु का ही तो है। कड़-कड़, चड़-चड़, यह तूफान, यह बिजली, सब मृत्यु की पुकार हैं। गांव का श्मशान, जमीन पर जले कोयले, अकेला बरगद गीधों का घर। टीले पर नागफनी और बबूल के कुछ झुरमुट, केवल मृत्यु-मृत्यु। पास ही जंगल दिखता है। वहां भी यही पवन, यही कड़कड़ाहट। बड़े-बड़े पेड़ कड़-कड़ करते टूटते जा रहे हैं। बड़े पेड़ों से बिजली टकरा रही है। निमिष में जंगल मर गया है। बाहर प्रकाश-अंधेरा, अंधेरा-प्रकाश, कितनी जल्दी-जल्दी, ओह!

छाती धक् से रह गयी। मृत्यु देख कर चिड़िया अपने घोंसले की ओर लौट आती है। क्यों, मृत्यु क्यों? ये लोग तो बैठे हैं, गप्पें हांक रहे हैं, खाने में लगे हैं।

सामने जीवन झिलमिला रहा, कहां है मृत्यु, कहां?

गहरी सांस खींची, याद आया शर्मा और रणजीत बाबू दोनों शिकार पर निकले हैं। हो सकता है उसके ही मनोरंजन के लिए,—औरत के देखते ही पुरुष कितनी जल्दी फूल उठता है, मां री! सच स्वर्ग का चांद पकड़ लायेंगे,—हम इतना करवा सकती हैं? इतनी पक्की हैं। कम हैं कम!

यह पुरुष जात, सब समान हैं। एक जैसे फूलने वाले, गप्प उड़ाने वाले, सब समान हैं। देखते ही, कटास की-सी आंखें पैरों में लिपट जाने की-सी चाटुता, निगल जाने की-सी निगाह, ताली पर नाचने को मन,—सब। सब एक जैसे भीरू, केवल मुंह से कठोर होते हैं, सिर्फ लोक-दिखावे के लिए, असल कड़क नहीं, यद्यपि पिघलने का ताप सबका समान नहीं। वही एक ही बात बखानते हैं, सभी, यद्यपि उपाय भिन्न-भिन्न हैं। औरत को देखने पर कोई विज्ञ की तरह ज्ञान का भाषण देता है, कोई विनय का अवतार बन जाता है, कोई आत्म प्रशंसा करता है, प्रकारांतर में सब उस दरिद्र भिखारी 'मैं' पन का अभिव्यक्तिकरण। औरत

देखने पर 'मैं' पेट दिखा कर थाल फैला कर भीख मांगता है, भूख बढ़ जाती है। बचपन से वही मां मां की धारणा, मां को देखता है तो भूख लगती है, इच्छा होती है जिद् करने की, सब बातों में मां, आश्रय,—बचपन का वही मां का संस्कार मन से नहीं मिटता, औरत को देखने पर परोक्ष में याद आ जाता है। पुरुष का बच्चा पुरुष नहीं होता, वह औरत के पल्लू में बंधा खिलौना बन जाता है। अपने बारे में बढ़ा-चढ़ा कर चाहे जितना कहे, भीम की ताकत को हिडिंबा तो जरूर पहचानती है।

वैसे ही ये लोग, न पहचानने तक मन में कितना कौतूहल रहता है, अधमुंदे किवाड़ की ओट से टेढ़ी आंखें गड़ा कर देखते रहेंगे, देखने पर मिट्टी के घड़े से भाप की तरह उठ आती है। कैसा स्वप्न ! कितना मोह ! उठ कर रक्त में बिंध जाता है, इसके बाद गुन-गुन की कैसी महक। और पहचानने पर लगता है वही मिट्टी के घड़े, सब एक जैसे। वैचित्र्य के अभाव में दम घुटा-घुटा लगता है। और पल नहीं, क्षण नहीं—जितना मतलब बस ? मन के खयालों से उन्हें खिलाया जा सकता है, उसमें बहादुरी नहीं, बांह उठाने पर उनकी आंखो में बंधन लगाया जा सकता है। उसमें गौरव नहीं है, केवल ज्वाला है।

फिर क्यों ?

सीढ़ी-दर-सीढ़ी चढ़ते-चढ़ते सरोजिनी अटक गयी अपने ही प्रश्न के पास आकर। किस अतीत का कोने में पड़ा व्यक्तित्व, जो उसका ही एक अलग रूप है, सरल, सतेज, ग्रामीण सरोजिनी, कोई बिसरी हुई सरोजिनी,—अंधेरे में रह कर धूप की प्रचंडता से चमड़ी का रंग उज्ज्वल रखा, भाग्य की दुहाई देकर अवस्था की दरिद्रता में भी जीने की पद्म सुवास पायी थी, जिसके लिए वह तड़पी नहीं थी, आतुरता नहीं थी उसमें। जिन्हे जानती है उन्हीं देवताओं की कल्पना कर जमीन पर सिर टेकते हुए हंसते-हंसते इस गृहस्थी मे जीवन बिताया है उसने। पिछले दिनों वह कौन-सी अनपहचानी सरोजिनी थी, लज्जावती घर-गृहस्थी की कोई अनजान स्त्री मात्र।

आज वही सरोजिनी अनाहूत आंखों पर अधिकार कर बैठती है, चारों ओर देख कर बार-बार दुआ दे रही है,—वह यहां क्यों ? यह दोनों ओर से, टेबल को घेरे मरे हुए लोगों का दल, विचित्र नहीं, पूर्ण नहीं, खाली घड़ों का दल, देखते ही पता चल जाता है, यदि कुछ है तो हल्की-फुल्की दुरभिसंधि, उसके ठिकाने का

भी सहज ही पता चल जाता है।

फिर चमकी सहस्र फन लिए बिजली, अवाक् हो बैठी है आज सरोजिनी। पुरानी नहीं, एकदम नयी। चेहरे पर अनमनेपन और शांति की छाया, भावना बहकी-बहकी, क्या चाहती है समझ में नहीं आता। क्यों का कोई उत्तर नहीं, चल रही है तो चल रही है, बैठी है तो गुड़िया-सी। समाज का आलंब जो है, उसे बैठना ही पड़ेगा।

फिर भी उस गुड़िया की आंखें दप-दपा कर जल उठती हैं, चेतना जाग उठती है, याद आता है—शर्मा नहीं हैं, रणजीत बाबू भी नही।

"आप ने तो और कुछ लिया ही नहीं मिसेज दास !—"

"ओह ! बहुत खा चुकी हूं।" सरोजिनी हंस पड़ी अपनी रोज की अभ्यस्त हंसी, उसी से टेबल पर रोशनी होती है।

आधी रात, अष्टमी का आधा चांद उगा था, काले सलेटी मेघों के टुकड़े। तैर रहे थे। उनके नीचे मिट्टी की ढलान, पानी के गड्ढे, पेड़ों की दिगंत तोड़ती लंबी-लंबी रेखायें,—हल्के प्रकाश में कभी दिख जाती, कभी मिट जाती, कभी टिम-टिमा जाती। अष्टमी का आधा चांद, बहते मेघों की पर्त के पर्दों पर कभी छिप जाता है कभी नहीं, कभी होने न होने के बीच में। उसी अनुपात में पृथ्वी का दृश्य। यह सब सचमुच क्या असत्य है, उसी सत्य-असत्य से फलित हुई है यह माया, कभी लगता है, बिलकुल परिचित है, फिर एकदम अनजानी।

सुनसान रास्ते पर दो गाडियां एक-दूसरी के पीछे चली जा रही हैं—अगली गाड़ी में पड़ी है मिस्टर शर्मा की खून से लथपथ देह। पास बैठे बाहर देख रहे हैं रणजीत बाबू, बाहर वह मायावी रात, बिलकुल परिचित फिर एकदम अनजान। उसमें बड़ी-बड़ी छायाएं दृश्य मिटा कर उड़ती जा रही हैं, अंधकार में दूर देखने पर लगता है कहीं हल्का-फुल्का प्रकाश तेज हो रहा है, फिर सब बुझ कर नीला-नीला हो जाता है, अपने मन की खिन्नता मानो बहुत बड़ी होकर आकार धारण कर दबोच लेती है।

यही तो परिचित शहर की सीमा है, घनी बाड़ की कतार, परिचित पोखर, पुराना ईंट का भट्ठा। फिर कंपनी की फैक्टरियां, छोटे-छोटे पर्वतों की तरह आदमी के बनाये मकान, नीला रास्ता, परिचित घर, परिचित मैदान। पास में मिस्टर शर्मा की खून सनी देह। वह क्या बचेगा ? छाती में गोली खाकर भी आदमी बच सकता है ? कुछ ही घंटे की बात है। इसके बाद लोथ, मुर्दा। सब झूठ। सब स्वप्न। इस भयानक झूठे स्वप्न के अंदर वह मुर्दा लिए उड़ा जा रहा है—रणजीत नहीं—मृत्यु का दूत है।

कितना चुपचाप। सब सुनसान। भाषा नहीं। भावना घूम आती है पुरानी जगह—भाषा नहीं। यह सच नहीं है। उज्ज्वल प्रकाश, रंग रंगीले दृश्य, सुस्पष्ट आकार। कहां है वह सब ? और अंधेरे में एक रक्ताक्त मुर्दे का जुलूस। गाड़ी दौड़ रही है।

देह में तारुण्य, देह का सौंदर्य, धूप के तेज पत्थर में से कूदने वाले झरने की तरह जीवन का उल्लास। कुछ नहीं, सिर्फ सलेटी चांद, काली रात।

रणजीत बाबू पागल की तरह तेज आंखों से बाहर देख रहे है, अनजाने ही अपने सिर के बालों को खींच रहे हैं, कमीज की छाती खुली है, फिर भी शांति नहीं, गला दबा जा रहा है, चेहरा झुलस रहा है, आर्त्त प्राण निष्कृति खोज रहे हैं,—ओह, ओह, कब खत्म होगा ? कब ?

सूना रास्ता। मोटर की रोशनी से घरों के अहाते और दरवाजे साफ चमक कर दिख जाते हैं, मानो पीछे भाग रहे हैं, घरों के मालिकों की नेम प्लेटें चमक कर बुझ जाती हैं। परिचित दृश्य देखकर तूफान गति से लौटा आता है अपना परिचित जीवन, व्याकुलता बढ़ती जा रही है, लगता है अपने घर के दरवाजे पर खुद नदी में तैर जाते हैं, नाव बात ही नहीं मानती।

इसी व्याकुलता के बीच याद आ गयी सरोजिनी। याद आ गया,—अब वह और शर्मा के साथ घूमने नहीं जायेगी, शर्मा के साथ टेनिस नहीं खेलेगी, पड़ा है यही अचेतन मुर्दा,—यही घेरे हुए था सरोजिनी को।

वह चौंक पड़ा। मि. शर्मा कुछ बड़बड़ा रहे हैं।

सच, क्या उनके मन की बात जान गये हैं। रणजीत बाबू ने चोर की तरह चारों ओर देखा ? यह क्या ? एक आत्मग्लानि। पसीना टपक आता है, दूर बुझती जा रही है सरोजिनी।

सब झूठ। अब भी झूठ। पिछली मोटर में जो आ रहे हैं, उन्होंने देखा है, वे जानते हैं। घुमा फिरा कर रणजीत मन ही मन कड़ा कर मानो कह रहे हैं, "मैं निर्दोष हूं, इसके लिए मैं जिम्मेवार नहीं हू।" मानो कोई अभियोग लगा कर कह रहा है, चेहरे के सामने तर्जनी उठा कर, मन का सारा बल एकत्र कर वे उत्तर दे रहे है,—"मैं दोषी नही, मैं जिम्मेवार नहीं।"

दोषी नहीं। अपनी आवाज खुद को ही खोखली लग रही है। छाती के नीचे जितनी युक्तिया-तर्क हैं, सब ढह रहे हैं,—यही तो, पिछली मोटर में जो हैं, वे देख रहे हैं। शर्मा साहब मेरी बंदूक उठा कर देख रहे थे, उसका वजन, उसकी गढ़न परख रहे थे। बंदूक में गोली थी। सेफ्टी मैच कैसे ढीली हो गयी थी, हठात् पता नहीं, कैसे घोड़े पर हाथ पड गया। "बदूक लोडेड है सर—" कहते-कहते एक विकट विस्फोट, एक दैवी दुर्घटना, एक एक्सिडेट। ओह ! इसके बाद,—हे भगवान, निर्दोष को सजा, इसी तरह करते हो ? अकाल मृत्यु। शर्मा साहेब। देवता जैसे आदमी, आह।

कहां, अपना व्यक्तित्व तो समर्थन नहीं करता अपनी बात का। फटा जा रहा है। प्राण भय। बंदूक में गोली क्यों थी ? किसने रखी थी वहां ? उसकी सेफ्टी कैच कैसे खुल गया था ? मन मे क्यों थी कुतूहल युक्त प्रतीक्षा ? सुबह, उसे क्या मिली न थी शाम की सूचना ? दूर वह देखो सरोजिनी की छाया। शर्मा होगा गीध-सियारों का भोजन, ओह ! कितना भय।

अस्पताल। मोटर खड़ी हुई। गंभीर हो सब उतर गये। अचानक भाग-दौड़। शर्मा का शरीर स्ट्रेचर पर लिटाया गया। सफेद फर-फराती नर्से, सफेद चमचमाते चेहरों वाले डाक्टर, अस्पताल की बिजली-बत्ती, सब अलीक, सब स्वप्न सा है। उसी स्वप्न में मि. शर्मा बिलबिला उठे, विकृत, अस्पष्ट, भाषा में,—

"ओह,—कह देना बलिदत्त दास को, मैं भूला नही, उनके लिए लिख दिया है। मेरे ही लिखने से वे कंपनी के बड़े साहब होंगे, मेरे लिखने से उनका प्रमोशन होगा। कह देंगे न ? फिर तुम आना। जरूर।"

मुंह टेढ़ाकर रणजीत बाबू खड़े रहे। यही शर्मा हैं। आंखें मुंदी हैं। और शब्द नहीं। यह जिंदा हैं या मुर्दा। डाक्टर उनकी छाती पर झुके हैं। सब निःशब्द है। केवल अस्पताल के पंखे का शब्द। बाहर वही रात। बहुत अंधेरा है। सब झूठ, सब स्वप्न। उसी में हिम्मत कर खड़े रहना होगा पत्थर की तरह। पर अपने से

मुक्ति नहीं मिलती। अंदर दीवारें गिर रही हैं, पुश्ते खिसक रहे हैं, सब दब रहा है, सब चूर-चूर होता जा रहा है। क्या यह जीवन है ? क्या यह भय है ? यह यंत्रणा है ? आंख उठाने पर दिखता हूं—सब झूठ—सब स्वप्न, बाहर कितना अंधेरा है ! स्वप्न मान लेने पर—जीवन कितने सुंदर ढंग से जिया जा सकता है। खुद रहकर भी न होने की तरह। सिर्फ भूल जाना, परिणाम में भागीदार नहीं, कर्मफल से बंधे नहीं। अंधेरे में समय टालते जाना,—न क्षय व वृद्धि, न आगे न पीछे। सारी देह चौंक पड़ती है सारे स्नायु झनझना उठते हैं,—चेतना ही नहीं अतिचेतना,—हवा भी छूती सी लगती है। पवन भी चोट करता है रोग जर्जर व्यक्तित्व पर। याद-आ रहा है, अपने अंदर एक नयी यंत्रणा की धारा खोद दी है। यह अब ढंक देनी होगी, छिपा देनी होगी। सात पर्तों के नीचे-नीचे।

फिर भी जीवन में दाग लग गया है।

यदि मन यही मान लेता। लेकिन नहीं मानता। माथे पर आग के निशान की तरह कलंक का दाग। आने वाले किसी भी कल की सुबह आज की सुबह जैसी सतेज नहीं लगेगी। मन रोगमुक्त नहीं होगा। ओह ! कितनी यंत्रणा।

एक गर्जन सुनायी पड़ रही है। यही रक्त सनी देह। डाक्टर व्याकुल होकर देख रहे हैं। कोई इधर-उधर दौड़ रहा है। क्या ये मि. शर्मा के हैं ? गले से गड़-गड़ाहट,—नल में पानी खत्म होने पर जैसी आवाज आती है। इसके बाद सब स्थिर। यही देखो शर्मा सोया है। पर शर्मा नहीं है।

रातों-रात खबर पहुंच गयी। वे आ गये। वे आये। तांता लग गया लोगों का आधी रात से दोपहर तक। अस्पताल के मैदान मे मेला लग गया है। एक कोठरी दीख रही है, पहले आये लोग बाद में आये हुओं को, अंगुली से वह कोठरी बता रहे हैं। बाद में आया आदमी उस ओर मिनट भर गंभीर होकर देखता है। केवल दीवार, उस पर कितने वर्षों की धूप-वर्षा के चिह्न अंकित हैं। अंदर सफेदी चमक रही है। दरवाजा एक ही है। किवाड़ बंद हैं। उस ओर देख कर मन ही मन एक विभीषिका का चित्र आंक लेते हैं। जीवित का मृत्यु के प्रति प्रतिवाद स्वरूप देह

सिहर उठना, एक प्रकार की नजर से देखना। एक विराट सत्य के सामने सिर झुकाकर, उस एक-दो मिनट में गंभीर होकर, मौन हो, कुछ भी सोचने की चेष्टा न करना। इसके बाद अपने उद्‌गार प्रकट करना, मृत्यु के सामने प्राण-प्रचुरता लहरों की तरह फूल उठती है। देखने वाला पीछे जाकर समूह में मिल जाता है, पान खाता है या सिगरेट पीता है, मुंह खोलता है।

उस दल में वहां यही चर्चा चल पड़ी है जो दायित्व का निषेध नहीं मानती। लोग जी खोलकर बातें कर रहे हैं। उस विचार में सच है, झूठ है, मनगढ़ंत अतिरंजना भी है, सुनी-सुनायी बातें हैं, अनुमान हैं—सब मिलकर समूह का विश्वास है, अदालत की राय नहीं। उस विश्वास के गढ़े उपकरणों में पड़ी थी रणजीत बाबू की बात, सरोजिनी की बात, बलिदत्त की बात और कई बातें, उस विश्वास सिद्ध निष्पत्ति को कई लोग अपने-अपने मटके में भर ले गये। जान-पहचान में बात फैल गयी। हर आदमी शर्मा के बारे मे सचेत है, शर्मा के प्रति सहानुभूतिशील है। जब जीवित था तब अनजाना था, बहुत दूर था; मर कर वह मानो बहुत निकट, बहुत अपना हो गया है। सब उसके लिए सोच रहे हैं, सब आहें भर रहे हैं। उसकी बिलकुल घरेलू बातें, वह भी मानो जनता की संपत्ति हैं, उसके सुख दुख के बारे म दो शब्द कहने के सब हकदार है, फिर नीति-नियमों के लिए उन्होंने क्या नही किया, क्या नहीं करते क्योंकि वह मर चुका है, वह सिर्फ एक नाम रह गया, एक आदमी का रूपक, वह उस बाड़ को जो आदमी-आदमी के बीच रक्त मांस की देह का अतर करती है, तोड़कर सब का बन गया है।

ठीक समय इंजन चला, फैक्टरी में उत्पादन शुरू हुआ, दफ्तर में दम-घोट काम चला।.सब अपनी-अपनी टेबल के पास हैं। बलिदत्त काम कर रहा है। ठीक एक बजे हैड आफिस से तार आया कि आज छुट्टी है। दफ्तर में मीटिंग हुई, साहब की दिवंगत आत्मा की स्मृति में तीन मिनट खड़े हो, दस मिनट भाषण सुनकर अचानक छुट्टी उपभोग करने के लिए सब घर लौट गये।

बलिदत्त लौट आया।

एकांत घर में चारपाई पर—मुंह ढांपे सरोजिनी रो रही है। उसकी पीठ पर मानो लहरें टूट रही हैं। बलिदत्त उसके पास भी नहीं गया। दिमाग में उसने गरमी का अनुभव किया। अंतःकरण में जलन।

यह उसका घर है, यह उसकी स्त्री है।

अकेला बाहर वाले कमरे में दोनों हाथों के बीच सिर टिकाये बैठा रहा।

सरोजिनी घर में थी। देखती है, लोग इस ओर देख-देख कर जा रहे हैं। दूर से उनके कौतूहल, उनकी बातचीत का अनुमान लगा लेती है और सिर झुका लेती है।

कोई मुंह खोलकर कुछ न कहता, फिर भी, अपने मन में देखने पर अपने बारे में दुनिया भर की अनकही बातें सब सुनायी पड़ जाती हैं। भाषा की वही छवि, वही अर्थ और वही वेग है। मन में पागलपन सा लगने लगता है,—यह क्या? उसने किसी का क्या किया ? दुनिया का इतना आक्रोश क्यों ? यह दोषारोपण क्यों ?

दोषारोपण ही तो है ! फुसफुसाहट हजार कोस का मुंह का ढिंढोरा,—गांव की बात याद आती है, अपनी नहीं औरों की। किस दूर-दूरंत की वार्ता बह आती है, छाज की तरह इस जरा-सी धरती में कुछ भी नहीं छिपता, पवन में मिलकर शब्द गूंज उठते हैं, सुनायी पड़ते हैं। गांव के पोखर में पत्थर फेंकने पर भंवर चक्कर काटती-काटती आकर किनारे से टकराती है। बात हिल जाती है, छिपती नहीं, ओह !

उसका संदेही मन प्रमाण की ओर देखता है। उस ओर पशु डाक्टर के अहाते में उनकी स्त्री खड़ी इसी ओर देख रही है। आती नहीं, क्यों ? शायद मन ही मन हंसती होगी। सरोजिनी भूल जाती है कि वह उनके पास ऊन बुनना सीखते-सीखते उनका स्तर छोड़ और एक स्तर पर उठ गयी है, तब से उसने उन्हें कभी पूछा नहीं, और वह भी कभी आयी नहीं। कोई भी नहीं आती, मिली, नीली तो बिलकुल नहीं। कितनी जल्दी पराया कर दिया। सरोजिनी भूल जाती है कि वह खुद और 'समाज' की तरफ बढ़ी। साथ ही यहां के समाज से कटती गयी, खुद ही अपने आप। मिली ने चिट्ठी लिखी थी—"और रोज नहीं कहूंगी तुम्हें, तुम हो मूर्तिमान 'सरोज', तुम्हारी निष्ठा के लिए धन्यवाद देना ही पड़ेगा, फिर भी विदा।" इसका मतलब ? क्या नहीं !

निताई अविचलित है—उसके चेहरे को देखने पर उसके स्थिर मुखौटे के पीछे

वही दोष थोपने वाली योजना खेलती सी लगती है। निताई भी सोचता होगा, बाहर हाट लगाता होगा, मुंह से ना नहीं कहता। कहते-कहते कैसा लगता होगा उसका चेहरा। कितना वीभत्स उल्लास। कितनी अश्लील भृकुटी। कल्पना की जा सकती है। सरोजिनी सिहर उठती है। वैसा ही जरा सा छोकरा हर्षा, कहता फिरता होगा सच-झूठ रच-रच कर। बेबात के सरोजिनी उसे गाली देती है, बार-बार उस पर चिल्लाती है। इच्छा होती है पीठ पर धौल जमा दे,—फिर डर लगता है बलिदत्त का।

उससे वास्तव में डर लगता है। सच मानो जरा-सा आदमी। वह एक घर में बंद, उसका प्रहरी वही जरा सा आदमी है, जो खुद उसे बंदी किये हुँ। चेहरे की ओर देखे तो चेहरा सूख जाता है। जैसे कोई भयानक बात कर बैठेगा। छाती धक-धक धड़कती है। वह गंभीर दिखता है, काम में बहुत व्यस्त दिखता है। बातचीत की उसे फुरसत नहीं। रात में कहीं जाता है, देर से लौटता है, आधी रात के बाद भी लैंप के पास सिर झुकाये काम करता जाता है। सरोजिनी बिस्तर में मुंह घुसाये पड़ी रहती तो देखती। वे आये, करवट लेकर सो गये। रुक-रुक कर एक दो गहरी सांसें, इसके बाद खर्राटे। शायद पहले भी यही होता, था, बलिदत्त काम वाला आदमी है। अपना काम लेकर व्यस्त रहता है, स्त्री के काम के बारे में सिर खपाने की जरूरत उसने कभी नहीं समझी। पर अब सरोजिनी सोचती है,—यह पति कैसा अलग किस्म का आदमी है। वह जान-बूझकर उसे कष्ट देने के लिए गंभीर रहा है। मौका खोजा है झपट्टा मारने के लिए। बार-बार सरोजिनी उसके विरुद्ध आत्मरक्षा के निमित्त कितने प्रकार की हिंस्र ध्वनि, कितनी तरह की बातो के वज्रवाण गढ़ती है, दांत पीस कर रोंगटे खड़े कर, पूंछ फुलाकर, नाखून निकालकर, बिल्ली जैसे कुत्ते के आगे सशस्त्र सचेत आत्मरक्षक हो जाती है, वैसे ही,—किंतु सरोजिनी बलिदत्त को अपने सामने देख नहीं पाती, बलिदत्त भी युद्ध का आह्वान नहीं करता। उसकी ठंडी उपेक्षा डर पैदा करती है। सरोजिनी मन ही मन अनुभव करती है,— उसका व्यक्तित्व टूट रहा है, आखिर वह टूटा व्यक्तित्व ही उसका आश्रय है, कोने में पड़े रह अपना घाव अपनी जीभ से खुद ही चाटने की तरह कान लगाने को, तरंग-तरंग तिरछी नजर फेंकने की तरह। उस अंधेरे में ही देह झड़ जाती है, क्षुधा कम हो जाती है, झूठे ही सर दर्द करता है, देह झिमझिम करने लगती है, तलवे खलने

लगते हैं, आलस आने लगता है। क्लांत होकर बिस्तर पर जा लेटती है, धप-धपाते सिर में जब असमय की शारीरिक दुर्बलता के वश में होकर नींद बाहर की चेतना को बुझा देती है तो फिर उज्जवल दिवालोक में भी प्रकृति अंधेरे को आश्रय देती है। चौंक कर नींद टूटती है। वीभत्स दुःस्वप्न की रूपांतरित चेतना का अंतिम प्रवाह सचेत मन के आगे से हट जाता है। छाती धड़कने लगती है। पसीना झलकं आता है। असहनीय होने पर दूसरी जगह जाकर परेशान हो धकियाते-धकियाते सरोजिनी खूब समझती है जीवन के अंदर इस नये स्तर की अव-स्थिति,—जहां सोने का अर्थ है यंत्रणा में घिसटते फिरना, जागने का अर्थ यंत्रणा की दहकती ज्वाला में छटपटाना।

बचपन की याद आती है, दोपहर में बूढ़ी के मुंह सुनी पोथी की बातें और उनकी व्याख्या याद आती है। जीने की यह कुलबुलाहट छटपटाहट, यह हलाहल, क्या यही रौरव नर्क है ?

भावना धीमी हो जाती है।

बैठे-बैठे, एक ही ठवनि में समय कटाते-कटाते कभी यदि वही आत्मघाती चिंता आती, हाथ नहीं उठता, मन का जोर हृदय के भावों को पूरा नहीं पड़ता। प्रकृति के निराकरण के लिए नयी व्याधि गढ़ती है, सरोजिनी हर बात भूल जाती है, दुश्चिंता भूल जाती है, आदत भूल जाती है। फिर भी उसकी देह में अविराम नये रस का प्रवाह बहने लगता है। नया प्लावन, नया विप्लव,—अंधेरे से प्रकाश की ओर, रोग से नीरोग की ओर।

इसी तरह किसी दिन,—बाहर देखकर उसने अपने अंदर किसी रक्त-मांस की कल्पना की चलती मूर्ति अनुभव की। टुकड़े-टुकड़े स्वप्न एकत्र हो मानो वास्तव बन गया है। सज-धज कर अवश्य पा गयी है। नयी अनुभूति पहले अपने अंदर, फिर अपने बाहर। कभी उसकी कल्पना ही आधार होती है, किस सुख के क्षण दुख का खोल फेंक निकल आये हैं। उसका अपना रक्त उसका आधार है, जितना वह उस आधार में तैरती खेलती जाती है, उतने ही सुख, तेज और जीवन की अनुभूति पाती जाती है। अनुभव करती है वह सृजनमयी नारी है, सृजन की क्षमता में ही उसकी गरिमा है। आंखों में नये पत्ते, सब्ज पेड़-पौधे, सृष्टि के विविध वर्ण दिख जाते हैं। अपने अंदर बरसते मेघों की उत्तप्त उग्र कामना अनुभव करती है। जो पृथ्वी को चिरश्यामल करने के लिए एक बूंद

शीतल वर्षा जल में अपनी परिणति खोजती है। फिर कभी अनुभव करती है कि स्थूल देह के साथ वह खुद ही आधेय है, उसके अंतर की सृष्टि ही उसका आधार है। अपनी अस्पष्ट सृष्टि की गोद में आत्म समर्थन कर छंद-छंद पर वह बढ़ती जाती है। कहां है शोक ? कहां है दुख ? मात्र जीवन का खेल है। पल-पल में अनजान प्रतीक्षित सुख का ज्वार चला आता है। सरोजिनी अपना ही आदर कर परिपूर्ण हो उठती है,—उसे और किसी की जरूरत नहीं। सिर्फ वह—और उसकी अंदर की अस्पष्ट सृष्टि, जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म जड़ स्नायु में, फिर अतेंद्रिय चेतना शक्ति में बार-बार संदेश भेजती है,—मैं आया हूं, मैं हूं।

किसका है वह ?

चिंता का बादल तैर जाता है, फिर गहरी सांस मे वह भी उड़ जाता है जीवन की अनुभूति उड जाती है, समुद्र में कितने मंथन की कलकली। कम समय मे उसने बहुत दुनिया देखी है, अनेक आदमी, अनेक परिस्थितियां। आज सीप में स्वाति नक्षत्र की बूंद पड़ी है, सीप मुंद गयी है।

कितने मेघ आते है, बरसते हैं, चले जाते हैं, उसका क्या जाता है।

शर्मा,—गहरा दुख बन गया है, भूली हुई लीक, मानो वह उस पार की बात हो, स्वप्न की बात।

रणजीत बाबू,—उस दिन बलिदत्त ने आकर खबर दी कि वे छुट्टी पर चले गये हैं, क्या कुछ तबीयत विगड़ गई इसलिए —। काठ की तरह उसने बातों को टाला था, उसके विभोर मन में असंख्य उज्जवल बिंदुओं की समष्टि कुछ आग के शोले चमके थे लेकिन फिर बुझ गये थे।

और कितने बाबू, कितने साहब, समाज सेवियों के दल,—क्रमशः सब भूलती जा रही है, भोर मे उठकर अंधेरे के मच्छरों की घू-घूं की तरह,—रात याद नहीं, मच्छरों का काटना याद नही।

सृष्टि का छाया रूप,—वे लोग आये, चले गये। रह गया है उनका गुणक, प्रकृति की माया के सत्य में चिरंतन दो प्राणी नर और नारी। यहां या वहां, केवल घटनाक्रम से, यहां नहीं तो वहां हो सकता है। खेत ने बीज ग्रहण किया, अंकुर की उष्णता पायी, सृजन की प्रतीक्षा उसके प्रस्फुटन के लिए, गर्भाधान के आनंद में गर्भिणी माटी का परिचय नहीं खोजा, वह परिपूर्ण है,—इतना ही मानो यथेष्ट है। माटी अपना परिचय पा गयी है,—वह सृजन की अटूट खान है,

उधर वसुधा हूं, उधर मृण्मयी की माया का स्वप्न, क्षण-क्षण में विस्मय, क्षण-क्षण में फैला हुआ आनंद,—लोग गये, छाया का रूप मिल गया। जो रहा है, उसके अंतर में उसका नाम नहीं, जाति-देश की संकीर्णता नहीं, सरोजिनी लौट रही है नया व्यक्तित्व लेकर।

यह अननुभूत जीवन आश्चर्यपूर्ण लगता है, संसार में अवस्थिति के असंख्य स्तर हैं। अपनी विचित्रता से मुग्ध हो वह ढल पड़ता है, उसका स्वप्न नहीं टूटता।

बलिदत्त ने जिस दिन जाना कि उसका वंशधर उसकी स्त्री के गर्भ में है, उसके आनंद की सीमा न रही। हठात् मानो एक ही खिंचाव में उसका इतने दिनों का गंभीर संकोच दूर हो गया। उसका प्राचीन व्यक्तित्व और काया उसने पहले की तरह स्त्री के पास पंख झाड़ कर भाषण देना शुरू कर दिया, "जानती हो सरोज, इतने दिन बाद।"—

दर्पण के सामने दाढ़ी बनाने बैठा था। "देखिये, ये जरा दुर्बल हो गयी हैं। खूब संतरे खाने को दीजिये। अस्टो कैलिसियम की टेबलेट, विटामिन बी कंपलेक्स यह मैं लिखे दे रही हूं और पेशाब टैस्ट, कम से कम महीने में एक बार।" कह कर हंसते-हंसते डाक्टरनी अभी-अभी चली गयी है।

सरोजिनी के स्वास्थ्य की यह विचित्र धारा देख वह कर्त्तव्यवश डाक्टरनी को बुला लाया था, पर यह खबर।

उसे सामने अपना फूला हुआ गोल चेहरा दिख रहा है, अपने को वह गज भर की छाती में देख रहा है। अचानक ख्याल आता है, मूंछें बढ़ने दी जायें, कम से कम आज भर तो रहने ही दी जायें, औरों को देखा है, मूंछें चेहरे पर एक तरह की वीरता बढ़ाती हैं, यही वह है, सब में सफल।

"समझी सरोज, मैं बहुत दुखी हूं। काम-काज की धमा-चौकड़ी में तुम्हारी ओर ध्यान देने का समय ही नहीं मिला, कभी तुम्हें घुमाने भी नहीं ले गया, पर यह मुझे जानना चाहिए था, तुम देखना मेरी कुंडली में ही इस उन्तालिसवें वर्ष

में पुत्र-प्राप्ति लिखी थी। स्थानांतर, पदोन्नति। स्त्री के अंग में कुछ पीड़ा, वह तो तुम्हारी कट गयी। मेरे सारे परिश्रम का फल लेकर पैदा होगा यह पुत्र, जानती हो? हम शायद अब बड़े साहब हो रहे हैं। इसका अनुमान है तुम्हें? ओह, सरोज, सरोज!"

मुंह ढापे अधमुदे वह बैठी है। लजाती हुई, मुस्कराती हुई। ऐसा होता है। ऐसा होना बिलकुल स्वाभाविक है। भाग्यवती। वही तो लायी है उसका सौभाग्य, और नही तो कौन? उसकी एकदम अपनी। एक मन एक आत्मा। सारी घर-गृहस्थी इसी के लिये तो। उसकी स्त्री।

बलिदत्त दास मुस्कराता-सा देख रहा है। उसकी आंखों में वही सनातन-स्वामी की छाया है, उसमे है उसका आत्मविश्वास उसकी अपनी आत्म-स्वप्निलता, जीने के लिये प्रत्येक अवस्था को अपना कर काबू करने मे प्रकृति का दान, उसकी कामना, उसी परिचित देह का मोह। वह स्वामी है, स्त्री को अंधविश्वास में चाहना ही उसके मन की सहज प्रवृत्ति है। अविश्वास करना नही। दर्पण उसकी गोल-गोल सुंदर देह दिखा रहा है। हाथ उठाकर मोड़ते हुए ऊपर की मांसपेशी देखता है, गोल न सही—मोटी तो है!

"ऐ हर्षा, तेल मालिश कर दे", बलिदत्त गरज उठा, उसका आदेश है, फिर सरोजिनी की ओर देखता रहा। उसकी देह मे बल आना चाहिए किसी तरह। तुरंत निताई को दवा लाने बाजार भेजा, "और अच्छे संतरे ले आना, एक रुपये के, हूं।"

"अपनी तदुरुस्ती का खयाल रखो सरोज! नियम से दवा खाओ। नही तो बच्चा बढ़ेगा कैसे? इसमे लाज-शरम या डर की कोई बात नही, बिलकुल मामूली बात है। ढीली होने से नही चलेगा। जो होता है मुझे बताओ। सारी व्यवस्था किये देता हूं। रोगी अगर डाक्टर की मदद न करे तो चलेगा कैसे? हां, यह कोई रोग नही, याद रखो। याने बेकार में घबराना नहीं—"

वह एक ही बार में कितनी बातें कहना चाहता है, पर जल्दी-जल्दी। बहुत सारी बातें हैं, अपने अंदर रेल-पेल में से कुछ भी साफ निकल नहीं पाती, फिर संशोधन की इच्छा होती है। उसके दिमाग में उसकी अपनी कहानी घूम रही है। उसने खूब धन कमाया है, दानापानी में निधड़क है। नौकरी में तरक्की करते-करते ऊंची पदवी पर एकदम, बड़ा साहब होने जा रहा है। पर वंशधर के अभाव

में धन का कोई उद्देश्य न था, यश में न थी लंबे होने की डोर।

"ज्यादा परिश्रम न करो। थकावट लगती है ? सोयी रहो, सरोज। क्या हुआ सुबह हो गयी तो भी ? तुम सोयी रहो ! मुझे आज कोई जल्दी नहीं है। तुम्हें दवा खिला कर बाद में जाऊंगा। तुम सो जाओ।"

सचमुच सरोजिनी लेट गयी। यही उसका पति है। अचानक उसकी इच्छा मन खोल कर रोने की हुई। उसने तकिये में मुंह ढांप लिया।

"नहीं, चित लेटना शायद अच्छा होगा। अरे भूल गया था, मोटर के बारे में आज अंतिम बात करनी पड़ेगी। नहीं तो तुम घूमने के लिये कैसे जाओगी ? अच्छा, आज सब ठीक हो जायेगा। तुम आराम करो।"

उड़ता जा रहा है—

नित्य प्रति का जीवन, पुराने पीले पृष्ठों की तरह जीवन की पोथी में से नये पृष्ठ खुलते जा रहे हैं। कभी नयी अनुभूति पुरानी के साथ सादृश्य लाती है, वही समय, वही परिचित दृश्य, मन में वही भाव, सच मानो बिलकुल वही। कुछ समय अतीत में बिता कर अचानक वह मुरझाया पत्ता फिर आंखों के सामने-सामने मुड़-तुड़ कर झर जाता है। विकल पश्चात्ताप की गहरी सांस,—उपजाने की शक्ति उसकी नहीं, केवल स्मृति का तर्पण है। बिसरने पर भी स्मृति अविकल प्रतिफलित नहीं होती, बीच में घने समय का स्रोत है।

अपनी मोटर की पिछली नरम सीट पर सुख से सहारा लिये बैठी सरोजिनी सोच रही है। आगे ड्राइवर के पास बलिदत्त है। गाड़ी के कायदे-तरीके जानने को उसमें गहरा कौतूहल है, बार-बार ड्राइवर से जिरह करता जा रहा है। वह चाहता है खुद ड्राइव करना सीखे।

यह मिस्टर शर्मा की गाड़ी है। शर्मा गये, उनके देश से कोई आदमी आये थे, उनकी सारी चीजें सस्ते में बेच गये, बलिदत्त ने गाड़ी खरीद ली थी।

"समझी सरोज, खोज रही थी न रणजीत बाबू की गाड़ी जैसी गाड़ी, लो उससे भी बढ़िया, खुद शर्मा की गाड़ी। आह, बेचारे को कितना शौक था। कोई

खरीदे, और कोई और उसे भोगे—? यही तो दुनिया की रीत है। जो हो, मेरे हाथ पड़ गयी, शर्मा रहते तो भी खुश होते। नहीं तो कोई और ले जाता। गाड़ी के साथ कोई पछिमा कंट्राक्टर सज्जन आये थे, बोले—"ठीक है, ठीक है। आपको पसंद है, देवीजी के मन में जंचे तो समझूंगा मेहनत सफल हुई। कुल ग्यारह हजार रुपये। कुछ कम ही हैं ?"

यह उसकी 'अपनी' गाड़ी है। अपनी, किसकी ? शर्मा ? वे तो गये। बलिदत्त,—उसने तो रुपये दिये नहीं। जिसने रुपये दिये,—कह रहा था,—"कुल ग्यारह हजार रुपये ही—" उसके साथ फिर कभी भेंट होगी भी या नहीं। क्योंकि बलिदत्त की बदली हो रही है। गाड़ी को जो व्यवहार में लाता है गाड़ी उसी की होती है। गाड़ी उसकी अपनी है।

सब वैसा ही है। वही गाड़ी। यही सीधा रास्ता, लंबा रास्ता। दोनों ओर कतार बांधे पुराने पेड़। यही शाम का समय जब सब प्राणी घर लौटने को उत्सुक रहते हैं, पक्षी का मन घोंसले में पहुंचने के लिये पागल हो जाता है। सामने का दृश्य देख कर वह अनुमान कर लेता है, आगे क्या है। कुछ दूरी पर कंपनी की सॉ मील का छोटा डिपो है, बगल में जगल के बीच कंपनी का बंगला, रास्ते से बिलकुल सटा हुआ अहाता। अनुमान किया जा सकता है उसके अंदर क्या होगा। घुसते ही दोनों ओर कलमी आमों का बगीचा, इसके बाद गुलाब की क्यारियां,—पौधे अंधाधुंध बढ़ गये हैं—बेशुमार फूल खिले हैं। सोचते-सोचते वह बंगला निकल गया, अवश्य पीछे छूट गया होगा, गहरी सांझ के साथ देख भी न सके। एकदम कद्दावर शाल के पेड़ का तना दिख रहा है, बायीं ओर एक आधी खुदी पहाड़ी। कोई कहता था कि इसी समय यहां भालू निकलते है, यहां—वहां ठूंठों भरे जंगल के बीच एक-आधा काला पत्थर देख कर सरोजिनी पूछ लेती है,—"वो दूर,—क्या वह भालू है ?"

"कहां ?" गर्दन झुक जाती है, देह पर गर्म सांस। किसकी, कहां कौन है ?

इसके बाद पत्थरों का डिपो, कुली बस्ती से कुछ दूर पहाड़ के नीचे छोटा-सा बंगला। पीछे की ओर झील, और ढलान के पेड़ पर किसी वन देवता का चौरा है। एक लंबा बांस पेड़ से बंधा है, उसके ऊपर सफेद पताका,. रास्ते से दिखायी देती है। जगह का निशान हैं। बंगले के पिछवाड़े में झील पर ऊंचा पत्थर है, बकुल पेड़ की छाया में पत्थर पर बैठने से झील में सूर्यास्त की सुंदर शोभा दिखती

है, मछलियों का खेल भी देखा जा सकता है।

बात से बात याद आ जाती है। पुरानी भूली हुई स्मृति ताजा हो जाती है, फूल की तरह खिल उठती है, इसके बाद और नहीं। भानुमती का खेल। वह खत्म हो चुका है।

शर्मा नहीं, रणजीत बाबू गये, जी कर भी न होने की तरह, संसार में इतने लोग, सब दूसरों के लिये नहीं जीते, रास्ते की धूल के साथ स्मृति जुड़ जाती है. घड़ी-घड़ी का सारा परिचय, जान-पहचान के असंख्य लोग, सड़क के अगणित धूलकण, अलग नहीं किये जा सकते। और जीवन की खास अनुभूति के पर्याय सब, कब किस संपर्क में, किसी भाव में, दिन रात के जीवन ने, कौन-सा रंग लिया था, रास्ते के किनारे के इन एक-एक बंगलों की तरह वह भी भूल जाती है। जीवन की थाह—रास्ते के किनारे की सराय, वही घर होगा, नये बटोही आते रहेंगे, जो गया वह गया।

सांझ फिर आयी, परिचित स्थानों के संकेत बुझ-बुझ कर बिदाई ले रहे हैं, इसके बाद घुप्प अंधेरा। मोटर चली जा रही है। सरोजिनी की दुख की भावना अंतिम प्रतिरोध के लिए पंजीभूत हुई। सहयास दबाये पश्चात्ताप के हाहाकार के विरुद्ध यह मानो उसके सजीव व्यक्तित्व की प्रतिक्रिया है। किसने कहा सब खत्म हो गया। उसकी देह है, स्वास्थ्य है, प्राणों में प्राचुर्य है, इस सबसे अधिक उसमें है जीवन के साथ उसके संबंध की डोर,—उसकी अजन्मी संतान। वही जो उसे अनहोनी की तरह चंचल कर देती है। यद्यपि उदासी तोड़कर मन के अंदर नाना कामनाओं की लहर वहा देती है, और कल्पना में तृप्ति पाती है।

अंधेरे के साथ मन में वही कामना की ज्वाला उमड़ पड़ती है, उसकी दृष्टि मांसाहारी जंतु की दृष्टि की तरह जल उठती है। शर्मा गया, पर उसकी गाड़ी है तो सरोजिनी के लिये। शर्मा गया, पर वह खुद तो है। भोग की उपकरण यह सारी दुनिया, पर भोग की दक्षता केवल अपने अंदर ही होती है। जाने दो शर्मा को, जाने दो रणजीत को, निमित्त का इंधन लेकर वसुधा सदा हरी रहेगी और वह स्वयं रहेगी अग्नि जैसी।

गरम धरती की तरह वह सब कुछ सोख लेना चाहती है। अनंत मातृरूपा नारी की प्यास, एक बार जागने पर सोख लेना चाहती है, पर किसे ? अंधेरे रास्ते में मोटर सांय-सांय करती जा रही है। प्रकाश में जितना रास्ता खुलता जा रहा है,

उतना ही खत्म होता जा रहा है। फिर भी सामने पड़ा है खुला रास्ता।

गरम देह से तेज सांस छोड़ कर भावनाओ को समेटती सरोजिनी उसी पुराने शहर की ओर चली जा रही है। अपना छोटा-सा पुराना घर सामने दिख जाना है, वह कालेज छात्र, कसरत करता था। वशी पर धुन बजाता था। कभी कोई आकर पुकारता और दिख जाता कोई और,—थाल लिये बारह घरो के भाट,—ऊपर वाले महापात्र। तब उसने केवल देखा था, मन के किवाड बद थे, खोले नही, यद्यपि गहन मन की सूचना की व्याख्या एकदम वास्तव बन आयी, नही, अतीत की घटना को स्पर्श किया तो आज की नयी आखें अतीत के लिये मचल उठी हैं। उसमे वह मतलब को देख रही है साफ-साफ, अतीत के कारण सुलग रही है, फिर लौट रही है उसी शहर की ओर, पर भिन्न परिस्थिति मे। जो गया है, वह गया। उसकी सूचना भर वह खुद है। हो सकता है भविष्य मे,—

रात के करीब नौ बजे। शहर की बत्तिया चलती गाडी की ओर दौड़ती आ रही है, मानो गर्दन पर रोशनी की माला पहना देगी। बलिदत्त ने अचानक पूछा—"सो गयी क्या सरोज ?"

"नही—"

"तो जाग गयी ? सारे रास्ते एकदम चुपचाप, खूब विश्राम मिला होगा, क्यो ? ठीक है, डाक्टर का कहना है जी भर आराम करो। एक तो तुम्हारी देह की यह हालत, और फिर दूर रास्ता। जो हो, नयी मोटर काम आयी शुरू मे ही। लोग कहा करते है, इस मोटर मे गिलास भर पानी रख दो। वह भी नही हिलेगा, ऐसी है इसकी गढन। नही क्या ? तुम्हे कैसी लगी ? मकान तो पास ही आ गया और क्या ?"

यह दिख रहा है वह परिचित मकान। बलिदत्त का दफ्तर। इसके बाद गांव के पास का पतला रास्ता। उसके दोनो ओर घर। उसी के अंत मे बलिदत्त का पुराना घर है। उसके दरवाजे पर संतरे के पेड़, पपीते के पेड़, बगल में रसोई घर, बहू सरोजिनी का कार्यस्थल। पुराने पोखर से दल की भीगी गंध की तरह वह पुराने जीवन की शांति अपने ऊपर पड़ती सी लगती है।

आंखें मुंद जाती हैं।

वो जोति का निरीह जीवन,—आंखें अपलक नहीं हैं, पर वहां अनुत्तरित प्रश्नों का तूफान उठाकर उसी के पीछे-पीछे लोक दिखावे के लिए हड़बड़ी भरी भाग-

दौड़ नहीं थी; न अनेक बातें थीं पर वह रुचिकर जरूर थीं। गाड़ी मुड़ रही है। सरोजिनी ने देखा। बायीं ओर वह परिचित रास्ता, पीछे की ओर देखकर सरोजिनी चीखती-सी बोली—

"उधर किधर ? रास्ता भूल गये ? अरे, ड्राइवर, रास्ता बायीं ओर है, पीछे रह गया।"

गाड़ी बढ़ती गयी। हो-हो हंसकर बलिदत्त ने उत्तर दिया—"ठीक है ठीक है। हो-हो—सरोज, क्या फिर लौट जायेंगे उसी संकीर्ण रास्ते पर ? भूल जाती हो कि तुम कौन हो! बड़े साहब की कोठी, हमारी कोठी आगे है, हम अपने लक्ष्य पर पहुंच गये हैं। वह है घर, उधर किधर जाते ?"

सरोजिनी की देह में बिजली तैर गयी। सच, उसकी श्रेणी बदल गयी है। सीधे बैठकर कठोर कर्तृत्वमय दृष्टि से वह सामने की ओर देखने लगी अहाते के बड़े फाटक की ओर।

दफ्तर के मकान के पास एक छोटा बगीचा कोई खास देख संभाल में बढ़ा नहीं, पर कंपनी के बड़े अफसर के आभिजात्य का चिन्ह है। वहां बैठने के लिए पत्थर का आसन है, घूमने के लिए मिट्टी का रास्ता भी है। जो चाहे तो वह घूम-घूमकर धूल भी खा सकता है, क्योंकि बगीचे में पेट तक ऊंची बाड़ के उस ओर गैरेज का रास्ता है, सब गाड़ियां उसी रास्ते से जाती हैं। जिसके पास समय है वह घूम-घूमकर बगीचा देख सकता है, छोटे रास्ते के जाल के बीच धारी-धारी मुरझायी सी घास, कोई पट्टी गोल तो कोई त्रिभुजाकार, कोई पट्टी चिड़िया जैसी तो कोई पान के जैसी, जगह-जगह,—जहां अवयव अस्पष्ट हैं,—माली से पूछिये वह समझा देगा,—यह मयूर की तरह कटी है, यह हाथी की तरह। जगह-जगह गमलों में निर्जीव पौधे हैं, यहां वहां कुछ मौसमी फूल, खास अच्छे खिले नहीं, एक प्रस्तराट फूलों के कुछ झुरमुट। कुछ लाल कनेर, पत्तों से लदा मंदार, बाड़ के किनारे कैना,—आधे-आधे सूखे पत्तों पर गोल फल लिये खड़े हैं जगह-जगह। सूखे पेड़ों के ठूंठ यत्र-तत्र दिख जाते हैं। माली बता देता है,—यहां पानी लाना बहुत कठिन

है, बहुत दूर से ढो लाना पड़ता है, इसके अलावा बाबू लोगों की शिकायत कि कंपनी का इतना पैसा उधर खर्च हो रहा है, इसके अलावा बकरी, माली उसका प्रमाण दिखाता है, कच्ची बाड़ के बीच काफी फॉक है। वहां कई लट्ठे गाड़े हैं। माली कहता है इन लट्ठों के भी दुश्मन हैं, कोई न हो तो टोकरी लेकर जलावन चुगने के लिए कुछ छोकरियां घूमा करती हैं। यही बगीचा है, —इसमें एक बड़ा लकड़ी का फाटक है, वहां ताला लगता है।

बगीचे की परिकल्पना का उद्देश्य था कि कार्य में व्यस्त कर्मचारी यहां घूम-फिरकर आंख और मन को तृप्त कर नया उत्साह पायेंगे। पर काम में डूबे कर्मचारियों को फुरसत ही नहीं होती अपने-अपने स्थान से उठने की। बगीचा पड़ा है उनके प्रतीक की तरह. आधा जीवित, आधा मरा, सूखा, अनबढ़ा।

नये साहेब का स्वागत समारोह, अभिषेक, बगीचे में टेबल-कुर्सी लगी हैं, सब व्यस्त हैं। बगीचे की पट्टभूमि पर कंपनी के कर्मचारी। यहां भी चेहरा देखकर टीका लगता है, बड़े साहेब, उनके पास उनसे छोटे, कुछ दूरी पर किरानी वगैरह, फिर चपरासियों की कतार।

चाय-नाश्ता, नाना प्रकार की गप्पें टुप-टाप। इसके बाद अभिनंदन भाषण और फिर अभिनंदन का उत्तर।

यही उसकी फौज,—बलिदत्त ने आंखे घुमायीं—सब उसके अधीन। कितनी जल्दी सब बदल जाता है, कई लोग जाने-पहचाने लग रहे हैं कई बिलकुल परिचित बाकी सब नये। पुराने होने पर भी सब नये, वह परिचय के लिए व्याकुल नहीं है, इससे अनुशासन टूट सकता है। परिचितों को देखकर भी उसने उनसे कोई बात नहीं की। पर मन में दो धारायें हैं, पास में प्रभुत्व की नयी दृष्टि में नयी अनुभूति, जिसमें आंखें जाकर फैल जाती हैं, साफ समझाती हैं कि मैं यहां बड़ा हूं—पास ही पुरानी स्मृति, उस पास से रेल-पेल के दल की फांक से निकल कर सीढ़ी-दर-सीढ़ी चढ़ता चला आ रहा है ऊपर। वे क्या सोचते होंगे ? ईर्ष्या ? प्रशंसा ? कौतूहल ? जितना दबाता है, पर संभाल नहीं पाता। यही तो,—

"ऐंकट राव ?"

"यस सर।" कितना मीठा लगता है 'सर' शब्द उसकी जबान पर। एंकट राव आधीन्य का अवतार है। कैसे बांकी हो गयी है उसकी देह, नीचे नजर। इसके बाद क्या ?

"ऐंकट राव !"

"यस सर !"

"सब ठीक-ठाक है तो ?"

"आपकी दया से सब ठीक है, सर !"

कहां है बनू। बलिदत्त चारों ओर देखता हुआ उसे खोज रहा है। उसका पुराना सहकर्मी बन बिहारी पट्टनायक इस दल में दिखायी नहीं पड़ता। सच, कई दिनों से उसकी खबर ही नही ली। बड़ाई कर दो शब्द उपदेश के कहता,—'बनू यह रास्ता छोड़,—नरम बन, जिद्दी होने से कोई लाभ नही।'

उपदेश देगा ?

नहीं अब वह उस स्तर का नहीं रहा। वह गंभीर रहेगा। शासन करने के लिए दो-चार कड़ी बातें कह देगा,—'इस तरह करने पर अप्रिय कदम उठाने पर बाध्य होना पड़ेगा। क्या कहे। कंपनी के काम में अनुशासन तो रखना ही पड़ेगा। मान लो मेरी जगह और कोई होता, क्या करता वह ?'

मन ही मन अपनी बात कहते हुए उसके होंठ कांप उठते हैं, भौंहें कानों की ओर खिच जाती हैं, दल की ओर जलती आग की तरह नजर फैल जाती है। नही वह इतना ढीला नहीं होगा। कोई आयेगा परिचय की सुविधा लेने, कई आयेंगे पेट-सिर दिखाकर मन पिघलाने वाली बातें कहने, तनख्वाह पूरी नहीं पड़ती, काम का बोझ है, घर में चावल नहीं है, स्त्री का हाथ खाली है, बच्चे नालायक हैं, उधर ध्यान देने को समय नहीं। वही पुराने तर्क, हो सकता है उनमें ज्यादातर सच हों।

पर वह जरा भी नरम नहीं पड़ेगा। उसके शासन से बनू को भी छूट नहीं मिलेगी, चाहे कितना ही परिचित क्यों न हो। यह देखो, पहले ही उपेक्षा कर चुका, कहां, वह दिखायी भी तो नहीं पड़ता, सुख-दुख की बात पूछता, अभिनंदन करता, वहां उसकी छाया भी नहीं दिखायी पड़ती। वह अवश्य कहीं बीड़ी पीता हुआ विद्रोह का भाषण झाड़ रहा होगा। झूठे धुएं के पटाखे, पर वही उसे प्रिय

है। प्रचार के फलस्वरूप ये ही धुएं के पटाखे किसी दिन आग के पटाखे भी बन सकते हैं—बलिदत्त गंभीरे होकर सोचने लगा। कहां जरा सी आग, इसके बाद फैल जायेगी, कंपनी का करोड़ों का नुकसान, पहले से ही सावधान रहना बुद्धिमान का काम है,—अत:—।

गले में फूलों की माला पड़ रही है। यही भाषण सुन रहा है। खुशी की मुस्कान बिखेरनी पड़ेगी। सोचता है, सरोजिनी आती। आना उचित भी था! वह इन सब सामाजिक उत्सवों को ठीक से संभाल सकती है, उसके चेहरे पर मोहनी है। सोचने पर स्वत: स्मित हास्य अंकित हो जाता है। सुन रहा है ऐतिहासिक अभिनंदन —

' आपकी सहृदयता, आपकी मानवीयता, अधीनों के प्रति आपकी गहन स्नेह-सहानुभूति किसी से छिपी नहीं है। फिर आपकी कार्यकुशलता, आप की धुरंधर कार्यक्षमता, तीक्ष्ण बुद्धि और उदार दूरदर्शी विवेचना ने आपकी ओर कंपनी का विश्वास यथार्थ में आकर्षित किया है। आपके जैसे सुयोग्य और सहृदय अधिकारी पूर्वजन्म के पुण्यों से ही हमें मिले हैं। अत:—"

इतने गुण हैं उसमें।

खुद सोचने पर अचंभा लगता है।

कल की सी बात लगती है, यही था उसका कर्मस्थल, कोई पूछता तक न था।

पर आत्मविश्वास आता है, तब भी तो उसने सरोजिनी से कहा था—

"तुम देखना, वे पहचानेंगे, गुण छिपता नहीं, साधना व्यर्थ नहीं जाती।"

आज उन्होंने उसे पहचाना है, उसका दानापानी का आसन प्रतिष्ठित है, केवल अपने लिए ही नहीं। जो वंशधर आ रहा है उसके लिए और अनागत संतति के लिए। वह वंश प्रतिष्ठा कर सका है।

बलिदत्त भाषण के लिए खड़ा हुआ। वह संभ्रम से देख रहे हैं। वह स्वयं अनुभव कर रहा है—वह बड़ा है। मन फूल उठा है। खुद को बड़ा समझने पर स्वत; जबान पर भाषा आ जाती है। वह बात नहीं कहता, अंदर से और ही कोई बात कह रहा है। सब सुन रहे हैं। कई लिख रहे हैं।

"अंत में मैं आप लोगों को दो-चार बातें कहना चाहूंगा। धर्म क्या है ? वह केवल ठाकुर पूजा नहीं है। कर्त्तव्यपालन ही असली धर्म है। कर्त्तव्य फिर क्या है ? कर्त्तव्य कितने दायित्वों का समूह है। अपने प्रति। ईश्वर के प्रति, सबसे

बड़ा कर्त्तव्य है अपने जन्मदाता के प्रति। अर्थात् अपने काम-धंधे के प्रति।

"कभी-कभी दो-तीन कर्त्तव्यों के बीच चुनाव के बारे में विवाद उठता होगा, आप बड़े कर्त्तव्य को पहला स्थान देते होंगे तो फिर मन में संदेह नहीं रहेगा। दुर्बलता पास आयेगी नहीं। कर्त्तव्य के लिए त्याग करना पड़ता है, जैसे पूजा के लिए बलि। वह त्याग ही तो आनंद है। कार्य ही विश्राम है। आलस्य तो व्याधि है, विश्राम नहीं।

"मैं देखता हूं, जब फाइलों में डूब जाता हूं, तब मुझे चरम आनंद मिलता है। क्योंकि आप लोग जानते हैं काम ही तो जीवन का अनुभव कराता है, नींद में जीवन का अनुभव नहीं हो सकता। यद्यपि सब का मत समान नहीं हो सकता, किंतु मैंने अपना मत बताया है, आप लोग विचार कर देखेंगे—"

जोरदार तालियों की गड़गड़ाहट के बीच जब भाषण समाप्त किया सब ने आकर घेर लिया। विनीत नमस्कार कर सब बिदा लेने लगे। एंकट राव छाया की तरह घूम रहा है। बलिदत्त ने बुलाया,—

'एंकट राव—"

"यस सर—"

"जरा इध·,— "। 'आओ' या 'आइये' कुछ निश्चित नहीं कर पाया,—"इधर जरा, एक काम है।"

"यस सर!"

"अभी किस सीट पर हो?"

"जमीन-मकान पुल रास्ते बनाने संबंधी कंपनी के गोदाम के चार्ज में।"

"तो ठीक है?"

"यस सर!"

"और हाथ देखना, कुंडली देखने का अभ्यास चल रहा है?"

एंकट राव हंस पड़ा। "यस सर! अगर हुक्म देंगे तो कल सुबह आऊं।"

"बन बिहारी याद है न, क्या खूब था वह? बाकी सब ठीक है।"

"यस सर!"

"अब अभी कहां है? किस सीट के चार्ज में? यहां दिखायी नहीं पड़ता, क्यों?"

"वह तो कब से नौकरी छोड़ गया है सर—"

"ऐं। हाय रे अभागे ! एकदम चला गया ? अब चल कैसे रहा है ? खाता क्या है ?"

"उस के लिए दुख न करें सर। वह मजे में है। एक प्रकार से बड़ा आदमी कहा जा सकता है।"

"नौकरी छोड़ने पर भी उसे बड़ा आदमी कहा जा सकता है ? क्या वह साधू हो गया, या राजनीति में कहीं—?"

"नहीं सर, व्यापारी है, उसकी बहुत बड़ी इलेक्ट्रिकल दुकान है, फिर रेडियो बेचता है। वह शहर का नामी आदमी—"

"आश्चर्य।"

"कुछ नहीं सर, यह तो व्यापार का जमाना है, इसके अलावा इलेक्ट्रिकल जोरों से बढ़ती जा रही है। पहले दफ्तर से जब लड़-झगड़ कर चला गया था, कइयों ने सोचा, गया काम से। हाथ में फूटा धेला भी न था, वरन देनदारी ही थी, परिवार भी कम छोटा नहीं था। पर मैंने उसका हाथ देखा था। इसके बाद—"

एंकटराव को बीच में रोक कर बलिदत्त ने कहा,—"ठीक है बाद में। अच्छा नमस्कार।"

एंकट राव नमस्कार कर तुरंत मुड़कर चला गया। बलिदत्त मोटर की ओर देखने लगा। सारी खीझ एंकटराव पर उतर रही है। ऐसे ही होते हैं ये लोग, जरा सा मुंह लगाओ तो बस शुरू कर देते हैं गप्प। बीच में उसकी बात काट कर उसने ठीक किया है, एंकटराव को समझना चाहिए, समय बदल गया है।

भां-भां मोटर दौड़ती हुई सीधी कोठी की ओर बढ़ी। खीझ से भरा मन। बनू बड़ा आदमी बन गया है। क्यों ? क्या है उसका त्याग। क्या उसकी चेष्टा ? हवा खाते फिर रहे थे कई, उन्होंने भी तरक्की की है क्यों ? क्रोध से जल उठा दुनिया पर, बड़प्पन पर, मन पर, धिक्कारता है उस दुनिया की असमानता को, अनुभव करता है मानो वह अत्याचार पीड़ित है, दुखी है।

बंगले पर आया।

सरोजिनी नहीं, घर सांय-सांय कर रहा है।

चपरासी टहल रहे हैं। हर्षा बैठा है एक कुर्सी पर। पैर हिला-हिलाकर अमरूद खा रहा है। चपरासियों ने सलाम किया। हर्षा अमरूद छिपा कर जूते के लेस खोलने झुक गया। रसोईघर में खानसामा की चहल-पहल शुरू हो गयी, बावर्ची और पानी वालों का कलरव गूंज उठा। रोशनी जल रही है। सांज-सज्जा सुंदर, बड़े साहब की कोठी जो ठहरी। चौड़े बरामदे के नीचे फूलों के गमले कतार से लगे विशाल बगीचा घेरे हैं।

"क्यों रे, मालकिन कहां हैं ?" बलिदत्त ने पूछा।

"वे जो बाबू," हर्षा ने कहा, "जो बाबू मोटर में बैठकर वहां रहते समय घूमने आया करते थे ना, वे आये थे। मालकिन और उन्होंने चाय पी। मालकिन उनके साथ कहीं घूमने गयी हैं। वे बाबू आयेंगे, आज रात यहां रहेंगे।"

"कौन बाबू रे ?"

"वे ही बाबू, जो मोटर में बैठकर वहां रहते समय घूमने आते थे ना,—वे जो बाबू—" हर्षा ने शुरू से फिर लगा दी अपनी ग्रामोफोन रिकार्ड, वह सिर्फ खबर दे रहा है, उसका उसमें कोई मतलब नहीं है।

"अरे, वे कौन से बाबू ?"

"कितने तो आते थे। क्या रणजीत बाबू ? या कोई और ?"

हठात् दिमाग गरम हो आया, एक नये स्तर की अवस्थिति। निचले होंठ को दांतों से दबा बैठा। सामने का स्थूल दृश्य देख नहीं पाता, पर देख रहा है अंधी आंखों से देख रहा है, विभीषिका। अपने मन के भूत, वे यहां चारों ओर चरते फिर रहे हैं। नाचते हुए हंसी ठिठोली कर रहे हैं, हड्डियों में आग लगा रहे हैं। ओह ! कितनी यंत्रणा। कहां का बड़प्पन ? कैसी सफलता ? किसके लिए ? क्या उसे मिला ? दोनों हाथों से सिर दबाये अंधकार की ओर देख रहा है। यही उसका पथ है, इसका कोई अंत नहीं। यही उसके जीवन की असमाप्त कहानी, दाना-

पानी के मोल-भाव में सफलता खोजते-खोजते कई रात-दिन बीते हैं, लेकिन अपनी देह में आग लगी है।

सरोजिनी फिर घूमने गयी है।

"ओह !"

बलिदत्त तेजी से उठ खड़ा हुआ। सीधा दफ्तर की कोठरी की ओर चल पड़ा। बैठकर फाइलों के ढेर से एक फाइल उठाकर चिल्लाया—

"चपरासी—"

"हजूर।"

"जल्दी बुलाओ स्टेनो बाबू को।"

बस, ठीक है, यहीं ठीक है। यहां वह कर्त्ता है, यह कारखाना है, जीवन यहां से पीछे रह जाता है।